गुरुकुल पत्रिका

विद्यालय के छात्र आश्रम की यज्ञशाला में हवन कर रहे हैं।

सम्पादक — श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वार्ष १२ मार्गशीर्ष २०१६ अङ्क ४

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क १३६
नवम्बर १९५९

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

दर्शन की यथार्थ भावना — डा. इन्द्रसेन जी एम. ए. पी. एच. डी.

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में शिक्षा — श्री शम्सुद्दीन जी एम. ए. एम. ई. डी.

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

ओ३म्
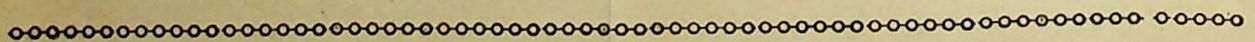
गुरुकुल-पत्रिका

वेदामृत गीत

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाड् आशामाशां विषासहिः ॥ अ० १२. १. ६४

भावानुवाद

भू माता का अमृत पुत्र हूं, दिव्य उजाला हूं । धैर्य का धरने वाला हूं ॥

विश्व आपदायें बाधायें,
सकल कंटकाकीर्ण दिशायें,
मुझे न पथ से विचलित करतीं
विघ्न व्यूह चट्टान शिलायें।
निर्झर बन गंतव्य मार्ग पर, बढ़ने वाला हूं।
शिला से अड़ने वाला हूं,
शिखर पर चढ़ने वाला हूं ॥

अभीषाड हूं उत्तर हूं मैं,
प्रतिद्वन्द्वी से ऊपर हूं मैं,
सहनशक्ति से अदम्य दुख का
भी सहमान गुणाकर हूं मैं।
मैं जीवन संग्राम सदा, सर करने वाला हूं ।
न भय से डरने वाला हूं ॥

विघ्न असह्य कुटिलतम दुर्धर
आओ विघ्नजाल प्रलयंकर
विश्वाषाड् विषासहि हूं मैं
गरल पान करता शिव शंकर
बार बार मैं विश्व आपदा सहने वाला हूं ।
सभी कुछ सहने वाला हूं,
न कुछ भी कहने वाला हूं ॥

—रामनिवास विद्यार्थी एम. ए. एल. टी., फ़ज़लपुर
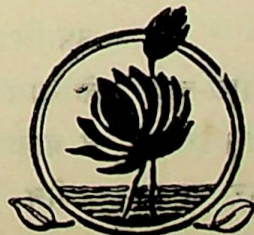
तिब्बत और भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध

डॉ० श्रीमती शारदारानी जी एम. ए. डी. लिट्.

तिब्बत और भारत का अतिघनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। तिब्बत की धर्म निष्ठता और स्वराज्य प्रियता को देखकर प्रत्येक भारतीय का हृदय करुणा और ममता से भर आता है। इस ने भारत की अनेक लुप्त निधियों को आज तक साज संवार कर रखा है। सातवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक के तिब्बत और भारत के सम्बन्धों में कभी कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई। संसार के लिए तिब्बत एक अज्ञात और दुर्गम देश रहा है, किन्तु भारत के लिए तो यह सुहृद् बन्धु है, भारत इसे कैसे भुला सकता है ? प्राचीन समय से हम लोग तिब्बत को 'भोट' नाम से जानते हैं। हिन्दी में प्रचलित 'भोटिया' इस 'भोट' शब्द से निकला है। प्रस्तुत लेख में 'भोट देश' और 'भोट भाषा' शब्द प्रयोग किए गए हैं।

भोट देश के इतिहास से परिचय पाकर हम भोट देश का भली भांति दिग्दर्शन कर सकेंगे। छटी शताब्दी तक तिब्बत में जादू-टोने, भूत-प्रेत पर अवलम्बित बौन धर्म का प्रसार था। अज्ञान के अन्धकार से आवृत तिब्बत में बौद्ध धर्म रूपी ज्ञान का सूर्य उदित हुआ, जिस ने देश के कोने-कोने को धर्म की और संस्कृति रूपी किरणों से आलोकित कर दिया। इस का इतिहास बहुत रोचक है।

भोट देश में सातवी शताब्दी में स्रोङ-चङ गाम्पो नामक शक्ति शाली सम्राट् हुआ। इसने देश के छोटे-छोटे सामन्तों को जीत कर एक बड़ा साम्राज्य बनाया। चीन का भी कुछ भाग जीत लिया। सोङ-चाङ्-गाम्पों ने नैपाल के राजा अंशुवर्मा की पुत्री भृकुटीदेवी और चीन की राजकुमारी वनछड् से विवाह किया। ये दोनों राजकुमारियां बौद्धधर्म की अनुयायिनी थीं। नेपाल की राजकुमारी अपने साथ अक्षोभ्य बुद्ध, मैत्रेय और चन्दननिर्मित तारा की मूर्तियां लाईं, और चीन की राजकुमारी शाक्यमुनि की मूर्ति। राजा पर दोनों रानियों का बहुत प्रभाव पड़ा और उस ने दो मन्दिर बनवाए। अक्षोभ्य के लिए 'रामोछे' का मन्दिर और शाक्यमुनि के लिए रासा में मन्दिर बनवाया। रासा नामक ग्राम ही पीछे ल्हासा नाम से प्रसिद्ध हो गया। बौद्धधर्म सम्पूर्ण तिब्बत का राजधर्म बन गया। ये दोनों रानियां तारादेवी का अवतार मानी जाने लगीं। नेपाल की राजकुमारी श्यामतारा बन गई और चीन की राजकुमारी श्वेततारा। सोङ्-चाङ्-गाम्पो ने धर्माचरण के बहुत से नियम बनाए। अभी तक भोट-भाषा लिखी नहीं जाती थी क्यों कि इस की कोई लिपि न थी। रानियों की प्रेरणा से राजा ने थोम्मि सम्भोट को धार्मिक ग्रन्थ और लिपि लाने के लिए भारतवर्ष भेजा। 'थोम्मि' भोट उपाधि है और 'सम्भोट' का अर्थ है 'अच्छा भोटिया'—यह उपाधि भारतवर्ष में दी गई थी। थोम्मि सम्भोट के साथ १६ व्यक्ति गए थे। थोम्मि सम्भोट ने ब्राह्मण लिपिदत्त और पण्डित देववित्सिंह के अधीन अध्ययन किया। अध्ययन क्रम वर्षों

चलता रहा। जब वे भोट देश लौटे तो अपने साथ नागरी के पूर्व रूप को, जो उस समय भारत में प्रयोग हो रहा था, भोट-भाषा को लिखित रूप देने के लिए ले गए। थोम्मि सम्भोट ने अपनी भाषा को ऐसी अनुपम भेंट दी कि यह युगों के लिए अमर हो गयी। भोट-भाषा की वर्तमान लिपि का वही रूप आज भी है। इन्होंने सर्वप्रथम संस्कृत ग्रन्थ कारण्डव्यूह का अनुवाद भोट-भाषा में किया तथा संस्कृत व्याकरण के आधार पर सर्वप्रथम भोट व्याकरण बनाया। राजा स्रोङ्-चाङ्-गाम्पो ने इन ग्रन्थों का चार वर्ष तक अध्ययन किया। थोम्मि सम्भोट जो पुण्य ग्रन्थ भारतवर्ष से ले गए थे, वे वहाँ पहुंच कर दिव्य, अनुपम शास्त्र बन गए। ग्रन्थों के आधार पर राजा ने बौद्धधर्म की नींव इतनी पक्की डाली कि वह आज तक स्थिर चली आई। स्रोङ्-चाङ्-गम्पो के राज्य काल में कई प्रमुख भारतीय आचार्य भोट देश गए। कुछ प्रसिद्ध ये हैं—कुमार, शंकर ब्राह्मण, शील मंजु इत्यादि। ६५० ई० में स्रोङ्-चाङ्-गम्पो की मृत्यु के पश्चात् भाङ-स्रोङ-साङ्-त्सन् गद्दी पर बैठे। इन के पश्चात् ठि-स्रोङ्-देत्सन् शक्ति शाली राजा हुए। इन्होंने अपना साम्राज्य चीन की राजधानी तक फैला लिया था। इन के पुरोहित शान्तरक्षित थे। शान्तरक्षित के आग्रह से राजा ने नालन्दा विश्वविद्यालय के तांत्रिक योगाचार्य पद्मसंभव को भोट देश निमन्त्रित करने के लिए दूत भेजे। जैसे ही दूत उनके पास पहुंचे वे तुरन्त चल पड़े। ७४७ ई० में ये भोट देश में पहुंच गए राजा ने गुरु पद्मसम्भव का बहुत सम्मान किया। भोट निवासी इन्हें गुरु रिम्पोछे कहते हैं। पद्मसम्भव ने जाते ही तान्त्रिक महायान बौद्ध धर्म की स्थापना की। अभी तक भोट में जादू टोने वाले बौन धर्म का पर्याप्त प्रसार था। पद्मसम्भव ने जादू-टोने वाले देवी देवताओं का अनादर न किया अपितु उन्हें भी अपने नवीन धर्म में नए नाम देकर स्थान दे दिया। इससे बौन मतावलम्बी जनता को नवीन धर्म ग्रहण करने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी। अपने शक्ति शाली शस्त्र दोर्जे अर्थात् वज्र से गुरु पद्मसम्भव ने सब दानवों का दमन किया और अज्ञान के अन्धकार से आवृत जनता को दिव्य आध्यात्मिक सन्देश सुनाया। इनका सम्प्रदाय न्यिमापा (रक्तोष्णीष) नाम से प्रसिद्ध है। पद्मसम्भव ने ७४९ ई० में साम्ये नामक प्रथम विहार बनाया। लामा धर्म का आरम्भ इस विहार से होता है। पद्मसम्भव ने साम्ये विहार मगध के ओदन्तपुरी की शैली का बनाया, और शान्तरक्षित को प्रथम विहाराधीश बनाया। शान्तरक्षित यहां १३ वर्ष तक विहाराधीश रहे। साम्ये विहार में एक दूसरे लामा वैरोचन ने बहुत से संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद भोट भाषा में किए। पद्मसम्भव का न्यिंमापा मत तान्त्रिक शैवधर्म से मिश्रित बौद्धधर्म था। इस मत के अनुयायी रक्तोष्णीष कहलाते हैं। राजा ठिस्रोड देत्सन् के राज्यकाल में भारतीय पण्डित विमल मित्र, बुद्धगुह्य, शान्तिगर्भ, विशुद्धसिंह, तान्त्रिक आचार्य धर्मकीर्ति, जिनमित्र, दानशील तथा आनन्द आदि ने अनेक संस्कृत ग्रन्थों तथा टीकाओं का भोट भाषा में अनुवाद किया।

स्वतन्त्र माध्यमिक सम्प्रदाय के आचार्य कमल शील के भोट-भाषा में लिखित अनेक टीका ग्रन्थ तञ्जूर में सुरक्षित हैं। संस्कृत-भोट-कोष 'महाव्युत्पत्ति' का इस युग की अमर कृतियों में से एक है। ७८६ ई० में राजा ठिस्रोङ्-देत्सन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मुठितसांपो गद्दी पर बैठा। यह कुछ ही दिनों में मारा गया और इसके भाई ने राज्य संभाला। इस का पुत्र राल्पाचन् नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गद्दी पर बैठा। राल्पाचन के समय अनुवाद कार्य बहुत तीव्र गति में हुआ। भारतीय पण्डितों की सहायता के लिये लोत्सावा अर्थात् भोट अनुवादक बैठा करते थे। राजा की ओर से अनुदकों की समिति बनाई जाती थी। भारतीय पण्डितों का समिति में प्रमुख हाथ रहता था। राजा उस समिति का अध्यक्ष होता था। अनुवाद कार्य बहुत गति से सम्पन्न होता था। इन दिनों नागार्जुन, आर्यदेव और वसुबन्धु की कृतियों के अनुवाद किये गये। राजा द्वारा नियुक्त भारतीय पण्डित जिनमित्र, शीलेन्द्र-बोधि, सुरेन्द्रलोधि, प्रज्ञावर्मा, दानशील तथा बोधिमित्र इत्यादि ने भोट अनुवादकों के साथ संस्कृत से अनेक ग्रन्थ अनुवाद किये। राजा राल्पाचन् ने लामाओं को सुसंगठित करके बौद्ध धर्म का समस्त देश में प्रचार किया तथा अनेक मन्दिर और विहार बनवाए। भारतवर्ष के तोल और माप के अनुसार भोट देश के तोल और माप बनवाए तथा भारतीय ढंग के सिक्के चलाए। इसके छोटे भाई लाङधर्म ने इसकी धार्मिकता से चिढ़ कर राल्पाचन को मार डाला और स्वयं गद्दी पर बैठ गया। बौद्धधर्म को नष्ट करने के लिये उसने अनेक उपाय प्रयोग किए। लामाओं को मारने का आदेश दे दिया। मन्दिर और मूर्तियाँ नष्ट कर दी गईं। किन्तु यह दमन-चक्र बहुत दिन न चल सका। एक लामा ने यम-नृत्य के बहाने ढीला वस्त्र पहिना और प्रासाद के नीचे नृत्य करने लगा। ढीले चोगे में धनुष बाण छिपा था। राजा नृत्य देखने लगा। अवसर पाते ही उसने बाण छोड़ दिया। राजा मर गया और लामा काले घोड़े पर भाग निकला। लाङधर्म की मृत्यु के उपरान्त भोट देश छोटे छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। सबका योजक कोई शक्तिशाली राजा न रहा। ११ वीं शताब्दी के आरम्भ में बहुत से भारतीय पण्डित भोट देश में आए। छोटे सामन्त इन्हें निमन्त्रित कर बुलाया करते थे। इनमें प्रमुख दीपंकरश्रीज्ञान अतीश थे। भोट भाषा में इन्हें लामा जोवोजपोल्दान कहते हैं और मंजुश्री का अवतार मानते हैं। इनकी शिक्षा मगध के ओदन्तपुरी विहार में हुई थी। भोट देश जाने से पूर्व ये मगध के विक्रमशिला नामक विहार में आचार्य थे। भोट देश में आते ही अतीश ने लामाओं का सुधार प्रारम्भ कर दिया और कादम्पा सम्प्रदाय की स्थापना की। अतीश ने बहुत से ग्रन्थ लिखे। जिनमें से कुछ उल्लेखनीय हैं—बोधिपथप्रदीप, चर्यासंग्रहप्रदीप, मध्यमकोपदेश, संग्रहगर्भ, बोधिसत्त्वमण्यावली, सूत्रार्थसमुच्चयोपदेश, कर्मविभंग, गुरुक्रियाकर्म, चित्तोदपादशंवरविधिकर्म, समाधिसंभरपरिवर्त। ११ वीं शताब्दी के अन्त में

सारे भोट देश की शक्ति लामाओं के पास आने लगी। छोटे छोटे सामन्त राज्यों के कारण देश की सुव्यवस्था नहीं थी। साचा विहार के लामा ही शक्तिशाली बन रहे थे। मोंगोल सम्राट् छिंगिसखां ने १२०६ ई० में भोट देश को जीत लिया। उसके उत्तराधिकारी कुबलई खां ने भोट की धार्मिक व्यवस्था देखी और बहुत प्रभावित हुआ। कुबलई खां मोंगोल था, किन्तु इसने चीन को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था।

सम्राट् कुबलई खां ने अपनी सभा में सब धर्मों के प्रतिनिधि बुलाए—बौद्ध, मुसलमान और ईसाई। बौद्ध प्रतिनिधि के रूप में भोट से साचा पण्डित तथा अन्य बड़े लामा गए। सम्राट् ने सब धर्मावलम्बियों से कहा कि कोई ऐसा अनोखा कृत्य उपस्थित करो, जिस से तुम्हारे धर्म की उच्चता प्रकट हो। बौद्ध लामाओं को छोड़ कर कोई भी ऐसा अनोखा कृत्य करने में समर्थ न हुआ। लामाओं ने अपने अदृश्य मनोबल से सम्राट् का मदिरापात्र जो कि नीचे पटल पर रखा था उसके मुख तक पहुंचा दिया। सब स्तब्ध रह गय। लामाओं की विजय हुई, साथ ही साथ बौद्ध धर्म की। उस दिन से कुबलई खां ने प्रकट रूप से बौद्ध धर्म को अंगीकार कर लिया। साचा पण्डित को भोट देश का शासक घोषित कर दिया। कुबलई खां ने साचा पण्डित के पास कंजूर का मोंगोल भाषा में अनुवाद करने के लिये बहुत से विद्वान् भेजे। १२७५ से १३४५ ई० तक बीस एक के पश्चात् एक लामाओं ने भोट देश पर शासन किया। १३५० में लामा को राजा जाङ्छुब ग्योलसून ने शक्ति विहीन कर दिया और अपने हाथ में राजनैतिक सत्ता ले ली। इस राजा का राजवंश १६३५ तक भोट देश पर राज्य करता रहा। १५ वीं शताब्दी के आरम्भ में चोंखापा नामक एक शक्तिशाली विद्वान् लामा ने अतीश के सम्प्रदाय को सुधार कर गेलुक्पा नाम दे दिया। गेलुक्पा सम्प्रदाय में पुराने सम्प्रदायों की सब कुरीतियां निकाल दी गईं और शुद्ध आचरण का उपदेश दिया गया। मदिरा सेवन और विवाह करना लामाओं के लिये निषिद्ध हो गया। चोंखापा ने गादेन् और सेरा मठों की स्थापना की। चोंखापा को अवतार के रूप में पूजते हैं। गेलुक्पा के शक्तिशाली बन जाने से और सारे सम्प्रदाय ढीले पड़ गये। गेलुक्पा सम्प्रदाय के अनुयायी पीतोष्णीष भी कहलाते हैं। गेदेनडुप सर्वप्रथम महालामा थे। सुप्रसिद्ध विहार टाशिल्हुम्पो की स्थापना इन्होंने की तथा पंछिन् लामा इस विहार के महालामा होते हैं। आज पंछिन् लामा का दलाई लामा के पश्चात् दूसरा स्थान है। गेदेन लुप ने लामाओं के अवतार लेने की प्रथा चलाई। जब महालामा की मृत्यु हो जाती है, उस समय से दूसरा अवतार ढूंढने लगते हैं। उसकी आत्मा उसी समय कहीं न कहीं पुनः जन्म ले लेती है, इसलिये कुछ शारीरिक चिह्नों से और पूर्व अवतार की कुछ प्रयोग की हुई वस्तुएं दिखा कर अवतार को शिशु रूप में ही पहचान लेते हैं और उसकी शिक्षा इत्यादि लामाओं के संरक्षण में होती है। जब अवतार

लामा १८ वर्ष के हो जाते हैं तब उन्हें राज्य करने के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।

तृतीय अवतार लामा सोनाम्ग्यात्सो (पुण्य-सागर) ने मोंगोल देश में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। मोंगोल राजा आल्यन्खां सोनाम्ग्यात्सो से बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें 'दलाई' उपाधि से विभूषित किया। 'दलाई लामा' उपाधि का आज तक उपयोग होता आ रहा है। दलाई मोंगोल भाषा का शब्द है जिस का अर्थ सागर है। 'दलाई लामा' का अर्थ हुआ 'सद्गुणों का सागर'। अब से अवतार लामा 'दलाई लामा' नाम से प्रसिद्ध हो गए। भोट भाषा में दलाई लामा को ग्याल्वा रिग्पोछे अर्थात् राजेन्द्र रत्न कहते हैं। भोट नाम प्रायः संस्कृत से अनूदित होते हैं।

चौथे दलाई लामा योन्तेनग्यात्सो (गुण सागर) छोटी अवस्था में ही मर गये। पांचवे दलाई लामा ङावाङ् लोब्साङ् ग्यात्सो (वागिन्द्र सुमतिसागर) बहुत शक्ति शाली हुए। गुश्री खां नामक एक मोंगोल राजा ने भोट देश पर विजय प्राप्त करके सारा राज्य पांचवे दलाई लामा को भेंट स्वरूप दे दिया। मोंगोल आक्रमणों के कारण पुराना प्रासाद टूट-फूट गया था, इसलिए इन्होंने पोतल राजप्रासाद को फिर से विशाल रूप में बनवाया। पांचवे दलाई लामा को लोग अवलोकितेश्वर का अवतार मानने लगे। पैकिङ् के सम्राट् ने पांचवे दलाई लामा को स्वतन्त्र शासक के रूप में सम्मानित किया। लोब्साङ् ग्यात्सो का देहावसान १६८० में हो गया किन्तु इन के मन्त्री सांग्ये ग्यात्सो ने दलाई लामा की मृत्यु को कई राजनैतिक कारणों से १२ वर्ष तक छिपाए रखा और स्वयं दलाई लामा के नाम से राज्य करते रहे। छटे दलाई लामा लोब्साङ् त्छाङ् याङ् ग्यात्सो (सुमति ब्रह्मघोष सागर) को चीनियों ने भोट देश के पूर्वी भाग में कहीं ले जाकर मार डाला। सातवें दलाई लामा लोब्साङ् केसाङ् ग्यात्सो (सुमति भद्रकल्प सागर) थे। १७२० में चीनियों ने भोट देश के शासन में हस्तक्षेप किया और दलाई लामा के मन्त्री को मार डाला। प्रतिकार स्वरूप भोटवासियों ने ल्हासा स्थित चीनियों को मार डाला। आठवें दलाई लामा लोब्साङ् जाम्पल् ग्यात्सो (सुमति मंजुश्री सागर) थे। इस के पश्चात् चार और दलाई लामा बाल्यावस्था में ही मृत्युग्रस्त हो गए। तेरहवें दलाई लामा ङावाङ् लोब्साङ् शुब्दन् ग्यात्सो (वागीन्द्र सुमति मुनिशासन सागर) १८७६ ई. में उत्पन्न हुए और १८९३ सें राज्य भार संभाला। इन की मृत्यु १९३३ में हो गई। १४ वं दलाई लामा ६ जून १९३५ में उत्पन्न हुए और १९४० के फरवरी मास में उन्हें गद्दी पर बिठाया गया। ये १४ वें अवतार लामा वर्त्तमान दलाई लामा हैं। इन का पूरा नाम जेत्सुन् जाम्पल् ङावाङ् लोब्साङ् यिशे तान्ज़िन् ग्यात्सो (वागिन्द्र सुमति शासनधर सागर) है। भोट देश पर चीनी आक्रमण के कारण ये भारत आ गए और मसूरी में निवास कर रहें हैं। हमारे शासन के ये सम्मानित-अतिथि हैं। दलाई लामा अपनी सहायता के लिए एक प्रधान मन्त्री नियुक्त करते हैं जो सिलोन् कहलाते हैं। इन का मन्त्री मण्डल

काशक् कहलाता है। मन्त्री मण्डल में केवल चार मन्त्री होते हैं जो शापे कहलाते हैं। ड्रेपुङ् सेरा और गादेन् विहानों के प्रमुख लामाओं को भी समय-सयय पर परामर्श के लिए बुलाया जाता है।

दलाई लामा का पोतल प्रसाद एक विशाल पहाड़ी पर स्थित है। पोतल ११ तले ऊंचा है, और इसमें १००० विशाल कोष्ठ हैं। 'पोतल' संस्कृत का शव्द है। अवलोकितेश्वर के निवास स्थान का नाम पोतल है। दलाई लामा अवलो-कितेश्वर के अवतार माने जाते हैं, इसलिये उन का प्रसाद 'पोतल' कहलाता है। यह प्रासाद सुवर्णमय छतों से मण्डित है। सूर्य की किरणों से द्योतित, ऊंची पहाड़ी पर स्थित यह अति विशाल पोतल प्रासाद सांसारिक मानव को आध्यात्मिक सुख और शान्ति का अज्ञात संदेश देता आया है। इस भूतल में स्थित स्वर्ग के दर्शन करने के लिए सहस्रों मील दूर से लोग कोई पैदल तो कोई घोड़े पर, कई-कई मास तथा वर्ष तक चल कर आते हैं और इस के नीचे पहुंच कर वे भक्त जन इस के आध्यात्मिक संदेश के आगे नतमस्तक हो जाते हैं। इसके दर्शन मात्र से ही भक्त जन पुलकित हो जाते थे, तर जाते थे। सभा भवन, स्वागत भवन इत्यादि बहुत सुन्दर शैली से सजे हुए हैं। सब ही प्रकोष्ठों में रंगीन भित्ति-चित्र और मूर्तियां हैं। कई मूर्तियां तो बड़े महत्त्व की हैं जैसे स्रोङ्-चाङ्-गाम्पो की मनुष्य-परिमाण मूर्ति तथा उन की दोनों रानियों की मूर्तियां तारादेवी के रूप में। अवलोकितेश्वर की शुद्ध सुवर्ण में बनी मूर्ति तथा एक चन्दन निर्मित लंका से आई मूर्ति। पांचवे दलाई लामा का ऐतिहासिक प्रकोष्ठ। सर्वथा मध्य में शताब्दियों से संचित असंख्य धनराशि का भाण्डागार। रक्त प्रासाद में छोर्तेन बने हैं जिसमें दलाई लामाओं के मृत शरीर मढ़े हुए रखे हैं। ग्यारहवें तले में सब से ऊपर दलाई लामा के रहने के लिए कोष्ठ इत्यादि हैं। यह प्रसिद्ध है कि पीतल प्रासाद में कुछ भारतीय पण्डितों के शरीर भी सुवर्ण में मढ़े रखे हैं। पोतल का अपना हस्तलिखित ग्रन्थों का पुस्तकालय भी हैं। ग्रीष्म ऋतु में दलाई लामा नोर्बुलिका प्रासाद में चले जाते हैं और वहीं से राजकार्य किया करते हैं। नोर्बुलिका का पुस्तकालय अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थों से परिपूर्ण है। भोट निवासियों के हृदय में दलाई लामा के लिये बहुत श्रद्धा है और उन के दर्शनों के लिए वे सदैव लालायित रहते हैं।

(शेष अगले अङ्क में पढ़िये)

निराशा का कारण

आप की निराशा का कारण यही है कि आप अपने सुख के लिये जीना चाहते हैं। जो दूसरों के लिये जीना चाहता है, वह कभी निराश नहीं हो सकता।

—मनीषी टालस्टाय

स्वर्गीय सरदार वल्लभ भाई पटेल

श्री मोरारजी देसाई केन्द्रीय वित्त मन्त्री

सरदार पटेल के चमत्कारिक काम भारतवासियों के दिल में हमेशा अंकित रहेंगे। इतिहास में ऐसे व्यक्ति, जिन्होंने थोड़े समय में इतने बड़े-बड़े काम किये, बहुत कम हैं। केवल देश के ही इतिहास में नहीं, बल्कि सारे जगत् के इतिहास में उनका स्थान बहुत ऊंचा रहेगा और देश के निर्माताओं में वे हमेशा आगे रहेंगे—स्वर्गीय सरदार पटेल के जन्म दिन पर केन्द्रीय वित्त मन्त्री श्री मोरारजी देसाई के ये उद्‌गार उन के उस भाषण के अंश हैं जो ३१ अक्टूबर १९५९ को रात्रि ९ बजे आकाश वाणी से प्रसारित किया गया।

आज श्रद्धेय स्वर्गीय सरदार वल्लभभाई पटेल का जन्म दिन मनाया जाता है। उन का जन्म किस दिन हुआ, इस का कोई निश्चय नहीं है। केवल मैट्रिक के सर्टिफिकेट में यह तारीख लिखी है। उसी आधार पर सरदार स्वयं इसी दिन को अपना जन्म दिन मानते थे।

सरदार के जीते जी यह दिन बड़ी शान से सब जगह मनाया जाता था। देश के कोने-कोने से उन को शुभकामनायें व बधाई मिलती थीं। जब से वे केन्द्रीय सरकार में सम्मिलित हुए और एक के बाद एक काम उन्होंने देश की सेवा में किये, तब से वास्तव में यह राष्ट्र-उत्सव बन गया था। आज के दिन का जो महत्त्व तब था वह अब भी है क्योंकि भारत के इतिहास में उन का स्थान अमिट है। यही नहीं बल्कि जगत् के इतिहास में ऐसे व्यक्ति, जिन्होंने थोड़े समय में इतने बड़े-बड़े काम किये, बहुत कम हैं। यदि उन की सेवा की ओर दृष्टि डालें और भारत को उस के क्या लाभ मिले और उस का परिणाम आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र में क्या निकला व निकलता जायेगा उस की ओर भी ध्यान दें तो आपको स्पष्ट हो जायेगा कि उन के चमत्कारिक काम भारतवासियों के दिल में हमेशा अंकित रहेंगे।

सरदार का जन्म गुजरात के एक साधारण गांव करमसद में हुआ। उस समय किस को कल्पना थी कि भारत का वह रत्न अपनी चमक व दमक से सारे देश में अपनी रोशनी फैलायेगा और उसका प्रकाश और देशों में भी पहुंचेगा। यद्यपि बचपन उन का साधारण गुजरा, फिर भी उन में भविष्य की प्रतिभा कुछ-कुछ दिखाई देती थी। अपने साथियों की लीडरी, खासकर अन्याय के विरुद्ध, दो तीन बार की। मनोरंजन व हास्य-रस का भी शौक था। जरूरत पड़ने पर कठोरता व कटाक्ष के शब्द भी इस्तेमाल कर लेते थे। पढ़ाई के बाद वकालत की और उस समय भी अपना रौब व दबदबा खूब जमा लिया। उस जमाने में जब कि सरकारी अमलदारों का बोलबाला था, तब भी वे सरदार से डरते थे। अपने ऊपर काबू इतना था कि जिस समय अदालत में बहस के बीच अपनी स्त्री की मृत्यु की सूचना उन को मिली, किसी को मालूम न होने दिया। पहले अपने कर्त्तव्य का पालन किया, बहस समाप्त की, उस के बाद उस ओर

ध्यान दिया। इस मजबूती का प्रमाण उन्होंने सब के सामने गान्धी जी की मृत्यु के समय भी दिया। यद्यपि उनको बहुत भारी चोट लगी जिस ने उन के दिल पर असर किया, फिर भी आंख से न आंसू निकला, न मुंह से कोई चीख निकली। बड़ों में श्रद्धा बराबर रखते थे। उन का मान हमेशा निभाते थे यहां तक कि रुपये इत्यादि का प्रबन्ध विलायत जाने के लिये कर चुके थे फिर भी बड़े भाई ने जब पहले जाने की इच्छा प्रकट की तो उन्हीं को जाने दिया और खुद कई वर्ष बाद गये।

विलायत से बैरिस्ट्री की परीक्षा बड़े इनाम के साथ पास की। वापस आकर शान से रहने लगे। ब्रिज के शौकीन थे, क्लब भी जाते थे, उसके साथ-साथ दोस्ती निभाने में सब से आगे थे।

गांधी जी के प्रति सच्ची निष्ठा

यद्यपि अहमदाबाद में उनका स्थान काफी ऊंचा था, फिर भी राजनीतिक क्षेत्र में लाने के लिये विधाता ने गांधी जी की प्रतीक्षा कराई। गांधी जी की प्रेरणा व मनुष्य को पहचान के परिणाम स्वरूप देश को सरदार जैसा रत्न मिला। ऐसा मालूम होता है कि बापू जैसे गुरु को सरदार जैसे शिष्य की आवश्यकता थी। वह कमी भाग्य ने पूरी की। गुरु को शिष्य व शिष्य को गुरु मिला और अंतिम वर्षों में कुछ मतभेद होने के अतिरिक्त भी यह रिश्ता दोनों ने अपने-अपने जीवन तक निभाया। खेड़ा के सत्याग्रह में उस सम्बन्ध का आरम्भ हुआ। उसके बाद रोज-रोज बढ़ता गया। सरदार के जीवन व विचारों में उनके रहन-सहन में परिवर्तन हुआ। देश की आजादी की लड़ाई में अथवा रचनात्मक व संगठन के कामों में बड़े कौशल व बुद्धि से सरदार ने गांधी जी का हाथ बंटाया। पहली बार मतभेद दोनों में लड़ाई के जमाने में हुआ। कैबिनेट-मिशन के बाद दोनों ने कुछ अलग-अलग रास्ता लिया। परन्तु फिर भी गांधी जी को सरदार का व सरदार को गांधी जी का ख्याल उसी तरह रहता था। यहां तक कि मैं स्वयं इस बात का साक्षी हूं कि गाँधी जी के स्वर्गवास के बाद भी सरदार के दिल में यही ख्याल उठता था कि बापू जीवित होते तो क्या सोचते और उसी पर अमल करते थे।

बापू के जीवन और विचारों से जितने सरदार परिचित थे, महादेव भाई के अलावा कोई और उतना परिचित नहीं था। सरदार, बापू के विचारों को किसी संकुचित दृष्टि से नहीं देखते थे, बल्कि उनके विशाल हृदय में उन विचारों से वही रोशनी पड़ती थी जो कि स्वयं बापू के चित्त में भी रहती थी। सरदार व बापू का जो कुछ मतभेद था वह कोई व्यक्तिगत नहीं था, बल्कि मतभेद केवल इस विषय पर था कि देश के लिये क्या ज्यादा उत्तम या दुरुस्त है। उनके मतभेद केवल तीन विषय पर थे। एक तो कैबिनेट मिशन की योजना पर हुआ, इस विषय पर सरदार का दृढ़ विचार था कि उसका स्वीकार करना देश के हित में नहीं। दूसरा देश के विभाजन पर हुआ, इस पर सरदार को पूरा यकीन था कि

देश के सामने मुसीबतों व सकटों से बचने के लिये कोई और रास्ता नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि सरदार ने यह रास्ता केवल अपनी निजी खुशी के लिये या निराशा और अशक्ति के कारण या लार्ड माऊंट बैटन के फुसलाने पर लिया। जो लोग वास्तविक बातों को जानते हैं या सरदार के स्वभाव से परिचित हैं, वे इन सब बातों को मिथ्य या झूठ ही कह सकते हैं। क्यों कि सरदार न तो किसी के फुसलाने या बहकाने में आ सकते थे न उन को देश के हित के आगे कभी अपने निजी ख्याल आते थे। तीसरा मत भेद देश की आजादी के बाद कुछ घटनाओं पर हुआ था, किन्तु उस में ज्यादातर मत भेद बापू के व्रत पर था। उस में भी अन्तर केवल देश के हित के कारण था। सरदार का कहना था कि कुछ एक बातें जिन पर गांधी जी ने व्रत का निश्चय किया था, उस समय की स्थिति, खास कर पाकिस्तान से हमारे सम्बन्ध की हालत देखते हुए, देश के लिये हानिकारक थीं। कुछ दिनों के लिये दोनों में इस कारण मत भेद रहे परन्तु अन्तिम दिवस भगवान् की लीला थी कि दोनों के बीच में जो दीवार खड़ी हुई थी गिर गयी और दोनों के दिल की जो सफ़ाई हुई, वह दोनों के साथ-साथ ही गयी।

सरदार के चमत्कारी काम

सरदार की कीर्ति, यश व वैभव के विषय में या उन की देश की सेवा के विषय में मुझे विस्तार से कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। ये सब बातें हमारे आपके सामने हुईं और उन के कामों का लाभ रोज़ हम उठा रहे हैं। जिस प्रकार आजादी के पहले व बाद उन्होंने देश में शान्ति की स्थापना की, जूनागढ़ व हैदराबाद की समस्याओं का हल किया और देश को एक विशाल मुसीबत से बचाया, देश के शासन का रूप बदला, सारे हिन्दुस्तान को एक किया और यह सारा काम लगभग दो-ढ़ाई वर्ष में कर दिखाया, उसका उदाहरण देश के क्या जगत् के इतिहास में मिलना मुश्किल है। यदि इसका भी ख्याल करें कि उन के स्वास्थ्य का क्या हाल था, दिल पर गांधी जी की मृत्यु की क्या चोट लगी और यह सारा काम राज़ी खुशी बगैर किसी ज़बरदस्ती के पूरा किया तो वास्तव में एक दैवी चमत्कार सा प्रतीत होता है। यदि ये काम न होते तो न हमारी आर्थिक योजनायें बन सकती थीं, न हम यह प्रगति कर सकते थे और न देश-देशान्तर में हम यह असर रख सकते थे।

मुझे पूरा यकीन है कि यह काम केवल सरदार कर सकते थे और अगर सरदार जैसे व्यक्ति इस कठिन समय पर हमारे पास नहीं होते तो पता नहीं, देश को किन-किन संकटों का सामना करना पड़ता। आज जब कि सब काम इतनी आसानी से उन्होंने कर लिये, तब हमें उन के महत्त्व का अनुमान इतना नहीं होता, परन्तु उस समय की कठिनाइयों पर अगर दृष्टि डालें तो मालूम होता है कि हां, वास्तव में वे काम कितने जबरदस्त थे और सुलझाने के लिये कितनी गुत्थियां थीं। जिस समय सरदार ने केन्द्र में अपना ओहदा संभाला उस समय देश में चारों तरफ काली घटायें छायी हुई थीं।

लीग एक तरफ चोट पर चोट लगाती थी, ब्रिटिश सरकारी अमलदार खुले खजाने देश का द्रोह करते थे, देश के कुछ लोग खुद उस विद्रोह में शामिल थे। सारी हिन्दुस्तानी रियासतों को अलग रखने की पूरी कोशिश जारी थी, बल्कि ऐसा मालूम होता था कि एक नहीं, कई टुकड़े इस देश के होंगे। शासन का ढांचा लचक रहा था और टूटने के करीब था। प्रांतों में भी अशान्ति एवं झगड़े फैले हुए थे। उन्होंने थोड़े समय में देश की स्थिति संभाली। विभाजन के कुछ ही दिनों बाद हिन्दुस्तान में शान्ति स्थापित कर दी और शासन का ढांचा नये सिरे से बनाया। सारे देश को मिला कर एक किया और इन सब समस्याओं के अलावा आर्थिक कठिनाइयों को भी सुलझाने में पूरा हिस्सा लिया।

देश द्रोहियों के दुश्मन

कुछ लोग उन को पाकिस्तान का द्रोही समझते थे, सरदार जो काम करते थे खुले दिल से करते थे और उन्होंने कई बार इस बात पर जोर दिया कि देश का विभाजन भाइयों में बंटवारे की तरह था और पाकिस्तान के लिये उन की उसी तरह की शुभ-कामनाएं थीं जैसे कि दो बिछड़े हुए भाइयों में होती हैं। लोग शायद भूल गये कि मार्च-अप्रैल, १६५० में जब पूर्वी बंगाल से हिन्दू लाखों की तादाद में बंगाल में दाखिल हो रहे थे और ऐसा मालूम होता था कि उस दबाव के बोझ से सारे देश को चोट पहुंचेगी तो सरदार और नवाबजादा लियाकत अली खां जवाहरलाल जी के साथ दिल्ली में मिले और भारत और पाकिस्तान में एक समझौता हुआ। बंगाल की स्थिति बहुत बिगड़ी हुई थी। किसी की हिम्मत इस समझौते पर बंगाल में अमल कराने की नहीं होती थी। सरदार का स्वास्थ्य गिरा हुआ था, दिल की धड़कन जोरों पर थी और कमजोरी भी छायी थी। ऐसी स्थिति में भी वे बंगाल गये और एक सप्ताह में जिस तरह उन्होंने बंगाल की स्थिति बदली और आखिर में समझौते के पक्ष में रेडियो पर भाषण किया उस, की मिसाल मेरे ख्याल में बहुत ही कम मिलेगी। सरदार के देहान्त के बाद नवाबजादा लियाकत अली खां ने जो उन की प्रशंसा की वह खुद इस बात की पुष्टि करती है कि सरदार पाकिस्तान के एवं मुसलमानों के दुश्मन नहीं थे। सरदार वास्तव में दुश्मन उन के थे, जो देश से द्रोह करते थे, क्योंकि उनका देश का प्रेम इतना जबरदस्त था कि वे उसी कसौटी में हरेक व्यक्ति को कसते थे।

इस थोड़े से समय में मैंने सरदार के जीवन की कुछ बातों पर आप सब की दृष्टि डाली है। मेरा सरदार का सम्बन्ध जब से मैंने अपनी नौकरी से इस्तीफा दिया और देश की आजादी के आन्दोलन में सम्मिलित हुआ तब से था। यद्यपि सरदार कठोर स्वभाव के मालूम होते थे और जो कदम उठाते थे उससे पीछे नहीं हटते थे, फिर भी उन के स्वभाव में काफी नम्रता थी, उन के दिल में क्षमा और करुणा की भी पूरी जगह थी। किसी की प्रतिष्ठा मिटाने के हक में वे कभी नहीं थे। जब तक कि कोई स्वयं अपने को इस हालत में नहीं डाल लेता

था कि उस की प्रतिष्ठा बच नहीं सकती थी तब तक उन के सामने उस की प्रतिष्ठा मिटाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। अपने साथियों तथा सहकारियों से हमेशा प्रेम से पेश आते थे, उन के दिल और दिमाग दोनों विशाल और विस्तृत थे। बड़ी-बड़ी समस्याओं को आसान बनाना खूब अच्छी तरह जानते थे। हमेशा अपने साथियों के दुःख और संकट दूर करने की चेष्टा करते थे। यह इन्हीं सब भलाइयों का नतीजा था कि जब देश को जरूरत पड़ी, तब देश के वे इतने काम आये। केवल देश के ही इतिहास में नहीं, बल्कि सारे जगत् के इतिहास में उनका स्थान बहुत ऊंचा रहेगा और देश के निर्माताओं में वे हमेशा आगे रहेंगे।

(आकाशवाणी के सौजन्य से प्राप्त)

माननीय सरदार पटेल विषयक एक सुखद वैयक्तिक संस्मरण

२ अक्टूबर १९४७ को मेरे जन्म स्थान दुनियांपुर (जिला मुलतान—जो अब दुर्भाग्यवश पाकिस्तान में सम्मिलित हो चुका है) के निवासियों का एक शिष्ट मण्डल जिस में मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्री बालचन्द जी और कनिष्ठ भ्राता पं॰ धर्मवीर जी वेदालङ्कार आदि भी सम्मिलित थे श्री वीरेन्द्र जी के नेतृत्व में जो उन दिनों पंजाब विधान सभा के सदस्य उस समय के पुनर्वास विभाग मन्त्री श्री नियोगी जी से मिला और उन से वहां की विषम परिस्थिति को बताते हुए उन से निवेदन किया कि या तो विशेष गाड़ियों का प्रबन्ध कर के वहां के दुःखित लोगों को अमृतसर तक पहुंचाया जाए अथवा विशेष बसों का इस कार्य के लिये प्रबन्ध हो और जब तक इन में से कोई कार्य नहीं होता तब तक हिन्दू पुलीस का प्रबन्ध किया जाए क्यों कि उन दिनों दुनियांपुर के स्टेशन मास्टर की हत्या की गई थी और लोग अत्यन्त भयभीत थे। खेद है कि श्री नियोगी जी ने जिन से ३ बजे का समय ले कर शिष्ट मण्डल मिलने गया था ४।। बजे तक प्रतीक्षा कराने के पश्चात् ३ मिनट में खड़े २ ही शिष्ट मण्डल को रूखा उत्तर दे दिया और सरकार की इन में से किसी भी मांग के पूरा करने में असमर्थता दिखाई। उन्होंने सहानुभूति का एक शब्द तक नहीं कहा। इस पर शिष्ट मण्डल अत्यन्त निराश और खिन्न होकर लौट गया। तब यह निश्चय किया गया कि माननीय सरदार वल्लभ भाई पटेल जी से ३ अक्टूबर को प्रातः उन की कोठी पर या बाग में मिला जाए। उन दिनों सरदार पटेल गृह मन्त्री थे और उन से मिलने के लिये प्रातःकाल के २ घण्टे प्रायः ५ बजे से ७ तक पहले से समय लेने की आवश्यकता न होती थी। श्री वीरेन्द्र जी ने उस समय उपस्थित होने में असमर्थता प्रकट की तब मेरे नेतृत्व में शिष्ट मण्डल भेजने का निश्चय किया गया। ३ अक्टूबर को प्रातः ६ बजे के लगभग हमारा शिष्ट मण्डल माननीय पटेल जी की कोठी पर नई देहली गया पर ज्ञात हुआ कि वे बाग़ में भ्रमणार्थ गये हुए हैं और थोड़ी देर में लौटेंगे। हम लोग उस बाग़ की ओर चले जहां वे भ्रमणार्थ जाया करते थे तब सौभाग्यवश उन के दर्शन हो गये। मैंने आगे बढ़ कर उन्हें सादर प्रणाम किया और अपना

परिचय देते हुए शिष्ट मण्डल के आने का प्रयोजन बताया । उन्होंने बड़े ध्यान से हमारे सारे निवेदन को सुना और सहानुभूति प्रकट की । जब मैंने बताया कि हम लोग दुनियांपुर के निवासी हैं तो अपने स्वभावानुसार वे हंसे और कहने लगे यह तो बड़ा विचित्र नाम है । मैंने हंसी में कहा कि हम लोग दुनियांपुरी (विश्व-नागरिक-वर्ल्ड सिटिज़न्स) हैं । सारी बात को ध्यान पूर्वक सुनने के पश्चात् उन्होंने हम लोगों को आश्वासन दिया और कहा कि इन दिनों अधिक वर्षा के कारण रेल मार्ग खराब हो गया है तथापि शीघ्र उस की मरम्मत करा कर आप लोगों के निवेदनानुसार व्यवस्था करा दी जाएगी । मैंने शिष्ट मण्डल की ओर से उन को हार्दिक धन्यवाद देते हुए कहा कि आप जैसे भारत रत्न से हमें ऐसे ही व्यवहार की आशा थी । आशा है आप इस छोटे से स्थान को भूलेंगे नहीं । उन्होंने कहा कि मैं शीघ्र इस के प्रबन्ध कराने का प्रयत्न करूंगा । अगले दिन मैंने उन्हें लिखित रूप में इस भेंट का स्मरण करा दिया और हम लोगों के हर्ष का पारावार न रहा जब कुछ ही दिनों में सरदार पटेल जी की कृपा से दुनियांपुर वासियों के लिये अमृतसर तक पहुंचने का उचित प्रबन्ध हो गया । ऐसे थे सच्चे कर्मवीर, विशालहृदय माननीय सरदार पटेल । हम उन की इस कृपा को कभी भूल नहीं सकते ।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

—o—

अवसर आया लौट न जाये

(१)

अवसर आया लौट न जाये,
युग अपना इतिहास रचाता ।
जो रचता वह अमर कहाता,
क्या तुम अब तक जान न पाये ?

(२)

लहर-लहर सागर की बहती,
युग युगीन की बातें कहती ।
सुनो इसे कुछ समझो जानो,
गई लहर तो लौट न आये ॥

(३)

मन में अंकित स्वप्न सुनहले,
वाणी से करणी में आयें ।
कर्म सिद्धि का मार्ग तुम्हारा,
जहां बढ़ो वह सफल कहाये ॥

(४)

अभिलाषा के दीपक जल जल,
परिभाषायें कर जाते हैं ।
गतानुगत के सही अर्थ को,
बुझ-बुझ कर समझा जाते हैं ॥

—श्री कमल साहित्यालङ्कार

एक सत्य कथा—

मूक प्रभाव

श्री रमेशकुमार लौ

गर्मियों के दिन थे, दुपहरी में धरा तप रही थी। किन्तु ऐसे समय में भी देश-भक्त अपने-अपने विचारों के अनुकूल कहीं सत्याग्रह, कहीं मद्यनिषेध, कहीं क्रान्ति कारियों की बैठक का संचालन कर रहे थे, पं. लेखराम जी प्रातः ही घर लौटे थे। खाना खा रहे थे कि डाक से एक पत्र पहुंचा। माता ने, खाना भी खाते और साथ में पत्र भी पढ़ रहे पुत्र की मुख मुद्रा से जान लिया कि फिर कहीं से बुलावा आया है। माता वात्सल्य प्रेम में दुःख के साथ यह सोच ही रही थी, कि थाली सरकाने का शब्द कानों में पड़ा।

'हैं खाना क्यों अधूरा छोड़ दिया?' मां घबरा कर बोली।

'मां जाना है।'

'इतनी जल्दी? शाम को चले जाना।'

'शाम तक तो मामला ही बिगड़ जायेगा, दूसरे, गाड़ी भी तो एक घण्टे तक ही जाने वाली है।'

'अपने बीमार बच्चे को तो देख, तेरे जाने से . . .

'पर एक के पीछे मैं अनेकों को कैसे छोड़ दूं, पीछे आप भी तो हैं, कुछ भी नहीं होगा माँ, मैं जल्दी ही आ जाऊंगा।'

मिन्टों में ही पंडित जी तैयार होकर टांगे में चढ़ बैठे। द्वार पर खड़ी मां आंसू भरी आंखों से देखती ही रह गई। मन में तूफान उठ रहा था पर बाहरी शान्ति वैसे ही थी।

गाड़ी वेग से बढ़ी जा रही थी। अगले स्टेशन पर ही उन्हें उतरना था। सोचा छोटा स्टेशन है गाड़ी थोड़ी देर ही ठहरेगी। इसलिए बांहों में सामान लटका कर, दरवाजा खोल उतरने के लिए एक दम तैयार हो खड़े हो गये जैसे कोई सेनापति रणक्षेत्र में उतरने के लिए आकुल हो।

अब स्टेशन दूर से दीखने लगा किन्तु गाड़ी की गति धीमी क्यों नही हो रही? अरे गाड़ी तो रुक ही नहीं रही। हैं! हैं! अरे कोई गिर गया—गिर गया और लोगों ने केवल इतनी उद्विग्नता से कि पैरों पर खड़े होकर देखा ही कि पंडित जी गाड़ी से कूद कर पत्थरों पर औंधे गिर पड़े थे! किसी ने जंजीर खींचने की आवश्यकता भी नहीं समझी, शायद इसलिए कि कूदने को तो पहले ही तैयार दीख रहे थे।

लेखराम जी धूप से तपे कंकड़ों पर गिर पड़े थे। शरीर में से स्थान-स्थान पर रक्त बहने लगा। कपड़े भी फट गये। बिस्तर कहीं पड़ा था और थैला कहीं, पर सच्चे सेनानी जिन के लिए शरीर तो केवल साधन मात्र ही रह जाता है, अपनी पीड़ाओं की परवाह ही कब करते हैं। वह उठे, सामान उठाया, सामने ही एक पगडंडी थी बढ़ चले। गांव भी कोई स्टेशन को अपना मुख मान उन के साथ जुड़ा हुआ तो था नहीं, वह तो उदर के उस विचित्र शिशु के समान था जिस के सर और धड़ तो बन चुके हों किन्तु बीच की गर्दन को बनने के लिए अभी

समय की आवश्यकता थी । अभी दिन वैसा ही गर्म था और भूखे प्यासे घायल सेनानी बोझ ढोते हुए बढ़ते जा रहे थे ।

काफी चलने के बाद वह ग्राम में पहुंचे । उन की अवस्था ने उन के कार्य को इतना सरल बना दिया कि अपना धर्म छोड़ रहे उन भाइयों पर इतना प्रभाव डाला कि लेखराम जी को वहां एक शब्द भी कहने की आवश्यकता न पड़ी । सचमुच भगवान् जो करता है अच्छा ही करता है !!

प्रसिद्ध पुरुषों के कुछ मननीय वचन

मैंने सारी आयु में यही सीखा कि मैं कुछ नहीं जानता ।

—युनानी दार्शनिक सुकरात

कोई कितना भी महान् क्यों न हो कभी अन्धे बन कर उसका अनुसरण न करो ।

—स्वामी विवेकानन्द

जो अन्याय का सामना नहीं कर सकता, वही सबसे कमज़ोर है ।

—नेता सुभाषचन्द्र जी

समाज परिवर्तनशील है । कई पुरानी बातें अनुपयोगी हो जाती हैं, उन का असली मतलब हम भूल जाते हैं या उनका स्वरूप बदल जाता है । उन का ठाठ तो बना रहता है, परन्तु प्राण निकल जाता है । जो रीतियां या प्रथाएं अनावश्यक हैं, उन्हें दूर करना ही होगा ।

—यूनानी दार्शनिक प्लैटो (अफ़लातून)

१. अरे, सत्य को ढूंढो, सत्य को । जो तुम नहीं जानते कह दो, मैं नहीं जानता । जिन की पर्वाह तुम नहीं करते, कह दो, तुम उनकी पर्वाह नहीं करते ।

२. मितव्ययिता का अर्थ यह नहीं है कि कम कोयले जलाओ बल्कि क्षण-क्षण जलने वाले समय का सदुपयोग करो ।

३. मैं डंके की चोट से कहता हूं कि अज्ञान ही पाप है । जो चोरी करता है वह अपने को चुराता है । जो धोखा देता है वह अपने को धोखे में रखता है । जो कर्ज़ लेता है, वह अपना ही कर्ज़दार बनता है और जो दूसरे को जितना देता है, उतना ही अपना लाभ करता है ।

४. सच मानिये, पूरी ईमानदारी की कमी ही असफलता की जननी है ।

५. सब से सुखी वही है जो अपने काम में लगा हुआ है, उनकी सफलता पर ही जिस का ध्यान है, न कि इस बात पर कि लोग क्या कह रहे हैं और ज़माना क्या कहेगा ?

सुप्रसिद्ध अमेरिकन विचारक

—इमर्सन

हमारा सत्यार्थ प्रकाश

डा० सूर्यदेव शर्मा जो साहित्यालङ्कार, एम०ए०, एल०टी०, डी०लिट, अजमेर

(१)

शतशः वर्षों से भारत के, आंगन में अंधयारा था।
अंड बंड पाखंड खंड ने, पूरा पाश पसारा था ।।
दम्भ द्वेष के दावानल ने, प्रेम प्रसून पजारा था ।
वन्य वृकों ने भारतभुवि का, भव्योद्यान उजारा था ।।

(२)

उस तमसावृत गगनांगन में, दयानन्द रवि उदय हुआ ।
जगत विजयिनी आर्य जाति की, देख दुर्दशा सदय हुआ ।।
सत्य अर्थ के सुप्रकाश से, तम सत्तोम का विलय हुआ ।
अखिल आर्य जगती का अंचल, अंधकार से अभय हुआ ।।

(३)

सत्य अर्थ का पुण्य प्रकाशन, चिर 'सत्यार्थप्रकाश' करे ।
मृतसमान में जीवन ज्योति, नित 'सत्यार्थप्रकाश' भरे ।।
हत भाग्यों पर हाथ कृपा का, प्रिय 'सत्यार्थप्रकाश' धरे ।
दीन देश के दारुण दुःख को, शुचि 'सत्यार्थप्रकाश हरे ।।

(४)

वह 'सत्यार्थप्रकाश' हमारा, प्राणों से भी प्यारा है ।
आर्य जाति की जर्जर नौका का प्रलम्ब पतवारा है ।।
वही हमारा जीवन-धन है, केवल वही सहारा है ।
मृतक राष्ट्र के हेतु निरन्तर, बहती अमृत धारा है ।।

(५)

कौन शक्ति है जग में जो रवि के प्रकाश को मिटा सके ?
कौन शक्ति है जो पर्वत के, तुंग शृंग को लिटा सके ?
कौन शक्ति है जो सागर के, चंड वेग को घटा सके ?
कौन शक्ति है जो ऋषि के इस, अमर ग्रन्थ को हटा सके ?

(६)

है 'सत्यार्थप्रकाश' हमारा, तन धन उस पर वारेंगे ।
प्राणों की अंतिम आहुति से, भी हम उसे उबारेंगे ।।
यावज्जीवन जग में उस को जनता में सुप्रचारेंगे ।
'सूर्य' समान उसी से जग में, ज्ञान प्रकाश प्रसारेंगे ।।

शान्ति 'एकाङ्की नाटक'

पं० प्रवीण कर्णवीर जी वेटपालेम आन्ध्र प्रदेश

षष्ठ दृश्य

(यथा पूर्व रामनाथ तथा सोमनाथ मण्डप पर बैठ गये । दोपहर का समय)

रामनाथ—(चुरटी जलाकर) क्या है सोमनाथ ! मालूम हुआ ? परसों हमने आशा माझी के रूप में जो बात की वह सच निकली हैं !

सोमनाथ—(बीड़ी को जलाते हुए) क्या हुआ है ? तुम को हमेशा कोई न कोई नई बात कान में पड़ती रहती ही है । भले हो तुम !

रामनाथ—(खुशी से) 'देश-भक्त' श्री राम बाबू ने शान्ति दूत को प्रेरित कर एक सभा रखके सब के यहां 'मरजर' लेकर भारत-माता से अनुरोध करके प्रधान मन्त्री के यहां प्रेषित कर कितना परिवर्तन किया है ! सवेरा होते ही 'सरकार की इच्छा में कौन सी कमी' 'के अनुसार सारा हाल पूरा बदल दिया । अब यह सारी प्रतिष्ठा उन देश भक्त तथा शान्ति दूत को प्राप्त होनी है । विद्या-विधान का परिवर्तन ही नहीं, स्वदेशी वस्त्रों का अच्छा इन्तजाम किया है । हमारी दरिद्र-देवता भाग गई होगी ।

सोमनाथ—अन्नपूर्णा के नाम से प्रख्याता इस भारत-वसुन्धरा में अब अन्न के अभाव से कोई नहीं मरता । भारतमाता को, देश-भक्त को, शान्ति दूत को, हमें स्वप्न में भी नहीं बिसरना चाहिये । सबेरे उठते ही इस मूर्ति-त्रय का संस्मरण करना चाहिये । नहीं तो महा पाप लगता है ।

रामनाथ—(विनोद के साथ) प्रधान मन्त्री को भी नहीं भूल सकते हैं । उनका त्याग ही हमें स्वराज्य प्रदान कर चुका ! पुत्र रत्न होने के कारण ही अपनी माता के समान पूज कर भारतमाता के स्वप्न के कथना-नुसार कर दिया । ब्रह्मा के समान किन्हीं को नहीं बिसरना चाहिये ।

सोमनाथ—तुम्हारी बात ठीक ही है ! हमारा त्याग इतना ही है ! तुम को चुरटियां, मुझे बीड़ियां चूसते ही रहनी चाहियें । जब बीड़ी नहीं मिलती तब की व्यथा क्या कहूं ? मैंने आज से बीड़ी न पीने का वायदा किया । तुम अपनी बात कहो ।

रामनाथ—(जोश के साथ) वाह वाह ! जब 'चुरटी' नहीं मिलती तब देखना है मेरा तमाशा ! मेरी मनो-वेदना वह परेश ही जानता है ! कुछ भी हो, तुम्हारा त्याग देखने से मुझे उत्तेजना हो गई है ! मुझे भी अपनी शक्ति के अनुसार काम करना है ज़रूर । चुरटी को अपनी जिन्दगी में नहीं छूता ! भगवान् को साक्षी रूप में रख कर, मालूम है !

सोमनाथ—(भक्ति के साथ) क्या है रामनाथ ! मेरी अभिलाषा है कि हमें प्रति वर्ष इन के संस्मरणार्थ उत्सव भी मनाना चाहिए । तुम्हारी मर्जी क्या है ?

(शेष १३६ पृष्ठ पर)

गताङ्क से आगे--

भक्तिलहरी

कविवरो बुद्धदेवो विद्यामार्त्तण्डः

: ६ :

वदन्त्येके रोगान् कफ पवनपित्तादि विकृतीन्, विपाकम् पापानां विगतजनुषः प्राहुरपरे ।
अहन्त्वेतन्मन्ये तिमिरगहने जीवनपथे, प्रदीपानालोकप्रकिरणपटून्मे प्रियसखान् ।।

: ७ :

प्रभो योऽयं मृत्युः परमभयदो जीवनभृताम्, स्मृतेर्नाम श्रावादपि सपदि कम्पं जनयति ।
कथं ते भक्तानां सृजति मधुधारां श्रवणयोः, मुखे कान्तिं दीप्तिं नयनयुगले वीरसुलभाम् ।।

: ८ :

इदं रूपं रम्यं श्रवणसुखदाता ध्वनिरयं, सुखस्पर्शो वायुः सुरभिकुसुमं स्वादु च फलम् ।
निधिं लब्धुं गुप्तं, यदिह रचितं साधनमभूत्, तदेवाहं भित्तिं व्यवहितिपरां हन्त कृतवान् ।।

: ९ :

विसर्पन्तम् भूमौ यदि जननि मां दीनमवशम्,स्वभक्तं वात्सल्याद्,गिरिशिखरमारोप्य नयसि ।
तदा दर्पोद्रेकादहमतिमतिभ्रंशविवशस्तमुद्देशं कुर्वे निजजलधिपाताय फलकम् ।।

: १० :

गुहायां घोरायां जलनिधितले वातिविषमे, निदध्याः स्वच्छन्दं नहि स मदुपालम्भविषयः ।
इदन्त्वेकं याचे यदि वहसि सौभाग्यशिखरम्,न दौर्भाग्यं कुर्यास्तमिह निजभक्त्या विरहितम् ।।

: ११ :

न चित्रं ब्रह्मेति प्रभुरिति पुनर्मातरितिवा,स्मरामि त्वां लिङ्गैस्त्रिभिरपि यदि प्रीतिवशगः ।
तवालोको येषां सकृदपि गतो लोचनपथम्, न किं तेषांलिङ्गस्मृतिरपि सहैवास्तमयते ? ।।

: १२ :

धनं धान्यं राज्यं रिपुपरिभवं भोगमजरम्, न किं किं याचेहं परमकृपणैरक्षरचयैः ।
कृतघ्नस्त्वद्दत्तान् नहि खलु नयामि स्मृतिपथम्,कदाचित् पञ्चैतान्निजकरणदास्या यविषयान् ।।

: १३ :

प्रमादादालस्यादुपहतमतिर्विप्लुतगतिः, स्वदासानां दासान् प्रभुपदमुपानीय विकलः ।
शरण्यं त्यक्त्वा त्वां सकल विपदामन्तकरणम्, नटँस्तेषान्तन्त्रेऽगममकथनीयामिह दशाम् ।।

: १४ :

न नृत्यं नो गीतं तव शुभगुणानान्न कथनम्, न दीनानां सेवा जडवदपि चाकल्पशयनम् ।
न यत्रार्तत्राणे विविधविपदां स्वागतविधिर्न यात्रे तं मोक्षं नय यदि तवाज्ञैव भवति ।।

: १५ :

विना लोभं लाभं यदिह सकलं विश्वमवसि, प्रयासं लोकार्थेऽनवरतमनन्तं च वहसि ।
ममाप्येतां शक्तिं वितर भगवन्नित्यमधुराम्, तवेदं वात्सल्यं यदि मयि ततो जन्म सफलम् ।।

: १६ :

यदा दर्शं दर्शं निजमलिनकर्मावलिमहम्, घृणामात्मन्येव स्वयमिह दधे नैवकरुणाम् ।
न दत्तो निर्वासः कथमिह ममेत्यत्र फलितम्, स्वराज्यस्यान्तं त्वं यदिह विवशो नैव लभसे ।।

: १७ :

अहो वृक्षस्याग्रे कुसुममतिरम्यं किमु भवान्, न मां दत्ते द्रष्टुं मुहुरिहशिरः सन्नमयति ।
बहुकुद्धं बुद्धं नहि पुनरहो मूढ़मतिना, कथं पादस्यान्ते लुठति मम चिन्तामणिरयम् ।।

: १८ :

मम श्रुत्वा काव्यं यदि मुदमुपेयुः सहृदयाः, कथं ब्रूयाम् न स्यान्मम सुखकरोऽयं व्यतिकरः ।
इदन्त्वन्यत्किञ्चिद् यदि नटति रोमावलिरियं, यदास्मिन्व्यासङ्गे तवगुणकथा स्फूर्तिमयते ।।

: १९ :

जनाक्रन्दैः शून्ये क्वचिदपि गिरौ निर्झरतटे, यदिन्दोर्निष्यन्दे नयति सितिमानं त्रिभुवनम् ।
विनाहेतुं नेत्रे सततजलधारां प्रवहतः, स कोप्यानन्दोऽयं नहि तनुषु मानम् व्रजतियः ।।

: २० :

निशीथे विश्रब्धं शयनसुखमग्नेऽखिलजने, इमे केचिद्दुःखे परवशजने वत्सलतया ।
यदस्रान्मुञ्चन्ति प्रतिरजनिमुक्तैर्हिमकणैः, स्वयं कर्मण्यस्मिंस्त्वमिह जननीमान्विनयसे ।।

: २१ :

निमग्ना स्वच्छन्दं भवति परमानन्द जलधौ, विहारायोन्मग्ना सदसि विदुषां लोभविवशा ।
इमान्यानामुञ्चन्निजवसनलग्नान्रसकणान्, इयं मुग्धावाणी त इह खलु काव्येतिभणिताः ।।

: २२ :

प्रतीमः कल्याणं तव शिशुरयं धारयति नः, परं प्रत्यक्षोऽयं विधिरपि न शक्योऽपलपितुम् ।
न सन्देहः क्रीडारसमनुभवत्येष सततम्, करैस्तप्तैः किन्तु प्रतिदिनमयं नः प्रदहति ।।

: २३ :

वयं धारापातैः शिशिरशिशिरैर्भूतलगृहे, सुशीतैर्भृङ्गारै र्व्यजनपवनैः कृत्रिमहिमैः ।
स्वजीवंनिर्वोढुं यदि कथमपि स्याम सफलाः, कथन्त्वेतेकुर्युः खगमृगगणा नान्यगतयः ।।

: २४ :

हृते छत्रे पत्रैर्विरहिततनौ पादपगणे, वदन्तः स्वम्भावं हृदयगतमार्तैः स्वनयनैः ।
नदीतीरे दूरे कथमपि हृता गोपशिशुभिः, भजन्ते रोमन्थं प्रविरलजले ग्राम्यपशवः ।।

: २५ :

य एते दातारो यवयवसगोधूमपयसाम्, सुसिक्ताः प्रस्वेदैर्विरलवसनाश्छत्रविमुखाः ।
सुतप्तायां भूमौ क्वचिदपि पदत्राणरहिताः, किमेषां तप्तानां सततपरितापः श्रमफलम् ।।

गुरुकुल विश्वविद्यालय काङ्गड़ी का संस्कृत प्रचार विषयक अद्भुत कार्य

पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड

गुरुकुल काङ्गड़ी की स्थापना सन् १६०२ में श्रद्धेय महात्मा मुन्शीराम जी ने (जो संन्यास लेकर पीछे से स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम से जगद्विख्यात हुए) जिन पवित्र और उदात्त उद्देश्यों से की थी उन में वेदादि सत्य शास्त्रों की शिक्षा और संस्कृत विद्या का प्रचार भी था जिस की उस समय के विद्यालयों में नितान्त उपेक्षा थी । गुरुकुल ने अपनी समस्त शाखाओं में संस्कृत शिक्षा को सब विद्यार्थियों के लिये अनिवार्य कर दिया और इस की उच्चतम शिक्षा का प्रबन्ध किया । इस का परिणाम यह हुआ कि यहां के विद्याधिकारी परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों की भी संस्कृत की योग्यता बाहर के शास्त्री परीक्षोत्तीर्ण छात्रों से भी अधिक रही । यहां के जो स्नातक विद्यालङ्कार, सिद्धान्तालङ्कार, वेदालङ्कार इत्यादि उपाधि लेकर निकले उन में से बहुतों की वेद, वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य, दर्शनशास्त्र इत्यादि की योग्यता बाहर की आचार्य इत्यादि संस्कृत की उच्च परीक्षाओं में उत्तीर्ण व्यक्तियों से कम नहीं, बल्कि विषय और ज्ञान की विशालता की दृष्टि से अधिक ही रही यदि ऐसा कहा जाए तो इस में कोई अत्युक्ति न होगी। गुरुकुल विश्वविद्यालय ने न केवल सस्कृत के विद्वान् अपितु संस्कृत में धारा प्रवाह भाषण करने वाले, ग्रन्थ निर्माण करने वाले और उत्कृष्ट कविता करने वाले कवि भी अच्छी संख्या में उत्पन्न किये ।

संस्कृत ग्रन्थ निर्माण

गुरुकुल का ध्यान संस्कृत के उत्तम ग्रन्थों के निर्माण की ओर स्थापना काल से ही रहा । प्रारम्भिक कक्षाओं से लेकर महाविद्यालय की उच्च कक्षाओं तक के लिये व्याकरण, साहित्य, दर्शन, धर्म शास्त्र तथा वेद व्याख्या विषयक ग्रन्थ गुरुकुल के आचार्य तथा उपाध्याय वर्ग की ओर से बड़ी संख्या में लिखित और प्रकाशित किये गये । इस बात को अनुभव करते हुए कि संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थ जो विशारद, शास्त्री, आचार्य, काव्य तीर्थ आदि परीक्षाओं में पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ाये जाते हैं, उन में अनेक अश्लील, कामोत्तेजक स्थल हैं जो ब्रह्मचर्य की दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक हैं, गुरुकुल ने इन पुस्तकों के सशोधित संस्करण प्रकाशित किये जिस से इन काव्य नाटकादि के उत्तम भागों से ब्रह्मचारी लाभ उठा सकें । इस लेख में मैं गुरुकुल विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित इन पुस्तकों की एक संक्षिप्त सूची जनता के सम्मुख रखना चाहता हूं । इन का विभाजन व्याकरण, साहित्य, दर्शन शास्त्र, स्मृति, नीति शास्त्र अन्य तथा पाठ्य पुस्तकादि रूप से किया जाता है ताकि गुरुकुल की संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में इस विशिष्ट देन का विद्वानों और सर्व साधारण को कुछ परिचय मिल सके ।

व्याकरण के ग्रन्थ

प्राचीन व्याकरण में सब से प्रमुख स्थान पाणिनिमुनि कृत अष्टाध्यायी और पतञ्जलि मुनि कृत महाभाष्य का है । गुरुकुल के प्रथम आचार्य पं. गङ्गादत्त जी व्याकरण के धुरन्धर विद्वान् थे

उन्होंने 'पाणिनीयाष्टकम्' इस नाम से दो भागों में अष्टाध्यायी के सम्पूर्ण सूत्रों की व्याख्या में अद्भुत ग्रन्थ लिखा जो गुरुकुल की ओर से प्रकाशित किया गया। यह ग्रन्थ अत्यधिक उपयोगी है। इस के दो भागों का मूल्य आजकल १४.०० अर्थात् ७.०० प्रति भाग है।

अष्टाध्यायी मूल को भी गुरुकुल की ओर से प्रकाशित किया गया और सन्धि विषय, नामिक, आख्यातिक, स्त्रैणताद्धित आदि उस के भागों को पृथक् संस्कृत टीका तथा टिप्पणियों सहित प्रकाशित किया गया जिन से सब विद्यार्थी लाभ उठा सकते हैं। पं. धर्मदेव जी वेदवाचस्पति द्वारा लिखित सरल शब्द रूपावली भी प्रकाशित की गई। महाभाष्य के पस्पशाह्निक, अङ्गाधिकार आदि अनेक प्रकरणों को पृथक् प्रकाशित किया गया। गुरुकुल के व्याकरण विषयक ये प्रकाशन छात्रों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

संस्कृत की प्रारम्भिक पुस्तकें

गुरुकुल ने संस्कृतपाठशालाओं में साधारणतया प्रचलित पाठ्य पुस्तकों को अनेक अंशों में पर्याप्त उपयोगी तथा शैली की दृष्टि से उत्तम न पाकर अपनी ओर से सुयोग्य पण्डितों द्वारा पुस्तकें तय्यार कराईं जिन में से निम्न विशेष उल्लेख योग्य हैं।

१. गुरुकुल के प्रथम सुयोग्य स्नातक, संस्थापक महात्मा मुन्शीराम जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री हरिश्चन्द्र जी विद्यालङ्कार कृत संस्कृत प्रवेशिका १ म भाग जिस के १६ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस से इस की उपयोगिता और लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है।
२. संस्कृत प्रवेशिका—२ य भाग श्री आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति कृत।
३. बालनीति कथा माला जिस में हितोपदेश पञ्चतन्त्र आदि में से नीति विषयक अनेक कथाओं को सरल भाषा में संकलित किया गया।
४. हितोपदेश का संशोधित गुरुकुलीय संस्करण।
५. पञ्चतन्त्र का संशोधित गुरुकुलीय संस्करण २ भागों में।
६. संस्कृताङ्कुर।
७. काव्यलतिका—इस में रघुवंश, भट्टिकाव्य आदि से कुछ उत्तम भागों को संगृहीत किया गया। यह छात्रों के लिये बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है।
८. संस्कृत साहित्य पाठावली।
९. आर्य सूक्ति सुधा।
१०. नीतिशतक (भर्तृहरि कृत) का संशोधित संस्करण।
११. कविराज श्री जगन्नाथ कृत 'अन्योक्ति शतकम्' का संशोधित संस्करण।
१२. साहित्य पुष्पाञ्जली—गुरुकुल के ब्रह्मचारियों तथा स्नातकों द्वारा निर्मित गीतियों का संग्रह।

उच्च कक्षाओं केलिये संस्कृत ग्रन्थ

साहित्यसुधा संग्रह के तीन भाग

यह संग्रह वेद, उपनिषत्, रघुवंश, कुमारसंभव, कादम्बरी, हर्ष चरित, वासवदत्ता, अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रबोधचन्द्रोदय, उत्तर रामचरित, मुद्राराक्षस, अनर्घराघव इत्यादि प्रसिद्ध संस्कृत

ग्रन्थों से साहित्याचार्य पं. वागीश्वर जी विद्यालङ्कार और पं. भवानीप्रसाद जी ने किया जो विद्यार्थियों के लिये अत्यधिक उपयोगी है। इस के द्वारा विद्यार्थी प्राचीन और मध्यकालीन कवियों तथा लेखकों की रचनाओं के अच्छे उपयोगी भागों का बड़ी अच्छी तरह से रसास्वादन कर सकते हैं। श्री विश्वनाथ कृत साहित्य दर्पण संस्कृत का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। गुरुकुल की ओर से उस का संशोधित संस्करण प्रकाशित किया गया जिस से सब छात्र भली भांति लाभ उठा सकते हैं। गुरुकुल के आचार्य महात्मा मुन्शीराम जी ने स्वयं सुप्रसिद्ध मनुस्मृति का एक संशोधित संक्षिप्त संस्करण (जिस में से प्रक्षिप्त श्लोक पृथक् कर दिये गये) 'वेदानुकूल संक्षिप्त मनुस्मृतिः' के नाम से गुरुकुल की ओर से प्रकाशित कराया जिस से मनु स्मृति का शुद्ध रूप में विद्यार्थी अच्छा परिचय प्राप्त कर सकें। इसी प्रकार अन्य भी संस्कृत साहित्य विषयक कुछ ग्रन्थ और गुरुकुलीय साहित्य परिषत् की ओर से कुछ उत्तम संस्कृत निबन्ध प्रकाशित किये गये।

योग दर्शन

योग दर्शन को भोजवृत्ति भी गुरुकुल विश्व विद्यालय की ओर से प्रकाशित की गई जो एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है।

वेद और उपनिषत् विषयक साहित्य

वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं जो धर्म और विज्ञान के मूल हैं। वेदों की अनिवार्य शिक्षा का गुरुकुल में सब ब्रह्मचारियों के लिये विना किसी प्रकार के भेद भाव के प्रबन्ध किया गया। वेदों की शिक्षाओं को विद्वन्मण्डली और सर्व साधारण तक पहुंचाने के लिये गुरुकुल की ओर से स्वाध्याय मंजरी के नाम से पुस्तकें प्रकाशित होती रही हैं जिन में से विशेष उल्लेखयोग्य निम्न लिखित हैं।

१. वैदिक विनय–३ खण्ड—आचार्य देवशर्मा जी विद्यालङ्कार (स्वा. अभयदेव जी) कृत।
२. वरुण की नौका २ भाग—आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति कृत।
३. वेदोद्यान के चुने हुए फूल—आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति कृत।
४. वेद का राष्ट्रीय गीत—आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति कृत।
५. मेरा धर्म—आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति कृत।
६. वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र—श्री पं. धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति कृत।
७. वेदों का यथार्थ स्वरुप—श्री पं. धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड कृत।
८. वैदिक ब्रह्मचर्य गीत—आचार्य अभयदेव जी।
९. ब्राह्मण की गौ—आचार्य अभयदेव जी कृत
१०. वैदिक अध्यात्म विद्या—श्री पं. भगवद्दत्त जी वेदालङ्कार कृत।
११. वैदिक स्वप्न विज्ञान—श्री पं. भगवद्दत्तजी वेदालङ्कार कृत।
१२. आत्म समर्पण—श्री पं. भगवद्दत जी वेदालङ्कार कृत।
१३. वैदिक सूक्तियां—श्री पं. रामनाथ जी वेदालङ्कार कृत।
१४. वेदगीताञ्जली—श्री पं वेदव्रत जी वेदा-

लङ्कार आदि द्वारा संकलित ।

१५. सोम सरोवर—श्री पं. चमूपति जी एम. ए. कृत ।

१६. सन्ध्या रहस्य—श्री पं. विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार कृत ।

१७. सन्ध्या सुमन—श्री पं नित्यानन्द जी वेदालङ्कार कृत ।

१८. ईशोपनिषद् भाष्य—श्री पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति कृत इत्यादि ।

इन पुस्तकों में वेदों के अनेक सूक्तों अथवा अध्यायों तथा विविध विषयों की अत्युत्तम व्याख्या की गई है जो विद्वानों और सर्व साधारण सब के लिये उपयोगी है । इस प्रकार वेदों और उपनिषदों की शिक्षाओं को लोक प्रिय बनाने के लिए गुरुकुल का यह कार्य अत्यधिक अभिनन्दनीय है ।

संस्कृत सभा तथा पत्रिका

इन के अतिरिक्त संस्कृत भाषण के अभ्यास के लिये भी गुरुकुल में संस्कृतोत्साहिनी, देव गोष्ठी इत्यादि सभाओं का आयोजन सदा किया जाता रहा जिस की ओर से कवि सम्मेलन, संस्कृत साहित्य सम्मेलन आदि विविध सम्मेलनों का आयोजन होता रहा । इस का परिणाम यह हुआ कि गुरुकुल ने बहुत बड़ी संख्या में संस्कृत भाषा के धुरन्धर धाराप्रवाही वक्ता उत्पन्न किये । संस्कृत की उषा नाम की पत्रिका भी गुरुकुल की ओर से कई वर्षों तक निकलती रही ।

इस प्रकार इस लेख द्वारा संस्कृत के प्रचार विषयक गुरुकुल के कार्य का संक्षेप से दिग्दर्शन कराया गया है । ——धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

हार्मोन्स क्या हैं ?

ब्र० वेदमित्र आर्य तृतीय वर्ष ए० एम० बी० एस०

हार्मोन एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है वीद्दीपन या उत्तेजना । आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व इसका ज्ञान हुआ । वह द्रावा (या अन्तः स्रावी ग्रन्थि का रस) जो कि शरीर की चयापचय (मैटोबोलिक प्रोसैस) पर प्रभाव डाले उसे हार्मोन्स कहते हैं । यह पदार्थ हमारे शरीर के अन्दर अन्तः स्रावी ग्रन्थियां उत्पन्न करती है । ये अन्तः स्रावी ग्रन्थियां हमारे शरीर में अनेकों हैं जैसे–चुल्लिका ग्रन्थि (थायोरायड् ग्लैण्ड) परिचुल्लिका ग्रन्थि (पैरा थायोरायड् ग्लैण्ड) अधिवृक्क ग्रन्थि (सुपरारीनल ग्लैण्ड) पोषणिका ग्रन्थि (पिटचूटरी ग्लैण्ड), थायमस ग्लैण्ड, यकृत् (लिवर), बीज ग्रन्थियां आदि ।

यदि किसी अन्तः स्रावी ग्रन्थि के कार्य का पता लगाना हो तो हम उसे निकाल कर पता चला सकते हैं । अब हम हरेक ग्रन्थि के रस की कमी अथवा अधिकता से होने वाले विकारों पर विचार करेंगे । तो पहले—

चुल्लिका ग्रन्थि

यह ग्रन्थि हमारे शरीर में श्वास पथ के ऊर्ध्व भाग में स्थित है । इस में दो खण्ड होते हैं । भार में यह ग्रन्थि लगभग ३ माशे की

होती है और यह अत्यधिक रक्तवाहिनी युक्त रचना है सब से पहले वैज्ञानिकों को इसी ग्रन्थि के स्राव के बारे में ज्ञात हुआ था। परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि यह शरीर के चयापचय का नियन्त्रण करती है और छोटे बच्चों में उनकी वृद्धि पर प्रभाव डालती है। इसी ग्रन्थि से जो स्राव निकलता है उसे (थाइ-रोक्सीन) कहते हैं। जब यह स्राव को कम पैदा करती है तो इस से मनुष्यों में एक रोग उत्पन्न होता है जिसे (मिक्साडिमा) कहते हैं इस रोग में व्यक्ति मूढ हा जाता है तथा मानसिक दृष्टि से पिछड़ जाता है, तथा चेहरा और हाथ फूले-फूले से और त्वचा रूक्ष प्रतीत होती है। ठीक इसी प्रकार से बच्चों में भी यह रोग उत्पन्न होता है जिसे (क्रिटिनिज्म्) कहते हैं. इस में बच्चा ठिगना तथा भोंदू हो जाता है। इन रोगों को हम इस ग्रन्थि का सत्व दे कर ठीक कर सकते हैं। चुल्लिका ग्रन्थि जब अधिक स्राव उत्पन्न करने लगे तो उस से मनुष्य को घातक रोग उत्पन्न होता है जिसे (एक्सोफ्थले-मिक गोयटर) कहते हैं। इस में मनुष्य की आंखें बाहर निकल आती हैं और निरन्तर शक्ति क्षीण होने के कारण मनुष्य दुर्बल हो जाता है जिस से मृत्यु हो जाती है। ऐसी अवस्था में या तो इस को निकालना पड़ता है या एक्स किरणों द्वारा नष्ट करना पड़ता है। कभी चुल्लिका ग्रन्थि के कोषों के बढ़ जाने से गलगंड (सिम्पल गौयटर्) उत्पन्न हो जाता है जो कि इस के सत्व को देने से ठीक हो जाता है। यह ग्रन्थि हमारे शरीर के लिए आवश्यक है।

परि चुल्लिका ग्रन्थियां

परि का अर्थ है चारों ओर अर्थात् यह चुल्लिका ग्रन्थि के अति समीप या उस में धँसी रहती है। मनुष्यों में इन की संख्या प्रायः चार होती है। कभी-कभी चुल्लिका ग्रन्थि के साथ इसे निकाल देने पर इस से मृत्यु हो जाती है। यह हमारे शरीर में कैल्शियम का नियन्त्रण करती है। यदि हम इस के सत्व को खाने दें तो रक्त में कैल्शियम के बढ़ जाने के कारण शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। यह स्राव कैल्शियम के शोषण में सहायक है। यदि इस ग्रन्थि को निकाल दिया जाय तो रह-रह कर मांसपेशियाँ संकुचित होती हैं तथा फड़कने लगती है। यह भी मनुष्य के लिए नितान्त आवश्यक है।

अधिवृक्क ग्रन्थियां

ये दो ग्रन्थियां होती हैं एक २ ग्रन्थि प्रत्येक वृक्क पर कलगीदार टोपी के समान लगी होती है, इसी कारण से ही इन्हें अधिवृक्क कहते हैं। वास्तव में प्रत्येक अधिवृक्क ग्रन्थि दो-दो अन्तः स्रावी ग्रन्थियों का समुदाय है, इस के वाह्य भाग को अधिवृक्क मध्य कहते हैं। इन दोनों भागों के अलग-अलग कार्य हैं।

(शेष अगले अङ्क में पढ़िये)

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां पत्रिका कार्यालय में आनी चाहियें)

वेद व्याख्या ग्रन्थ पुष्प १, २, ३

स्वामी विद्यानन्द जी, वेद संस्थान, अजमेर
मूल्य क्रमशः २.००, १.५०, २.०० ।

स्वामी विद्यानन्द जी ने (जिन का अपने को 'आचार्य' और 'विदेह' नाम से लिखना हमें उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि वे किसी गुरुकुलादि के आचार्य नहीं और न जनक महाराज जैसी उच्च विदेह स्थिति उन्हें प्राप्त है। उन्हें अपने चित्रों को छपवाने का भी पर्याप्त शौक है।) ये तीन वेद व्याख्या ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं जो सम्मत्यर्थ हमें प्राप्त हुए हैं। हम ने इनका आद्योपान्त ध्यान पूर्वक अनुशीलन किया है। जहां तक इन से लेखक महोदय की वेदों पर भक्ति, मन्त्रों का मनन और वेदों को लोकप्रिय बनाने की भावना टपकती है, हम उस की प्रशंसा करते हैं। किन्तु मुख्य प्रश्न केवल वेदों के प्रति भक्ति प्रकट करने का नहीं, उसे तो प्रति दिन वेदों का स्वाध्याय कर और जनता में प्रवचनों द्वारा भी वे प्रकट कर सकते थे, किन्तु जब वे यह दावा करते हैं कि वे चारों वेदों का भाष्य कर सकते हैं, ऐसी अद्भुत योग्यता उन को प्राप्त है तो इस की परीक्षा करना विचार शील विद्वानों के लिये आवश्यक हो जाता है ताकि वे स्वयं भी भ्रम में न रहें और अन्य भोले-भाले साधारण शिक्षित अथवा वेदों के विषय में अल्पज्ञ लोगों को भ्रम में न डाल सकें। उन के अभिमत मूल सिद्धान्तों का विवेचन भी आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि से जब हम ने इन विषयों का विवेचन किया तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि स्वामी विद्यानन्द जी के अन्दर उस योग्यता का अभाव है जो एक वेदभाष्यकार के अन्दर होनी चाहिये। उन्होंने हमारे मन्त्रित्वकाल में सार्वदेशिक धर्मार्य सभा में २८-५-५५ को यह अपने हस्ताक्षरों से लिख कर दिया था कि 'मुझे (विदेह को) व्याकरण, निरुक्त, दर्शन आदि शास्त्रों का ज्ञान नहीं। वेदों के स्वर को मैं नहीं जानता और ना ही संस्कृत भाषा का मुझे अच्छा ज्ञान है।' ऐसी अवस्था में एक ऐसे व्यक्ति को जिस का यौवन का अधिकतर समय पोलीस विभाग की सेवा में व्यतीत हुआ हो और जिस को गुरुमुख से व्याकरण, निरुक्तादि वेदाङ्गों और दर्शन शास्त्र जैसे उपाङ्गों के अध्ययन करने का अवसर न प्राप्त हुआ हो, सम्पूर्ण वेदों के प्रामाणिक भाष्य करने की योग्यता कैसे प्राप्त हो सकती है ? इस वर्ष टङ्कारा में ७ मार्च को मुझे स्वामी विद्यानन्द जी ने अवश्य कहा था कि मैं ने व्याकरण, निरुक्तादि का पूर्ण अध्ययन कर रखा है और वेद विषयक सब ग्रन्थों का मेरे समान अध्ययन शायद किसी ने भी न किया हो, पर जब मैं ने पूछा तो फिर आपने सार्वदेशिक धर्मार्य सभा में श्री श्रद्धानन्द बलिदान भवन में हम लोगों के सामने क्यों लिख कर दिया था कि मुझे व्याकरण निरुक्तादि का ज्ञान नहीं, तो उन्होंने कहा कि वह तो पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती के आदेशानुसार मैं ने ऐसे ही कह दिया था। मैं ने तब भी उन को

कहा था कि किसी के भी कहने से आप को अयथार्थ बात न कहनी चाहिये थी और अब अपने लिखित वक्तव्य का फल आप को भोगना चाहिये। इस बात से उन की सत्यवादिता का भी भली-भांति परिचय मिलता है। वस्तुतः उन के इन तीनों व्याख्या ग्रन्थों को ध्यान पूर्वक पढ़ने पर उन के लिखित वक्तव्य का हो हमें समर्थन मिला है कि उन्हें व्याकरण का साधारण ज्ञान भी नहीं है और उन के ये तीनों व्याख्या ग्रन्थ यद्यपि साधारण शिक्षित लोगों को कुछ रुचिकर प्रतीत होंगे पर व्याकरणादि विषयक सैकड़ों अशुद्धियों से भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ विद्युताग्नि, विद्युदग्नि या वैद्युताग्नि के स्थान पर (पृष्ठ १, १) तम आच्छादित की सन्धि तमाच्छादित (पृष्ठ १, ८) पुत्रे को चतुर्थी का रूप समझ कर (पृष्ठ १६) पर 'इव पिता पुत्रे' जैसे पिता पुत्र के लिये, परिणित (पृष्ठ ११) आह्वाता तम (पृष्ठ १६) हविर्धान, अनुभव और कर्म के साथ 'तामसी' का प्रयोग (पृष्ठ २३) अग्नि-अर्थ-अग्न्यार्थ (पृष्ठ ३५) सुभाषिनी जिह्वा (पृष्ठ ७२, ७३, ७४) ५ वार यज्ञीयता (पृष्ठ ५ सामव्य: महः भिः महानताओं द्वारा (सामव्या पृष्ठ ८) नितराम अनेक स्थानों पर वनोवास (साम पृष्ठ ७) गृहिणी के स्थान पर (पृष्ठ २, ८६) में ही ८ वार 'गृहणी' का प्रयोग (पृष्ठ ६) में दुःख के स्थान पर दुख का प्रयोग, यज्ञनयन्ता—सर्वतो श्रेष्ठ (पृष्ठ २, ६४) सन्ततन (पृष्ठ २, ११३) वशयिनी, सुखयिनी (पृष्ठ २, ११६) चक्षूष्मा न के स्थान में 'चक्षुवन्' (पृष्ठ २, ११८) पितृ+उचित=पितरोचित (पृष्ठ ३, २३६) कई बार सुफलदायिनी आशीर्वाद (पृष्ठ ३, २३४) विप्र की व्युत्पत्ति वि+प्र=अतिशय प्रकृष्ट, सदा सत्य के स्थान में सदासत्त का कई बार प्रयोग (पृष्ठ २, १२३ १२४) पितृमत्+इति=पितृ मतिति (पृष्ठ २, १४०) रूप राशिन् (पृष्ठ ३, १८२) मनोकामना (पृष्ठ ३, १६३) इत्यादि अशुद्धियों की कहां तक गणना की जाए। ये लेखक की व्याकरणानभिज्ञता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। ऐसे ही देवत्वं गच्छति य: स देव: (पृष्ठ २, ११६) 'इस निरुक्ति के अनुसार रथ के दो अश्व अश्वी हैं (पृष्ठ २, १०४) कान्ति और क्रान्ति दोनों शब्द पर्यायवाची हैं, समानार्थक हैं। (पृष्ठ २, १४०) ओं शब्द अर्थात्मक नहीं, भावात्मक है। ओं शब्द न परमात्मा का वाचक है, न इस का कोई अर्थ है। ओं शब्द एक विशेषस्थिति का द्योतक है।' (पृष्ठ २, १०६) उश का अर्थ है कान्ति और ज का अर्थ है जनक, उशज का अर्थ है कान्ति और प्रीति का जनक (पृष्ठ ३, २०२) सोम और सोमान पर्यायवाची हैं (पृष्ठ ३, २०२) जीव संस्कृत में आत्मा के अर्थ में प्रयुक्त होता है किन्तु वेद में जोव शब्द का प्रयोग सर्वत्र मानव या मानवता के अर्थ में है (पृष्ठ २, १४४) इत्यादि से उन की निरुक्तादि ज्ञान शून्यता और वैदिक सिद्धान्तानभिज्ञता का परिचय मिलता है। ऐसे ही उन की भूमिका रूप में दी हुई अनेक मान्यताओं से जिन को विस्तृत परीक्षा इस संक्षिप्त समालोचना में संभव नहीं। रयि शब्द का प्रयोग वेदों में सर्वत्र आत्मिक धन और आध्यात्मिक ऐश्वर्य के अर्थ में हुआ है (पृष्ठ ३,

१८१) जिस ने दाम्पत्य और गृहस्थाश्रम में हो कर आत्म साधन की ओर प्रगमन नहीं किया, उस की आत्म साधना में पूर्ण परिपूर्णता और सम्पूर्णता नहीं आ सकती, कभी नहीं आ सकती (पृष्ठ ३, २२०) इत्यादि अत्युक्ति पूर्ण बातें उन के इन व्याख्या ग्रन्थों में दी हुई हैं जिन में न केवल महर्षि दयानन्द जी के वेद भाष्य का कहीं आश्रय नहीं लिया गया, अपितु उन की सर्वथा अवहेलना की गई है। उपर्युक्त शब्द (पृष्ठ ३, २२०) तो उन की साधना की अपूर्णता और अपनी अधिक योग्यता को दिखाने के लिये लिखे गये प्रतीत होते हैं। अच्छा होता यदि स्वामी विद्यानन्द जी अपनी हस्तलिखित व्याख्या को किसी व्याकरण निरुक्तादि शास्त्रज्ञ विद्वान् से संशोधित करा लेते। अब भी उन्हें अपनी अल्प योग्यता को स्वीकार करते हुए सम्पूर्ण वेदों के भाष्य के दुस्साहस का परित्याग कर देना चाहिये अन्यथा वे विद्वानों की दृष्टि में उपहासास्पद बने रहेंगे। हमें सखेद कर्त्तव्य बुद्धि से यह अप्रिय आलोचना करनी पड़ी है।

पल्लव और किसलय

लेखक—श्री मङ्गलकिशोर जी पाण्डे प्राप्ति स्थान— प्रभा प्रकाशन ११–ए/६ वेस्टर्न एक्टेन्शन एरिया, करौल बाग़, नई देहली। (पृष्ठ ११६) मूल्य ६.००।

'पल्लव और किसलय' इस साहित्यिक नाम से पुस्तक के विषय का सर्व साधारण पाठकों को ज्ञान हो सकेगा यह हमें कम आशा है, तथापि यह पुस्तक जो सुयोग्य लेखक के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' 'राष्ट्र भारती' 'आज' 'नवराष्ट्र' और 'हलधर' इत्यादि पत्रों में प्रकाशित साहित्यिक निबन्धों का संग्रह है। साहित्य प्रेमियों के लिये बड़ी उपयोगी और मनोरञ्जक वस्तु है। इस में शूद्रक, कालिदास, बाणभट्ट, कल्हण, तुलसीदास, इन कवियों के सम्बन्ध में बड़ी परिष्कृत भाषा में सुन्दर विवेचन किया गया है जिस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक ने इन कवियों के ग्रन्थों को भली भांति अनुशीलन किया है और उन के सम्बन्ध में लिखी हुई पुस्तकों को भी ध्यान से पढ़ा है। समीक्षा वाले प्रकरण में 'साहित्यकार और समीक्षक' में साहित्यकार और समीक्षक के सम्बन्ध का अच्छा विवेचन किया गया है और काश्मीर या कश्मीर, दम्पति और दम्पती, एकत्र और एकत्रित, पत्रकारिता या पत्रकरता इत्यादि कुछ विवादास्पद शब्दों पर श्री किशोरीलाल जी वाजपेयी आदि का पक्ष रखते हुए अपने विचार बड़ी परिष्कृत भाषा में प्रस्तुत किये हैं जिन से हमारी अनेक अंशों में सहमति है। कुछ गम्भीर विवेचन होने पर भी लेखक की शैली अत्युत्तम होने के कारण उस में नीरसता नहीं आने पाई यह प्रसन्नता की बात है। ११६ पृष्ठों की पुस्तक का ६.०० मूल्य उचित नहीं प्रतीत होता। शेष आकार, प्रकार, छपाई आदि सब दृष्टियों से पुस्तक प्रशंसनीय और उपादेय है। हम सुयोग्य लेखक का इस के लिये अभिनन्दन करते हैं। साहित्य में रुचि रखने वालों को इस से अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

गुरु दक्षिणा

लेखक—श्री ब्रह्मस्वरूप जी साहित्यरत्न

गुरुकुल काङ्गड़ी फार्मेसी प्रकाशक— आर्य कुमार सभा किंग्सवे कैम्प देहली । पृष्ठ ३२ मूल्य .२५ नए पैसे ।

श्री ब्रह्मस्वरूप जी का कार्य क्षेत्र इस समय साहित्यिक नहीं है, तथापि उन की साहित्य में रुचि और योग्यता अच्छी है जिस का इस छोटी सी पुस्तक से परिचय मिलता है । गुरु द्रोणाचार्य की एकलव्य से ली हुई क्रूरतापूर्ण गुरु दक्षिणा का इस में सजीव चित्रण करते हुए अन्त में महर्षि विरजानन्द द्वारा स्वामी दयानन्द जी से मांगी वेद प्रचारादि विषयक दक्षिणा की तुलना की गई है, जिस में आकाश पाताल का अन्तर है । भूमिका में महाभारत के समय में जो जन्मानुसार जातिभेद की प्रथा क्रियात्मक रूप से प्रचलित हो गई थी और जिस के परिणाम स्वरूप नीच कुलोत्पन्न होने के कारण द्रोणाचार्य ने एकलव्य से अपने अंगूठे को काट कर देने की गुरु दक्षिणा मांगी, उस के भयङ्कर परिणामों पर उत्तम प्रकाश डाला गया है । पुस्तक उपादेय है।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

महापुरुष कीर्तनम्

लेखक और प्रकाशक—पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड आनन्द कुटीर ज्वालापुर सजिल्द २.२५ अजिल्द २.०० ।

संस्कृत हिन्दी आदि अनेक भाषाओं के प्रसिद्ध लेखक विद्यामार्तण्ड श्री पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति की नवीनतम काव्यमय रचना 'महापुरुष कीर्तनम्' को पढ़ कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । सरस मञ्जुल पदावली में विभिन्न मनोहर छन्दों द्वारा रचित सप्तकाण्डात्मक इस काव्य में प्रथम छह काण्डों में प्राचीन तथा नवीन भारतीय महापुरुषों का और सप्तम काण्ड में विदेशी महापुरुषों का संक्षिप्त, पर यथार्थ कीर्तन किया गया है । महापुरुषों में श्रीराम,श्रीकृष्णादि असाधारण महापुरुष, महात्मा, महाकवि, आचार्य, नेता, वीर पुरुष आदि सब सम्मिलित हैं । महापुरुषों के चयन में ग्रन्थकार का उदार असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण विशेषतः प्रशंसनीय है । निःसन्देह पुस्तक इस योग्य है कि इस को संस्कृत परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में स्थान प्राप्त हो । भाषा और विचार दोनों दृष्टियों से इस से छात्रों को लाभ होगा ।

—मङ्गलदेव शास्त्री (एम ए. डी. फिल)
सेवा निवृत आचार्य संस्कृत कालेज बनारस

पृष्ठ १२५ का शेष

रामनाथ— तुम्हारी मर्जी ही मेरी मर्जी है। हम दोनों धन्य हैं । हमारे जीवन में ही स्वराज्य के बाद राष्ट्रीयशिक्षा-व्याप्ति,और कितने ही सुधार शीघ्रातिशीघ्र किये गये हैं।

सोमनाथ—(सविनय) रामनाथ ! अब तो बिदा दो ! और एक बार समय के अनुसार समीक्षा कर सकते ! (दोनों चले जाते हैं ।)ओ३म् शान्तिः,शान्तिः शान्तिः ।

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की हीरक जयन्ती के सम्बन्ध में

दिल्ली निवासियों से निवेदन

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय राष्ट्र की लाडली शिक्षण-संस्था है। प्राचीन आर्ष शिक्षा पद्धति के साथ नवीनतम विद्याओं का व्यावहारिक समन्वय होने के कारण भारत की राष्ट्रीय संस्थाओं में इस का अपना अनूठा ही स्थान है। देश और विदेश के शिक्षा-विज्ञों ने इस की विशेषताओं को खुले शब्दों में स्वीकार किया है। यह हर्ष का विषय है कि निरन्तर उन्नतिमय जीवन की ६० वीं वर्षगांठ पर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपनी हीरक जयन्ती मना रहा है। यह अवसर हमारे राष्ट्र के लिये अत्यन्त हर्ष का है क्योंकि यह संस्था राष्ट्र की आकांक्षाओं और प्रयत्नों का जीता-जागता नमूना है।

यह निश्चय किया गया है कि इस अवसर पर गुरुकुल की उन्नति और स्थिरता के लिये दस लाख रुपया गुरुकुल कोष के लिये एकत्र किया जाय। विचार है कि दिल्ली और उस के आस-पास के स्थानों से न्यून से न्यून दो लाख रुपये की थैली भेंट की जाय। हम प्रत्येक दिल्ली निवासी से अपील करते हैं कि वह राष्ट्रीय शिक्षा के इस कोष की पूर्ति में यथाशक्ति सहायक हो।

हम दिल्ली निवासियों से आशा रखते हैं कि वे इस अवसर पर गुरुकुल कांगड़ी की हर प्रकार से सहायता दे कर उदारता का सबूत देंगे। भरपूर आर्थिक सहायता तो देंगे ही, उत्सव में सम्मिलित हो कर हार्दिक सहयोग का भी प्रमाण देंगे। हीरक जयन्ती महोत्सव १० अप्रैल १९६० ईस्वी से १३ अप्रैल १९६० ईस्वी तदनुसार २९ चैत्र से १ वैशाख तक धूमधाम से मनाया जायगा।

दिल्ली में धन संग्रह का कार्य नवम्बर में प्रारम्भ होगा। आशा है जब संग्रह-कर्ता आप के पास पहुचें, तब उन्हें अपनी दान की राशि देकर पुण्य के भागी बनेंगे।

हम हैं आप के

१ त्रिलोकचन्द शर्मा, मेयर, दिल्ली नगर निगम।

२ केदारनाथ साहनी, डिपुटी मेयर, दिल्ली नगर निगम।

३ चौधरी ब्रह्मप्रकाश, सदस्य, लोक सभा तथा भूतपूर्व मुख्य मंत्री, दिल्ली राज्य।

४ डॉक्टर युद्धवीरसिंह, भूतपूर्व मन्त्री, दिल्ली राज्य।
५ गोपीनाथ अमन, भूतपूर्व मन्त्री, दिल्ली राज्य।
६ अच्छरूराम, भूतपूर्व जज, पंजाब हाईकोर्ट।
७ डॉक्टर गोकुलचन्द नारंग, भूतपूर्व मन्त्री, पंजाब राज्य।
८ डॉक्टर सुशीला नायर, सदस्य, लोक सभा तथा भूतपूर्व मन्त्री, दिल्ली राज्य।
९ शिवचरण गुप्त, अध्यक्ष, स्टैंडिंग कमेटी, दिल्ली नगर निगम तथा प्रधान, दिल्ली प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी।
१० शामनाथ, लीडर, कांग्रेस पार्टी, दिल्ली नगर निगम।
११ रामनिवास अग्रवाल, भूतपूर्व अध्यक्ष, दिल्ली म्यूनिसिपल कमेटी।
१२ सी० कृष्ण नायर, सदस्य, लोक सभा।
१३ नवल प्रभाकर, सदस्य, लोक भसा।
१४ हंसराज गुप्त, अध्यक्ष, आयरन सिन्डीकेट तथा अन्तरंग सदस्य, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा।
१५ ठाकुरदत्त शर्मा, वैद्य, अमृतधारा फार्मेसी।
१६ जगदेव शास्त्री, सिद्धान्ती, मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब।
१७ रघुवीरसिंह शास्त्री, मन्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा।
१८ अमरनाथ चड्डा, प्रधान, आर्य समाज करोलबाग।
१९ अक्षमय कुमार जैन, सम्पादक, नवभारत टाइम्स।
२० ओंकारनाथ, सदस्य लोक सभा।
२१ कंवरलाल गुप्ता, सदस्य, दिल्ली नगर निगम।
२२ काश्मीरीलाल, सदस्य, दिल्ली नगर निगम।
२३ करतार देवी पुरी, सदस्य, दिल्ली नगर निगम।
२४ कविराज हरनामदास, भूतपूर्व मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा।
२५ कौशिल्यारानी चड्डा, सदस्या, आर्यसमाज करोलबाग।
२६ कृपानारायण, मैनेंजिग डाइरेक्टर, गणेश फ़्लोर मिल।
२७ खडगसिंह, सदस्य, दिल्ली नगर निगम।
२८ खूबराम जाजोरिया, सदस्य, दिल्ली नगर निगम।
२९ जगन्नाथ, बैंकर तथा रईस, सब्ज़ी मंडी।

३० जैनारायण वैश्य, प्रिन्सिपल, श्रीराम कालेज ऑफ कामर्स ।
३१ डी.डी. पुरी, अन्तरङ्ग सदस्य, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ।
३२ डॉक्टर मथुरादास मोगेवाले ।
३३ डॉ.गोवर्धनलालदत्त, प्रिन्सिपल, हंसराज कॉलेज, दिल्ली ।
३४ डॉ. सरूपसिंह, प्रिन्सिपल, करोड़ीमल कॉलेज ।
३५ देवदत्त आर्य, मन्त्री, आर्यसमाज, करोल बाग, दिल्ली ।
३६ देशराज चौधरी, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
३७ देवप्रकाश शास्त्री, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
३८ धर्मवीर वेदालंकार, भूतपूर्व मन्त्री, अखिल भारतीय श्रद्धानन्द ट्रस्ट ।
३९ धनपतराय भारती, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
४० नवनीतलाल, एडवोकेट, सुप्रीम कोर्ट ।
४१ नारायणदास कपूर, बैंकर्स तथा प्रधान मन्त्री, अखिल भारतीय शुद्धी सभा ।
४२ परमेश्वरीदास, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
४३ पुष्पावती पुरी, प्रधाना, स्त्री आर्यसमाज, करोल बाग ।
४४ प्रकाशवती, सदस्या, दिल्ली नगर निगम ।
४५ प्रेमसागर गुप्ता, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
४६ प्रिन्सिपल हरिश्चन्द्र, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
४७ फतेहसिंह चौधरी, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
४८ मदनलाल, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
४९ मित्रसेन सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
५० मुरलीधर डालमिया, सेक्रेटरी जनरल, बिरला मिल ।
५१ मूलचन्द, भूतपूर्व सेक्रेटरी, बिरला मिल ।
५२ मुकुट बिहारी वर्मा, सम्पादक, दैनिक हिन्दुस्तान ।
५३ मनोहरलाल, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
५४ मोतीलाल अग्रवाल, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
५५ मास्टर शिवचरणदास, भूतपूर्व सदस्य, म्यूनिसिपल कमेटी एण्ड प्रोपरटी डीलर ।
५६ मनोहर विद्यालंकार, उपप्रधान, आर्यप्रतिनिधि सभा, पंजाब ।
५७ रणवीर, सम्पादक, दैनिक मिलाप ।

५८ रतनलाल शारदा, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
५९ राजनारायण माथुर, प्रिन्सिपल, हिन्दू कॉलेज, दिल्ली ।
६० रामलाल आनन्द, सीनियर एडवोकेट ।
६१ रामनाथ भल्ला, अन्तरंग सदस्य, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ।
६२ रामचरणलाल अग्रवाल, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
६३ बलराज खन्ना, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
६४ विजयकुमार मलहोत्रा, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
६५ बंशीलाल चौहान, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
६६ विद्यानिधि विद्यालंकार, प्रधान, गुरुकुल कांगड़ी दिल्ली स्नातक मण्डल ।
६७ विश्वबन्धु गुप्ता, सम्पादक, दैनिक तेज ।
६८ विद्यारत्न, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
६९ विद्यावती विशारदा, भूतपूर्व प्रधाना, आर्य समाज, दीवान हाल ।
७० वृजभूषण गुप्ता, प्रिन्सिपल, रामजस कॉलेज ।
७१ वैद्य नारायणदत्त, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
७२ सत्यपाल भसीन, भूतपूर्व प्रधान, आर्य समाज, करोल बाग ।
७३ सत्यदेवी मेहरा, अन्तरंग सदस्या, आर्य समाज, करोल बाग ।
७४ सत्यदेव शर्मा विद्यालंकार, सदस्य,विद्यासभा, आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब ।
७५ सिकन्दरलाल, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
७६ सविता बहिन, सदस्या, दिल्ली नगर निगम ।
७७ वासुदेव, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
७८ शेरसिंह अनहल, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
७९ हरिदत्त शर्मा, सदस्य, दिल्ली नगर निगम ।
८० शिवराम चन्दौक, अपर इण्डिया ट्रेडिङ्ग कम्पनी ।
८१ वेदव्रत विद्यालंकार, अध्यक्ष, न्यू इण्डिया प्रेस, नई दिल्ली ।

सम्पादकीय

महामान्य राष्ट्रपति जी का महत्त्वपूर्ण सन्देश

हमारे देश के महामान्य राष्ट्रपति देशरत्न डा. राजेन्द्रप्रसाद जी समय समय पर जनता और विशेषतः छात्र वर्ग को बड़े उत्तम स्फूर्तिदायक सन्देश देते रहते और उन का ध्यान अपनी प्राचीन आर्य संस्कृति की ओर आकृष्ट करते हैं, यह प्रसन्नता की बात है। गत ६ नवम्बर को धारवाड़ में कर्णाटक विश्वविद्यालय में जो दीक्षान्त भाषण उन्होंने दिया वह इस दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण था कि उस के कुछ मुख्य अंशों को उद्धृत करना हमें सर्वथा उचित प्रतीत होता है। उन्होंने उस भाषण में नवस्नातकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि 'हम अपने देश के पुनर्निर्माण और विकास के लिये जो प्रयत्न कर रहे हैं और योजनाएं बना रहे हैं उन की प्रेरणा हमें अपनी संस्कृति से लेनी चाहिये। अपनी संस्कृति से प्रेरणा ले कर तथा मूल सांस्कृतिक आदर्शों तथा विश्वासों के अनुसार अपने जीवन को ढाल कर ही हम अपने प्रयत्नों में सफल हो सकेंगे। जब तक यह प्रेरणा नहीं मिलेगी तब तक हमारे प्रयत्नों में उद्देश्य की वह दृढ़ता नहीं आएगी जो सफलता के लिये आवश्यक है'। उन्होंने कहा कि 'मुझे पूरी आशा है कि जिस भारतीय मस्तिष्क ने पिछले ज़माने में संस्कृति का इतना विकास किया वह अब स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद धैर्य, प्रेम और सहिष्णुता के युग-पुरातन आदर्शों के विकास के लिये फिर आगे बढ़ेगा। मानव इतिहास में ये भारतीय आदर्श इतने यथार्थ और व्यावहारिक कभी प्रतीत नहीं हुए जितने कि वे आज के युग में प्रतीत हो रहे हैं। आज का युग हमारे विश्वासों और विचारों को जैसी चुनौती दे रहा है, वैसी चुनौती अपने इतिहास में कभी नहीं मिली और अब जब कि संसार के विचारकों में हमारे विश्वासों के प्रति आस्था पैदा हो रही है तब यह नहीं हो सकता कि हम उन से पीछे हट जाएं और जिन विश्वासों ने हमें अब तक जीवित रखा है उन की उपेक्षा कर दें।

संस्कृति क्या है। इस पर उत्तम प्रकाश डालते हुए मान्य राष्ट्रपति जी ने कहा कि 'कुछ लोग संस्कृति तथा सांस्कृतिक बातों को गौण समझते हैं और ऐसा मानते हैं जैसे कि ये कोई ठाले बैठे वक्त में विचार करने की चीज़ें हैं। दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग हैं जो संस्कृति को उपेक्षा के गड्ढे से बाहर लाने का विचार करते हैं, लेकिन ऐसा करते समय वे संस्कृति को केवल संगीत, नृत्य और मनोरंजन तक ही सीमित कर देते हैं। मैं नहीं कहता कि संस्कृति में मनोरंजन का कोई स्थान नहीं, लेकिन संस्कृति को केवल मनोरञ्जन और रंगमञ्च तक ही सीमित कर देना बिल्कुल गलत है। संस्कृति किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के शताब्दियों के अनुभव के आधार पर संचित विश्वासों और संस्कारों की अभिव्यक्ति है। वह हमारे जीवन क्रम में इस तरह गुथी है कि एक पीढ़ी को दूसरी पीढ़ी से जोड़ती है। संस्कृति रूपी इस वस्त्र के ताने बानें हमें प्रत्यक्ष रूप से भले ही न दिखाई देते हों लेकिन मनीषी व्यक्ति उन उंगलियों को पहचानते हैं जो हर समय इन तानों बानों से संस्कृति रूपी वस्त्र को

बुनने में व्यस्त है । . . . इस सांस्कृतिक जीवन धारा के अजस्रप्रवाह से ही यह निश्चित किया जा सकता है कि कौन राष्ट्र कितना शक्तिशाली है और विपन्न स्थितियों में भी अपने अस्तित्व को बनाये रखने की उस में कितनी क्षमता है। जहां तक शक्ति के इस स्रोत का प्रश्न है हम बहुत ही सौभाग्यशाली हैं । शक्ति के इस स्रोत ने हमारे राष्ट्र को जीवित रखा है और समय के थपेड़ों से भारतीय समाज की रक्षा की है । यह सब होते हुए भी एक बात बड़े दुःख की है। जैसे बहुत उपजाऊ भूमि से कम उपज मिलने पर कोई प्रसन्नता नहीं होती, उसी तरह इतनी समृद्ध संस्कृति के होते हुए भी आज की हमारी दुःख और ग़रीबी से भरी हुई जिन्दगी प्रसन्नता की बात नहीं । यदि हम चाहते हैं कि और लोग भी हमारी संस्कृति को उतना ही ऊंचा समझें जितना हम स्वयं समझते हैं, तो हमें अपने वर्तमान जीवन के स्तर को अपनी समृद्ध संस्कृति के अनुरूप ही ऊंचा उठाना होगा । इसलिये हमें अपने देश के पुनर्निर्माण के लिये योजना बद्ध प्रयत्न और राष्ट्रव्यापी आन्दोलन करने की आवश्यकता है । लेकिन यह भी ध्यान रखने की ज़रूरत है कि हम अपने देश के पुनर्निर्माण और विकास के लिये जो प्रयत्न कर रहे हैं और योजनाएं बना रहे हैं उन की प्रेरणा अपनी संस्कृति से हो'। अन्त में उन्होंने नवस्नातकों को यह प्रबल प्रेरणा की कि 'आप ने जो कुछ शिक्षा या संस्कृति यहां प्राप्त की है उसे उस समाज तक ले जाइये जिस के आप भी अङ्ग हैं । अपनी शिक्षणसंस्था के प्रति आप का एक कर्त्तव्य है जो आप से मांग करता है कि अपने जीवन और अपने कार्य कलाप से आप अपने को न केवल भारत के सुसंस्कृत पुत्र और पुत्रियां सिद्ध करेंगे किन्तु भारत की स्वतन्त्रता, एकता और प्रतिभा का दृढ़ रक्षक भी सिद्ध करेंगे ।' इत्यादि

हम महामान्य राष्ट्रपति जी के इस सन्देश को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सामयिक समझते हुए इस का प्रबल समर्थन करते हैं । हम प्रायः देखते हैं कि वैज्ञानिक युग और प्रगति और भारतीय संस्कृति के नाम पर केवल नाच-कूद और निर्लज्जता पूर्ण अभिनयों वा प्रदर्शनों को प्रमुखता दी जा रही है । वर्तमान सांस्कृतिक कार्य क्रम अधिकतर अनैतिकता को प्रश्रय देने वाले होते हैं जो भारतीय संस्कृति की आत्मा के ही विपरीत है । हम समस्त शिक्षित वर्ग और देश के अन्य मान्य नेताओं का भी ध्यान माननीय राष्ट्रपति जी के इस महत्त्वपूर्ण सन्देश की ओर आकृष्ट करते हुए आशा करते हैं कि उस पर उचित ध्यान अवश्य दिया जाएगा तथा भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त करने का यत्न किया जाएगा न कि पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुसरण ।

मान्य उपराष्ट्रपति जी का सच्चरित्र निर्माण पर बल

१ नवम्बर को हमारे मान्य उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्लीराधाकृष्णन् जी ने बी. जे. एम. रामपुरिया कालेज बीकानेर में भाषण देते हुए कहा कि छात्रों को कर्त्तव्यनिष्ठ और चरित्रवान् बनाना चाहिये । सत्य का ज्ञान, शिक्षा का आवश्यक अङ्ग है । शिक्षा केवल अक्षर ज्ञान

के लिये नहीं, वासनाओं पर विजय प्राप्त करने से सच्ची शिक्षा प्राप्त हो सकती है। ज्ञान व कल्याण का विकास, अपनी वासनाओं की संयम तथा चारित्र्य का उत्थान ये तीनों वस्तुएं जिस ने संचित कर ली हैं वही सुलझा हुआ व्यक्ति है। उन्होंने विद्यार्थियों से प्रेरणा की कि वे एकाग्र बुद्धि से ज्ञान के संचय में अपने आप को लगा दें। देश में उत्पादन एवं साधनों की कमी नहीं है, अगर कोई कमी है तो चारित्र्य की, एकाग्र बुद्धि की एवं कठिन परिश्रम की हमें जीवन के सभी व्यवहारों में पवित्रता लानी चाहिये। (हिन्दुस्तान ७-११-५६)

माननीय उपराष्ट्रपति जी का सच्चरित्र पर इतना बल देना सर्वथा उचित ही है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में सच्चा निर्माण पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता जिस के भयङ्कर दुष्परिणाम सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। उदार धार्मिक शिक्षा तथा अन्य साधनों से विद्यार्थियों को सच्चरित्र बनाना शिक्षकों का सब से बड़ा कर्त्तव्य है। इसी उद्देश्य से श्रद्धेय महात्मा मुन्शीराम जी ने गुरुकुल की स्थापना की थी। आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री डा० कालिकाप्रसाद जी ने देहरादून आर्यसमाज के ८० वें वार्षिकोत्सव पर भाषण देते हुए गत ७ नवम्बर को ठीक ही कहा कि 'आज की सब से बड़ी आवश्यकता चरित्र है। चरित्र का आधार धर्म और धर्म का आधार ईश्वर विश्वास है। उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालय की शिक्षा से मनुष्य का निर्माण नहीं होता। वास्तव में प्रारम्भिक शिक्षा ही मनुष्य जीवन को ढाल देती है। प्रारम्भिक शिक्षा के लिये आर्यों के भी जब तक कोई अच्छे शिक्षणालय नहीं आप कैसे आशा कर सकते हैं कि आप के बच्चों का निर्माण आर्य संस्कृति के अनुरूप होगा। इस आवश्यकता और अभाव की पूर्ति की ओर आर्यों को विशेष ध्यान देना चाहिये।

वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत
श्री गोपालरेड्डी का यथार्थ कथन

केन्द्रीय राजस्व और असैनिक व्यय मन्त्री शान्ति निकेतन के स्नातक श्री गोपालरेड्डी ने आकाश वाणी के छठे संगीत सम्मेलन के अवसर पर हुई सामवेद संगीत गोष्ठी का २८ अक्टूबर को उद्घाटन करते हुए ठीक ही कहा कि 'वेद हमारी संस्कृति के मूल स्रोत हैं। वेद ईश्वरीय वाणी है। मनुष्य ने इन की रचना नहीं की। वेद संसार के सब से प्राचीन ग्रन्थ हैं। आर्य धर्म और आर्य सभ्यता का उद्गम वेद ही है। भारत के सांस्कृतिक जीवन की रक्षा करने में वेदों का वही महत्त्व है जो हिमालय का इस की भौगोलिक स्थिति में है। श्री रेड्डी ने कहा कि भारतीय संगीत की उत्पत्ति सामवेद से हुई है। सामवेद की रचनाओं को गाया जाता है। मन्त्रों का अशुद्ध उच्चारण या इन्हें ग़लत ढंग से गाना पाप समझा जाता है इस से स्पष्ट है कि वेदों में हमारे पूर्वजों की कितनी श्रद्धा थी। सामवेद के मन्त्रों के सस्वर पाठ को सुन कर हम अपन दैहिक अस्तित्व को भूल जाते हैं।' इत्यादि

हम वेदों के प्रति इस आस्था को रखने और सार्वजनिक रूप में उसे प्रकट करने के लिये

केन्द्रीय मन्त्री श्री गोपालरेड्डी जी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। वस्तुतः वेदों के महत्त्व के विषय में उन्होंने इस भाषण में जो बातें कहीं वे सर्वथा यथार्थ हैं। उन जैसे एक सुशिक्षित, केन्द्रीय शासन के मन्त्रित्व के उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर आसीन महानुभाव का वेदों के प्रति ऐसी आस्था को स्पष्टतया अभिव्यक्त करना अत्यन्त हर्ष का विषय है।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय में धर्म शिक्षा पर बल

गुरुकुल विश्वविद्यालय काङ्गड़ी के मान्य उप कुलपति श्री पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति द्वारा पिछले दिनों हमें अमरीका की सुप्रसिद्ध हार्वर्ड युनिवर्सिटी की नियमावली प्राप्त हुई है जिस में से निम्न बातों की ओर हम पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करना चाहते हैं —

१. इस के द्वितीय नियम में लिखा है कि प्रत्येक विद्यार्थी को स्पष्ट तौर पर यह समझा देना चाहिये कि उस के जीवन और अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ईश्वर और ईसामसीह को (जो शाश्वत जीवन है) जानना है। इसलिये उसे ईसामसीह को अपने हृदय में प्रत्येक गम्भीर ज्ञान और अध्ययन के एक मात्र आधार के रूप में धारण कर लेना चाहिये और इस बात को देखते हुए कि केवल परमेश्वर ही सच्चा ज्ञान देता है, प्रत्येक विद्यार्थी को गम्भीरता से एकान्त में प्रार्थना द्वारा उसे प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये।

२. किसी भी बहाने से किसी छात्र को ऐसे व्यक्तियों की सङ्गति नहीं करनी चाहिये जो अपवित्र जीवन व्यतीत करते हैं तथा अपने शिक्षक वा अपने माता पिता की अनुमति के बिना, नगर से बाहर नहीं जाना चाहिये।

३. धर्म शिक्षा और प्रार्थना के समय प्रत्येक विद्यार्थी को नियम पूर्वक निश्चित समय पर अवश्य ही उपस्थित रहना चाहिये। यदि कोई छात्र प्रार्थना और धर्म विषयक व्याख्यानों में सप्ताह में एक बार अनुपस्थित होगा तो उसे चेतावनी दी जाएगी और यदि दो बार चेतवानी देने पर भी उस ने इस नियम का उल्लंघन किया तो उस का नाम कालेज के अध्यक्षों के पास भेज दिया जाएगा ताकि वे सार्वजनिक मासिक सभाओं में उस की भर्त्सना करें और उचित दण्ड दें। इत्यादि

इन नियमों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि हार्वर्ड विश्वविद्यालय जैसे एक सुप्रसिद्ध अमेरिका के विश्वविद्यालय में धर्म शिक्षा और प्रार्थना को कितना अधिक महत्त्व दिया जाता है और किस प्रकार ईश्वर और ईसामसीह के प्रति आस्था को छात्रों में भरने का प्रयत्न किया जाता है। सेक्युलर स्टेट् के नाम पर हमारे देश में धर्म शिक्षा की नितान्त अवहेलना अत्यन्त शोचनीय है जिस का परिणाम अनैतिकता और भ्रष्ट जीवन का प्रसार हो रहा है।

२२-११-१९५९ —धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

स्वाध्याय के लिये चुनी हुई पुस्तकें

वरुण की नौका (दो भाग)

श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति

विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में वरुण सूक्तों में आये वेद मन्त्रों की विद्वत्तापूर्ण सरल व्याख्या की है। इस पुस्तक में कर्मफल, पुण्य, पाप, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की मीमांसा है। लेखक ने अत्यन्त सरल भाषा में सच्चे सुख का उपाय इसमें बताया है। प्रभु की कृपा किस पर होती है और कैसे कर्म करके हम प्रभु के प्यारे हो सकते हैं आदि बातों की जानकारी के लिये यह पुस्तक अवश्य पढ़ें। —मूल्य प्रति भाग ३ ००।

अग्नि होत्र

श्री देवराज विद्यावाचस्पति

इस पुस्तक में अग्नि होत्र के मन्त्रों की व्याख्या ही नहीं है अपितु अग्नि होत्र के सम्बन्ध में विवेचनात्मक और व्याख्यात्मक निबन्ध भी हैं। पुस्तक में अग्नि होत्र के सम्बन्ध में बहुत रोचक ढंग से प्रकाश डाला गया है। पुस्तक बहुत उपयोगी है। एक बार अवश्य पढ़ें।

—मूल्य २.२५।

आत्म समर्पण

श्री भगवद्दत्त वेदालंकार

इस पुस्तक में कुछ देवताओं का संक्षेप में स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। यह इसलिये कि सब देवता आत्म समर्पण करने वाले को अपना सर्वस्व तक दे देते हैं। पुस्तक की शैली अत्यन्त रोचक है। —मूल्य १.५०।

वैदिक सूक्तियां

श्री रामनाथ वेदालंकार

वेद ज्ञान के अगाध सागर में से चुन चुन कर आबदार मोतियों का संग्रह किया गया है। सूक्तियां प्रेरणा देने वाली हैं और अपने अन्दर सद्गुणों के आधीन उनकी तीव्रता से याचना तथा अभिलाषा की गई है। इन सूक्तियों का स्वाध्याय तथा मनन करने से मानव जीवन में सच्चरित्रता, साधुता सुख तथा शान्ति का संचार हो सकता है। —मूल्य १.२५।

ब्राह्मण की गौ

श्री अभय वेदालंकार

सच्चे ब्राह्मण की वाणी में क्या जादू भरी शक्ति होती है, वह इस में पाठक देखेंगे। महात्मा गान्धी ने 'ब्राह्मण की गौ' को प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ कर इस की बड़ी प्रशंसा की है वेद के पवित्र उपदेशों की यह स्वाध्याय पुस्तक प्रत्येक सज्जन को अवश्य पढ़नी चाहिये।

—मूल्य .७५ सजिल्द।

वेद गीतांजली

श्री वेदव्रत वेदालंकार

इस में ढाई सौ के लगभग वेद मन्त्र, उन का अर्थ और उन पर एक-एक सुन्दर हिन्दी कविता है। कविता मधुर स्वर में प्रार्थना के समय गाने योग्य है। —मूल्य २.००।

पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाइये। धार्मिक संस्थाओं के लिये विशेष रियायत का भी नियम है।

पुस्तक भण्डार, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (ज़ि० सहारनपुर)।

मुद्रक : रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक : धर्मपाल विद्यालंकार, स०मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल पत्रिका
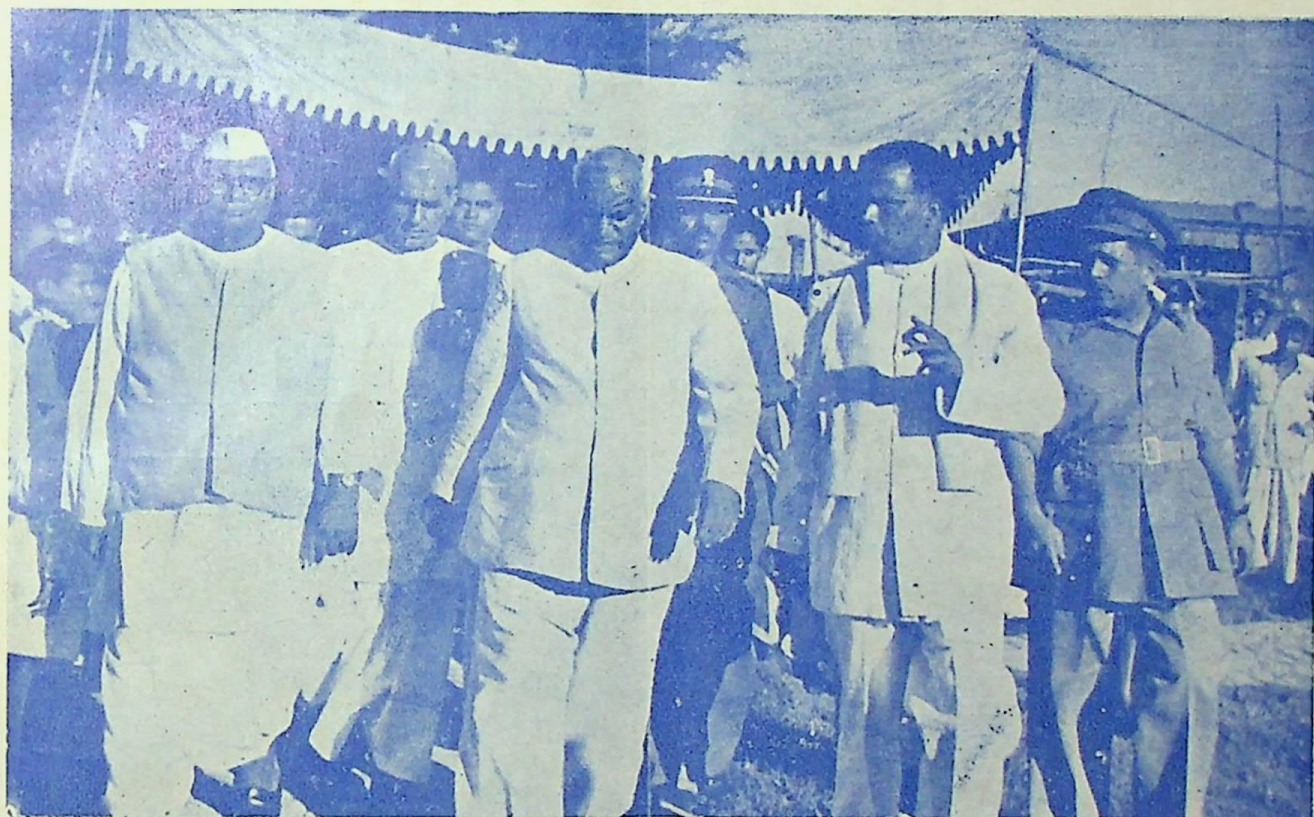
उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री व्यंकट वाराहगिरि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में गुरुकुल के अधिकारियों के साथ

सम्पादक — श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष १२ भाद्रपद २०१६ अङ्क १

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क १३३

अगस्त १९५९

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय, हरिद्वार

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

राष्ट्र की शिक्षा भँवर में — श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक	मूल्य एक प्रति	वर्ष १२	भाद्रपद
विदेश में ६) वार्षिक	३७ नये पैसे (छः आने)	अंक १	२०१६

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

वेदामृत गीत

१ ओं यस्य भूमिः प्रमा, अन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्व० १०. ७. ३२।

(भूमिः) यह पृथिवी (यस्य) जिसके (प्रमा) चरण हैं (उत) और (अन्तरिक्षम्) यह मध्य लोक (उदरम्) पेट है (यः) जो (दिवम्) आकाश को (मूर्धानंचक्रे) मस्तक बनाये हुए है (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस सर्वतोमहान् परमेश्वर को नमस्कार है।

सत्यज्ञान की परिचायक यह
पृथ्वी जिस के चरण महान्।
जो इस विस्तृत अन्तरिक्ष को,
रखता है निज उदर समान ॥

शीर्ष तुल्य है जिसके शोभित
यह नक्षत्र लोक द्युतिमान्।
उस महान् जगदीश्वर को है,
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम ॥

२ ओं यस्यसूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्भवः।
अग्निं यश्चक्रे आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

(सूर्यः) यह सूर्य और (पुनर्भवः चन्द्रमाः) फिर फिर नया होने वाला यह चांद (यस्य चक्षुः) जिसकी आँखें हैं। (यः) जिसने (अग्निम्) अग्नि को (आस्यंचक्रे) मुख रूप बनाया है (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस सर्वतोमहान् ब्रह्म को नमस्कार है।

ये चमकीले चन्द्र सूर्य हैं
जिसके नित्य नवीन नयन।
सृष्टिकाल में जबकि सदा ही
करता वह इनका प्रणयन।

हव्यवाहिनी अग्नि बनी है
जिस विराट् का मुख छबिमान्।
उस महान् जगदीश्वर को है
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम ॥

—श्री सत्यकाम विद्यालङ्कार

शान्ति की शक्ति

सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द जी

विश्व में दो महाशक्तियां हैं, नीरवता और वाक्। नीरवता सर्व तैयारी करती है, वाक् उत्पन्न करती है। नीरवता कार्य करती है, वाक् (वाणी) कार्य के लिये प्रेरणा प्रदान करती है। नीरवता बाधित करती है, वाणी अनुरोध करती है। संसार की सबकी सब अपरिमेय और अचिन्त्य प्रक्रियाएं अपने आपको अन्दर ही अन्दर पूर्ण बनाती हैं, उस गम्भीर और महामहिम नीरवता के अन्दर जो कि शब्द के कोलाहलपूर्ण और भ्रांतिजनक उपरितल से आवृत होती है—ऊपर होती है अनगिनत तरंगों की हलचल, नीचे समुद्र की अथाह अदम्य जलराशि, मनुष्य तरंगों को देखते हैं, वे किवदंती और सहस्रों आवाजों को सुनते हैं और इनके द्वारा वे भविष्य की दिशा का और ईश्वरीय संकल्प के मर्म का निर्णय कर लेते हैं, परन्तु दस में से नौ अवस्थाओं में वे निर्णय गलत होते हैं। इस लिये ही यह कहा जा सकता है कि इतिहास में सदा अप्रत्याशित ही घटित होता है। परन्तु अप्रत्याशित घटित नहीं होगा अगर मनुष्य अपनी आंखें उपरितल से हटा सकें और अन्दर पैठ कर सारतत्व को देख सकें, अगर वे प्रतीतियों को एक तरफ रखने और उनका भेदन कर उनसे परे निगूढ़ और प्रच्छन्न सद्वस्तु तक पहुंचने का अपने आपको अभ्यासी बना लें, अगर वे जीवन के शोर को सुनना बन्द कर दें और उसकी जगह उसकी नीरवता को सुनें।

पुनश्चः—बड़े से बड़े श्रम प्राण को अन्दर

रो...
अ...
अप...
लेन...
सब...
सम्...
कर...
साम...
जात...
कुम्भ...
घोर...
प्रका...
साधि...
पुनः...
को ...
श्वास...
होता...
है। य...
करने...
हमारे...
शान्त...
हैं। प...

जड़ता की असहाय शान्ति, जो विनाश की उद्घोषणा करती है, और दूसरी सुनिश्चित ईशत्व की शान्ति जो जीवन की संगीतमयता अधिष्ठित करती है। यह ईशत्वयुक्त शान्ति ही योगी की स्थिरता है। स्थिरता जितनी ही अधिक पूर्ण होगी, यौगिक शक्ति उतनी ही

8-00 से 8-30 तक भजन—प० ज्योति स्वरूप जी माणकपुर,
8-30 से 9-15 तक प्रवचन—श्री पृथ्वीराज जी शास्त्री
9-15 से 10-00 तक प्रवचन—पं सत्यकाम जी वेदालंकार

रविवार, 30 सितम्बर 1984

पूर्णाहुति : प्रातः 9-00 बजे—यजुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति
9-00 से 9-30 तक प्रातराश

श्रद्धांजलि सम्मेलन : 9-30 बजे से 11-00 बजे तक
अध्यक्ष : श्री वीरेन्द्र जी M.A.
कुलाधिपति-गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।

तना ही

होता

त्यम्

पत्य

र

।

न्।

परिचा-

यह वैज्ञा-

रकुशल

तथ्यों

तथा

त्र के

से यह

पाता है। बहुधा

घटित हो जाती है, कि तथ्य भी भटका देते हैं। वह बुद्धि से ऊपर उस साक्षात् और प्रकाशपूर्ण ज्ञान तक उठ जाता है जिसे हम विज्ञान कहते हैं। कामना परिचालित मन अच्छे और बुरे की, रुचिकर और अरुचिकर की, सुख और दुःख की विषम उलझन में फंसा रहता है। वह सदा ही अच्छे को, सदा ही रुचिकर को, सदा ही सुख को पाने की कोशिश करता है, सौभाग्य पूर्ण घटनाओं से वह फूल जाता है, उनसे विपरीत घटनाओं के द्वारा वह विक्षुब्ध और निस्तेज हो जाता है। परन्तु द्रष्टा (योगी) की प्रकाश युक्त चक्षु यह देखती है कि सब कुछ भले की ओर ले जाने वाला है, क्योंकि ईश्वर सर्वमङ्गलमय है। वह जानता है कि प्रतीयमान बुराई बहुधा अच्छाई तक पहुंचने का लघुतम मार्ग होती है, अरुचिकर वस्तु रुचिकर को तैयार करने के लिए अनिवार्य होती है, दुर्भाग्य पूर्णतर सुख को प्राप्त करने की शर्तरूप होता है। उसकी बुद्धि द्वन्द्वों की दासता से मुक्त हो जाती है।

अतएव योगी का कार्य वैसा नहीं होगा जैसा कि साधारण मनुष्य का। वह प्रायः ऐसा दिखाई देगा मानो बुराई के लिये अनुमति देता हो, विपत्ति को हटाने के अवसर को टालता हो। उन भद्रहृदय पुरुषों के प्रयत्नों में अपनी सहमति देने से इन्कार करता हो जो हिंसा और दुष्टता का प्रतिरोध करते हैं; यह 'पिशाच' की तरह (पिशाचवत्) काम करता प्रतीत होगा। अथवा मनुष्य उसे जड़, गति शून्य, पत्थर, स्तम्भ समझेंगे क्योंकि जहां क्रियाशीलता की मांग दिखाई देती है वहां वह निष्क्रिय रहता है; जहां लोग जोर जोर से बोलने की आशा करते हैं वहां वह शान्त, जहां

शान्ति की शक्ति

सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द जी

विश्व में दो महाशक्तियां हैं, नीरवता और वाक्। नीरवता सर्व तैयारी करती है, वाक् उत्पन्न करती है। नीरवता कार्य करती है, वाक् (वाणी) कार्य के लिये प्रेरणा प्रदान करती है। नीरवता बाधित करती है, वाणी अनुरोध करती है। संसार की सबकी सब अपरिमेय और अचिन्त्य प्रक्रियाएं अपने आपको अन्दर ही अन्दर पूर्ण बनाती हैं, उस गम्भीर और महामहिम नीरवता के अन्दर जो कि शब्द के कोलाहलपूर्ण और भ्रांतिजनक उपरितल से आवृत होती है—ऊपर होती है अनगिनत तरंगों की हलचल, नीचे समुद्र की अथाह अदम्य जलराशि, मनुष्य तरंगों को देखते हैं, वे किंवदंती और सहस्रों आवाजों को सुनते हैं और इनके द्वारा वे भविष्य की दिशा का और ईश्वरीय संकल्प के मर्म का निर्णय कर लेते हैं,परन्तु दस में से नौ अवस्थाओं में वे निर्णय गलत होते हैं। इस लिये ही यह कहा जा सकता है कि इतिहास में सदा अप्रत्याशित ही घटित होता है। परन्तु अप्रत्याशित घटित नहीं होगा अगर मनुष्य अपनी आंखें उपरितल से हटा सकें और अन्दर पैठ कर सारतत्व को देख सकें, अगर वे प्रतीतियों को एक तरफ रखने और उनका भेदन कर उनसे परे निगूढ़ और प्रच्छन्न सद्वस्तु तक पहुंचने का अपने आपको अभ्यासी बना लें, अगर वे जीवन के शोर को सुनना बन्द कर दें और उसकी जगह उसकी नीरवता को सुनें।

पुनश्चः—बड़े से बड़े श्रम प्राण को अन्दर रोके रखकर किये जाते हैं, श्वास लेना जितना अधिक तेज़ होगा, उतना ही अधिक शक्ति का अपव्यय होगा। जो पुरुष कार्य के समय श्वास लेना स्वाभाविकतया, सहजतया बन्द कर सकता है, वह प्राण का— उस शक्ति का, जो सम्पूर्ण विश्व में काम करती है और सर्जन करती है–स्वामी है। सभी योगियों का यह सामान्य अनुभव है कि जब विचार बन्द हो जाता है, श्वसन भी बन्द हो जाता है—पूर्ण कुम्भक जिसे हठयोगी अपरिमित कष्ट और घोर प्रयास के साथ सिद्ध कर पाता है, इस प्रकार अपने आप सुगमतया व आनन्द पूर्वक साधित हो जाता है, परन्तु जब विचार पुनः प्रारम्भ होता है तो श्वास भी अपनी क्रिया को फिर शुरू कर देता है। परन्तु जब विचार श्वास प्रश्वास के बिना प्रवृत्त हुए प्रवाहित होता है तब प्राण सच्चे तौर पर जीता जाता है। यह प्रकृति का नियम है। जब हम काम करने का प्रयत्न करते हैं तो प्रकृति की शक्तियां हमारे साथ अपनी मनमानी करती हैं, जब हम शान्त हो जाते हैं तो हम उनके ईश बन जाते हैं। परन्तु शान्ति दो प्रकार की होती है—जड़ता की असहाय शान्ति, जो विनाश की उद्घोषणा करती है, और दूसरी सुनिश्चित ईशत्व की शान्ति जो जीवन की संगीतमयता अधिष्ठित करती है। यह ईशत्वयुक्त शान्ति ही योगी की स्थिरता है। स्थिरता जितनी ही अधिक पूर्ण होगी, यौगिक शक्ति उतनी ही

अधिक प्रबल होगी, कर्मगत तेज उतना ही अधिक महान् होगा ।

इस स्थिरता में, यथार्थ ज्ञान उदित होता है । मनुष्यों के विचार सच और झूठ, सत्यम् और अनृतम् के सम्मिश्रण होते हैं । असत्य बोध सत्य बोध को विकृत और आच्छादित कर देता है, झूठा निर्णय सच्चे निर्णय को पंगु बना देता है, झूठी कल्पना सच्ची कल्पना को विरूप कर देती है, झूठी स्मृति सच्ची स्मृति को धोके में डाल देती है । मन की क्रिया को बन्द होना होगा, चित्त को पवित्र करना होगा, प्रकृति की चंचलता पर निश्चल नीरवता को छा जाना होगा, तब उस स्थिरता में उस निःशब्द शान्तता में प्रकाश मन पर आ उतरता है, गलती दूर होने लगती है और जब तक कामना फिर हलचल नहीं करती तब तक, निर्मलता चेतना के निम्नतर स्तर में शान्ति और सुख को अनिवार्य बनाती हुई, उच्चतर स्तर में अपने आपको प्रतिष्ठित रखती है यथार्थ ज्ञान कर्म का अचूक स्रोत बन जाता है । योगः कर्मसु कौशलम् ।

योगी का ज्ञान साधारण कामना परिचालित मन का ज्ञान नहीं होता। न ही यह वैज्ञानिक तर्कबुद्धि का या लौकिक व्यवहारकुशल बुद्धि का ज्ञान होता है जो बुद्धि ऊपरी तथ्यों पर अपना आधार रखती है और अनुभव तथा संभवनीयता का सहारा लेती है । योगी ईश्वर के काम करने के ढंग को जानता है और उसे यह पता होता है कि असम्भवनीय सी बात भी बहुधा घटित हो जाती है, कि तथ्य भी भटका देते हैं। वह बुद्धि से ऊपर उस साक्षात् और प्रकाशपूर्ण ज्ञान तक उठ जाता है जिसे हम विज्ञान कहते हैं । कामना परिचालित मन अच्छे और बुरे की, रुचिकर और अरुचिकर की, सुख और दुःख की विषम उलझन में फंसा रहता है । वह सदा ही अच्छे को, सदा ही रुचिकर को, सदा ही सुख को पाने की कोशिश करता है, सौभाग्य पूर्ण घटनाओं से वह फूल जाता है, उनसे विपरीत घटनाओं के द्वारा वह विक्षुब्ध और निस्तेज हो जाता है । परन्तु द्रष्टा (योगी) की प्रकाश युक्त चक्षु यह देखती है कि सब कुछ भले की ओर ले जाने वाला है, क्योंकि ईश्वर सर्वमङ्गलमय है । वह जानता है कि प्रतीयमान बुराई बहुधा अच्छाई तक पहुंचने का लघुतम मार्ग होती है,अरुचिकर वस्तु रुचिकर को तैयार करने के लिए अनिवार्य होती है, दुर्भाग्य पूर्णतर सुखको प्राप्त करने की शर्तरूप होता है । उसकी बुद्धि द्वन्द्वों की दासता से मुक्त हो जाती है ।

अतएव योगी का कार्य वैसा नहीं होगा जैसा कि साधारण मनुष्य का । वह प्रायः ऐसा दिखाई देगा मानो बुराई के लिये अनुमति देता हो, विपत्ति को हटाने के अवसर को टालता हो । उन भद्रहृदय पुरुषों के प्रयत्नों में अपनी सहमति देने से इन्कार करता हो जो हिंसा और दुष्टता का प्रतिरोध करते हैं; यह 'पिशाच' की तरह (पिशाचवत्) काम करता प्रतीत होगा । अथवा मनुष्य उसे जड़, गति शून्य, पत्थर, स्तम्भ समझेंगे क्योंकि जहां क्रियाशीलता की मांग दिखाई देती है वहां वह निष्क्रिय रहता है; जहां लोग जोर जोर से बोलने की आशा करते हैं वहां वह शान्त, जहां

गहरे और अत्युत्कट भाव का कारण होता है वह अचलायमान रहता है। जब वह काम करेगा, मनुष्य उसे उन्मत्त, पागल, केन्द्रच्युत या मूढ़ कहेंगे; क्योंकि उसके काम बहुधा ऐसे लगेंगे कि उनका कोई निश्चित फल या प्रयोजन नहीं है, और वे उच्छृङ्खल, अनियमित, सामान्य बुद्धि और संभाव्यता की परवाह न करने वाले या एक ऐसे उद्देश्य और दृष्टि से प्रेरित हैं जो इस संसार के लिये नहीं हैं। और यह सच है कि वह एक ऐसे प्रकाश का अनुसरण करता है जो दूसरे लोगों को प्राप्त नहीं होता या जिसे वे अन्धकार कह कर पुकारना भी पसन्द करेंगे कि जो कुछ उनके लिये स्वप्न है, उसके लिये वह वास्तविकता है; कि उनकी रात उसका दिन है। और यही इस भेद का भी मूल है कि जब वे तर्क ही करते होते हैं तब वह जानता है। निश्चल नीरवता, शान्तता, प्रकाशित निष्क्रियता के लिये समर्थ होना अमरता के योग्य होना है—अमृतत्वाय कल्पते। यह धीर होना है, जो कि हमारी प्राचीन सभ्यता का आदर्श है, जिसका कि अर्थ तामसिक, गतिशून्य और पत्थर होना नहीं है। तामसिक मनुष्य की अक्रियता उसके चारों ओर की शक्तियों के लिये प्रतिबन्धक रूप होती है, योगी की अक्रियता भी अद्भुत कार्य करती है।

उसकी सक्रियता महान् प्राकृतिक शक्तियों की साक्षात्, अतीव महान् संचालन शक्ति से क्रियाशील होती है। यह आभ्यंतरीण शान्ति होती है जो कि बहुधा बाहर से वाक्व्यवहार और सक्रियता की तरङ्ग से आच्छादित रहती है—जैसे बाहिरी चपल तरंगों से आच्छादित समुद्र। परन्तु जैसे कि लोग संसार के निरर्थक कोलाहल और इसकी अस्थिर घटनाओं में से ईश्वर की कार्यशैलियों की वास्तविकता को नहीं देख पाते, क्योंकि वे (कार्य-शैलियां) उस पर्दे के पीछे छिपी हुई होती हैं, उसी प्रकार वे योगी के कार्य को समझने में भी असफल ही रहेंगे, क्योंकि वह भीतर में उससे भिन्न होता है जैसा कि वह बाहर से दिखाई देता है। कोलाहल और सक्रियता की शक्ति, निस्सन्देह महान् है—क्या जैरिको की दीवारें कोलाहल की शक्ति से नहीं गिर गई थीं? परन्तु अनन्त है उस शान्ति और उस नीरवता की शक्ति, जिनमें कि महान् शक्तियां कार्य के लिये तैयारी करती हैं।

निरन्तर निर्माण

देश में एक वे लोग हैं जो सदा अतीत को देखते हैं और दूसरे वे लोग भी हैं जो सदा भविष्य की सोचते हैं। हम अतीत और भविष्य की सोचें कोई बुरी बात नहीं है यह, पर अपने सजीव वर्तमान को निरन्तर निर्माण में लगाए रखें।

—श्री जवाहरलाल नेहरू

आचार्यो विनायकः (श्री विनोबाभावे)

(जन्म ११ सितम्बर १८९४ ई०)

१

भूदानाख्यमहाध्वरस्य भुवने, योऽस्तीह नेता महान्
देवोपास्तिपरः श्रुतिं सुसुखदां, यो मन्यते मातरम् ।
दीनोद्धाररतस्तपस्विषुवरो ऽहिंसाव्रती सात्विको
मान्याचार्यविनायको विजयते ऽसौ कर्मयोगी महान् ।।

२

निर्भीकश्चरतीह यो हि सकले, देशे महाकोविदः
स्वीयं नैवसुखं कदापि गणयन्, नक्तं न पश्यन् दिनम् ।
पद्भ्यामेव सदाचरन् प्रमुदितः, सेवाव्रतं पालयन्,
मान्याचार्यमहोदयो विजयते ऽसौ कर्मयोगी महान् ।।

३

येनाचारि सदैव शुद्धमनसा, सद् ब्रह्मचर्यव्रतं
यः शास्त्राध्ययनं चकार मतिमान्,भाषा अनेकाः पठन् ।
शुद्धंजीवितमेव यस्य निखिलं, सद्यज्ञरूपं महद्,
मान्याचार्यविनायको विजयते ऽसौ कर्मयोगी महान् ।।

४

यो गान्धीव्रतभृत्सदैव सुमनाः, सम्पूरयंस्तत्कृतं
कार्यं भर्त्सयतीह लक्ष्यविमुखानप्युत्तमान् शासकान् ।
पाश्चात्यैर्विबुधैर्मतः प्रतिनिधिर्देशस्य सत्संस्कृतेः,
मान्याचार्यविनायको विजयते ऽसौ कर्मयोगी महान् ।।

—पं० धर्मदेवविद्यामार्तण्डकृताद्व 'महापुरुषकीर्तनात्'
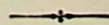
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्री० गोपालदास जी, एम० ए०, एल० टी०

भारत भूमि में ऐसे असंख्य नरनारियों ने जन्म लिया है, जिनकी बहुज्ञता, चतुर्मुखी प्रतिभा एवं असाधारण व्यक्तित्व के कारण ही भारत विश्व के अन्य असंख्य नर रत्नों के सम्मुख गौरव के साथ प्रथम पंक्ति में खड़ा हो सका है। इसका कारण यही है कि भारतीय आचार-विचार, सभ्यता एवं संस्कृति आदिकाल से ही इतनी महान् रही है कि भारतीय संस्कृति की समता कर सकने का साहस अन्य देश के लोग न कर सके, किन्तु फिर भी अपने देश के अनेक महापुरुषों का ऐसा सौभाग्य या दुर्भाग्य रहा है कि जब तक विदेशों से इन महापुरुषों को सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई, तब तक देशवासियों ने उन्हें पहचानने में विलम्ब किया तथा पहिचानते ही ऐसे महापुरुषों को इस प्रकार अपनाया कि उनके श्रीचरणों के सदा के लिये दास हो गये तथा उनके प्रत्येक शब्द मंत्रवत् समझे जाने लगे। साथ ही साथ ऐसे लोगों का जीवन और आदर्श भारतीय आदर्श बन गया। ठीक यही बात जब हम ध्यानपूर्वक सोचते हैं, तब विश्वकवि कवीन्द्र रवीन्द्र के सम्बन्ध में भी सत्य कही जा सकती है। जब तक गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबल पुरस्कार नहीं मिल पाया जब तक भारतीय उन्हें ठीक से नहीं जान पाये थे।

प्रतिभा का विकास धीरे-धीरे होता है और प्रतिभावान् व्यक्ति बहुत दिनों तक छिपे नहीं रह सकते; वे एक दिन विश्व के सामने ज्वलंत उदाहरण बनकर अपने आप आ जाते हैं। इसी प्रकार कवीन्द्र रवीन्द्र भी भारतीयों के सम्मुख आये।

बंगाल भारत का मस्तिष्क इस लिये कहा जाता है, क्योंकि विश्व के ख्याति प्राप्त अधिकांश भारतीयों की जन्मभूमि बंगाल ही रही। इसी पवित्र भूमि में ठाकुर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म २ मई, सन् १८६१ ई० को हुआ था। आप वंश की ज्योति बन कर विश्व में चमके। आप के पिता श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर बड़े विद्वान् और बंगाल के एक बहुत बड़े जमींदार थे। देवेन्द्रनाथ जी के सभी पुत्र होनहार थे। उनके परिवार में कोई कलाकार था तो कोई श्रेष्ठ वक्ता। कोई लेखक था तो कोई पंडित। गुरुदेव स्वतन्त्र विचारों के जीव थे। रवीन्द्रनाथ की माता जी का नाम श्रीमती शारदादेवी था। अभाग्यवश बाल्यकाल में ही उनकी माता जी का स्वर्गवास हो गया था। वह प्रारम्भ में नौकरों की देख-रेख में रखे गये। आपको प्रारम्भिक पाठशाला में अध्ययन करने के लिये प्रविष्ट कराया गया, परन्तु आपका मन न लगा, क्योंकि बाल्यकाल से ही उनमें मौलिकता थी तथा दूषित शिक्षा-प्रणाली उन्हें पसन्द न थी। रवीन्द्रनाथ अपने पिता के सब से प्यारे बेटे थे; अतः उनका काफी मान था। आपके पिता ने इङ्गलैंड के ब्राटन स्कूल में आप को पढ़ाया तथा अध्ययन के लिये लंदन के यूनिवर्सिटी कालेज में प्रविष्ट कराया। रवीन्द्र की

प्रतिभा से इस यूनिवर्सिटी के प्राध्यापक आकर्षित हुए। यहां तक कि उनके एक लेख की प्रशंसा उनके प्रोफेसरों ने की और यह कहा कि रवीन्द्र एक दिन विश्व का सब से बड़ा लेखक होगा। निःसन्देह अन्तःकरण से निकला हुआ प्रोफेसरों का आशीर्वाद सत्य होकर रहा और रवीन्द्रनाथ जीवन के मध्य में ही विश्व के महान्तम लेखकों में गिने तथा माने जाने लगे। बालक रवीन्द्र का यज्ञोपवीत-संस्कार बारह वर्ष की आयु में करा दिया गया था और उसी वर्ष आपने 'पृथ्वीराज-पराजय' नामक प्रथमनाटक की रचना भी की। आप धीरे-धीरे कहानी और कविता भी लिखने लगे और थोड़े ही दिनों के बाद आप ने शेक्सपियर के मैकबेथ नाटक का अंग्रेजी से बंगला में अनुवाद किया। आपकी प्रारम्भिक रचनायें भी उच्चकोटि की होती थीं। आप अपने पिता के साथ प्राकृतिक दृश्यों को देखने में विशेष आनन्द का अनुभव किया करते थे और प्राकृतिक दृश्यों को देखते-देखते आपके हृदय में कविता के भाव सहज ही जागृत होने लगते थे। प्रकृति से कविता करने की आपको प्रेरणा मिली।

कवीन्द्र रवीन्द्र का शुभ विवाह मृणालिनी नामक एक सुन्दर और सुशील कन्या के साथ सम्पन्न हुआ था। वैवाहिक जीवन के कुछ क्षण आनन्द से बीतने भी न पाये थे कि विपत्तियों के पहाड़ टूटने लगे। उनकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया, उनकी लड़की उनसे सदा के लिए बिदा होगई और पिता ने भी बालक रवीन्द्र को सदैव के लिये अकेला छोड़ दिया। दैवयोग से आपको अपने प्रथम पुत्र के वियोग का असह्य दुःख भी सहन करना पड़ा। आप पिता जी के कहने के अनुसार विवाहोपरान्त कलकत्ता छोड़ कर अपनी जमीन्दारी के गांव स्यालदा चले गये। इससे उन्हें प्रकृति की अनुपम छटा को निकट से देखने का सुअवसर प्राप्त हो सका। प्रकृति के नाना प्रकार के दृश्य उनके हृदय के आकर्षण के मानों केन्द्रबिन्दु ही बन गये। कवीन्द्र रवीन्द्र ने प्रकृति के साथ चिरतादात्म्य स्थापित कर लिया।

परमप्रिय पत्नी, पिता, पुत्री तथा पुत्र के वियोग की अश्रुधारा आंखों में बहती ही न रही तथा मार्मिक एवं हृदयविदारक कथा हृदय में सीमित न रह पाई, किन्तु उसकी भावनाओं की माला के अनेक पुष्प स्मरण, मानसी, बलिदान, चित्रांगदा, सोनारतीर, चित्रा और उर्वशी के रूप में प्रकट हुए। प्रसिद्धि एक तरह से उनकी लेखनी की दासी ही थी। थोड़े ही दिनों में आपकी रचनाओं को पढ़ कर आपकी तुलना अंग्रेजी के महाकवि शेली से की जाने लगी। आपने अनेक नाटक तथा निबन्ध भी लिखे; साथ ही साथ उच्चकोटि की कविताओं और कहानियों की भी आपने रचना की। आप की रचना गोरा सोलह वर्ष की अल्पायु में ही लिखी गई थी। आपकी अमर कृति गीताञ्जलि तो आपकी विश्वविख्यात अनमोल निधि है।

शान्तिनिकेतन गुरुदेव के आदर्श का जीता जागता प्रतीक एवं आपकी स्मृति का सच्चा चिह्न है। १९०१ ई० में इस पवित्र विद्यालय का शिलान्यास हुआ। इस पवित्र विद्यालय क

प्रमुख उद्देश्य पश्चिमी शिक्षा-प्रणाली को कुछ उपयोगी अंश में ग्रहण करते हुए भी प्राचीन आदर्शों को प्राप्त करना था। इस विद्यालय में स्वदेश के ही नहीं, वरन् सहस्रों विदेशी विद्यार्थी भी शिक्षा प्राप्त करके जगत् में महत्ता प्राप्त कर सके। विद्वानों में दीनबन्धु, एण्डरुज तथा पीयर्सन का नाम इस विषय में स्मरणीय एवं उल्लेखनीय है।

गुरुदेव की साधना एवं तपस्या साधारण से लेकर अति साधारण तक के लिये सुलभ है। आप के अमर गीत एक ओर जहां बड़े बड़े विद्वान् पंडितों द्वारा आदर के साथ गाये जाते हैं, वहां दूसरी ओर नौका खेने वाले मल्लाह, माली, मजदूरों, किसानों द्वारा भी आनन्द के साथ सस्वर राग में गाये जाते हैं। यही तो आपके गीतों की विशेषता है कि एक विद्वान् से लेकर एक अपढ़ के लिये भी आप के गीत जन-जन की जिह्वा में वर्तमान रहने लगे। इसका कारण है कि आपने प्रकृति के एक-एक कण का तथा प्रत्येक मानव के हृदय का अध्ययन गहराई के साथ किया था। प्रकृति के निरीक्षण के सम्बन्ध में बात भी यह सही है कि आपने संसार का भ्रमण किया। गांव-गांव और शहर शहर में गये तथा लोगों से निकट सम्पर्क स्थापित किया। गुरुदेव प्रकृति की मनोहारिणी छटा में खेलने तथा आनन्द प्राप्त करने वाले जगद्विख्यात प्रकृति प्रेमी मानव थे।

आपने रुग्णता की हालत में ही इङ्गलैण्ड के लिए प्रस्थान किया। इसी मध्य आप की बंगाली कविताओं का संग्रह 'गीताञ्जलि' का अनुवाद अंग्रेजी में प्रकाशित किया गया। इस का अनुवाद स्वतः गुरुदेव ने किया था। इस छोटे से काव्य संग्रह ने ही आपको समस्त संसार में विख्यात कर दिया तथा आपकी प्रतिष्ठा को संसार भर में बढ़ा दिया। आप इङ्गलैण्ड की यात्रा करने के पश्चात् अमेरिका भी गये तथा १९१३ ई० में स्वदेश वापस आये। उसी समय आपको विश्वसाहित्य की अमर कृति एवं सर्वश्रेष्ठ रचना 'गीतांजलि' पर नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस पुरस्कार के प्राप्त होते ही आपकी ख्याति चारों दिशाओं में विद्युत् की तरह फैल गई। आपको इसी समय नाइट की उपाधि से विभूषित किया गया। नोबल पुरस्कार की राशि आप ने विश्वभारती शान्तिनिकेतन को अर्पित कर दी।

गुरुदेव विश्वविख्यात कवीन्द्र तो थे ही; साथ ही राजनीतिक जागृति का जयनिनाद हुआ, तब रवीन्द्र बाबू ने उसमें सक्रिय भाग लिया। जिस समय लार्ड कर्जन बंगाल के दो टुकड़े करना चाहते थे, तब रवीन्द्र इसके लिए लड़े तथा विश्वबंधुत्व के लिये भी जी-जान से प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। उनका तो यह कहना था कि 'मानवता के लिये जियो; मानवता के लिये मरो।' आप एक सच्चे देशभक्त थे। अपनी मातृभूमि भारत से उन्हें विशेष अनुराग रहा है। यही कारण है कि उनकी लेखनी से निकले हुए अमर गीत देश के असंख्य नवयुवकों में प्राण फूंक देने में समर्थ सिद्ध हुए। आप एक सफल राजनीतिज्ञ रहे, परन्तु दलबंदी की दलदल में आप कभी भी नहीं पड़े। गुरुदेव

राष्ट्र-निर्माण और समाज-सुधार के प्रयत्नों में भी विशेष आनन्द का अनुभव होता था, यहां तक कि जलियांवाला बाग के काण्ड से दुःखी होकर आपने 'सर' की उपाधि वापिस कर दी थी। राजनीति पर राष्ट्रपिता पूज्य बापू से आपका कुछ मतभेद रहा। फिर भी आप उन पर अटूट श्रद्धा रखते थे। आपकी यह धारणा थी कि जब तक दलितों और अछूतों को न अपनाया जायगा, तब तक सामाजिक विकास अपूर्ण ही रहेगा। आप अखिल मानवता के सच्चे पुजारी थे। आपने युद्ध में नष्ट होती हुई मानवता से दुःखित होकर एक स्थान पर कहा—'मनुष्य के प्रति विश्वास खो देना पाप है। अतः उस विश्वास की मैं अन्तिम क्षण तक रक्षा करूंगा।' उपर्युक्त शब्दों से हमें गुरुदेव की विश्वबन्धुत्व-भावना का परिचय सहज में ही मिल जाता है।

गुरुदेव भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की जीती-जागती मूर्ति थे। यदि उनको साहित्य-सम्राट् भी कहा जाये तो तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी, क्योंकि साहित्य का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जिसे आपने अपनी लेखनी से अनुप्राणित न किया हो। आप कालिदास के रूप में प्रकट हुए और उनके रूप में ही अन्तर्धान हो गये। आप सर्वतोमुखी प्रतिभा को लेकर इस भूमि पर अवतीर्ण हुए थे। आप भारतीय संस्कृति का अमर संदेश विश्व के सम्मुख उपस्थित करने आये थे। आपने अपना यह महत्तम कार्य जीवन में ही पूरा करके ७ अगस्त सन् १६४१ को इस संसार से शान्ति के साथ प्रयाण किया। रवीन्द्र बाबू को खोकर भारत ही नहीं, सचमुच एक प्रकार से विश्व निर्धन हो गया तथा विश्व का एक महत्तम दार्शनिक उठ गया, जिसकी पूर्ति कब किस रूप में होगी, ईश्वर जाने। श्रद्धा के साथ विश्व के असंख्य नागरिक मौन श्रद्धांजलि अर्पित करके शत शत प्रणाम करते हुए आपकी पावन स्मृति कर रहे हैं।

('गुरुदेव' कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर महर्षि दयानन्द जी को महान् पथप्रदर्शक गुरु के रूप में मानते थे—सम्पादक गु० प०)

आत्मिक उन्नति की आवश्यकता

ऊपर और नीचे, अन्दर और बाहर का ऐसा गहरा सम्बन्ध है कि जो व्यक्ति वा राष्ट्र ऊपर बढ़ना चाहते हैं, दुनियां में फूलना फलना चाहते हैं, उन्हें अपने भीतर अर्थात् आत्मा में जड़ें बढ़ानी चाहियें। अन्दर जड़ नहीं बढ़ेंगी तो वृक्ष ऊपर नहीं बढ़ेगा।

—स्वामी रामतीर्थ

प्यारी कला तुम्हारी

श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' लेखरामनगर (कादियां)

ओ३म् विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥

ऋग्वेद १ । २२ । १९

भगवान् वेद के इस मन्त्र के आधार पर गत दिनों काश्मीर यात्रा करते हुए निम्न गीत लिखा गया था ।

सारा जहान तेरा, प्यारे निशान प्यारा ।
माता पिता सखा तू, तू बन्धु भी हमारा ॥ ध्रुव

हैरान कर रही है, रचना तुम्हारी न्यारी,
प्यारी कला तुम्हारी, यह देव सृष्टि सारी ।
देती पता तुम्हारा, झरनों की देव धारा ॥

नालों का साफ़ पानी, ऊधम मचा रहा है,
शक्ति तुम्हीं से पा कर, पत्थर बहा रहा है ।
वायु में वेग तेरा, बल जल में है तुम्हारा ॥

आकाश का पड़ौसी, पर्वत शिखर सुहाना,
नदियों का नाद दैवी, कल कल यह जल तराना ।
गा गीत मीत तुझको, लहरों ने है पुकारा ॥

भू पर विभो बिछाया, यह घास का बिछौना,
वन को बनाया तूने, ईश्वर अजब खिलौना ।
हिम आ रही है गिरि से, यह देखने नजारा ॥

जड़ में यह चेतना का, फूंका है प्राण तूने,
इन कूदते जलों में, डाली है जान तूने ।
दिनकर की रश्मियों में, तेरा है तेज सारा ॥

सारा जहान तेरा, प्यारे निशान प्यारा ।
माता पिता सखा तू, तू बन्धु भी हमारा ॥

कहानी—

वह निर्दोष था

श्री आशुतोष जी

पप्पू और हिम्मत दोनों ऐसे घुलमिल गये जैसे दूध और पानी। पप्पू था घर का घुटनों चलता प्यारा बच्चा और हिम्मत था घर का नौकर। पप्पू यदि हिम्मत की गोद से उतरने का नाम न लेता था तो हिम्मत को भी उसके बिना चैन नहीं पड़ती थी। मनोहरलाल और शीला इसे देख कर बहुत सुखी थे। आजकल के दिनों में ऐसे नौकर मिलते कहां हैं जो बच्चे को सच्चे जी से प्यार करें ? शाम को जब पप्पू को लेकर हिम्मत दूर पार्क में चला जाता और बड़ी देर तक न लौटता तो शीला का मन भटक उठने पर भी चिन्तित न होता था। उस का विश्वास था कि हिम्मत की गोद में उसका पप्पू अधिक सुखी रहेगा। था भी ऐसा ही। हिम्मत की गोद में जाने के बाद पप्पू को न मां की याद आती और न बाप की।

पार्क से निकल कर कभी-कभी हिम्मत पप्पू को बाजार की जगमगाती दुकानों के निकट ले जाता और उनमें सजी हुई रंगबिरंगी चीजें दिखाता। पप्पू उन्हें देखता, किलकारियां मारता और खुशी से तालियां बजा उठता। इसके बाद जब काफी रात गये हिम्मत उसे लेकर घर लौटता तो भूख से तड़पते होने पर भी पप्पू उसकी गोद से न उतरता। मां के हाथ से दूध पीने पर भी उसकी आंखें और मन हिम्मत की ओर ही लगे रहते थे।

हिम्मत का भी बुरा हाल था। पप्पू के थोड़ी देर भी आंखों से ओझल होते ही वह व्याकुल हो उठता था। उसके हृदय में ज्ञात नहीं, उसके लिये किस प्रकार ममता का इतना विशाल स्रोत उमड़ पड़ा था कि वह अपनी सारी दुनियां को पप्पू और केवल पप्पू में ही लीन कर बैठा था। प्रातःकाल उठते ही पप्पू पप्पू करता उसकी चारपाई के निकट जा खड़ा होता और यदि पप्पू तब भी सोया हुआ होता तो उसे लगता मानों उसकी सारी दुनियां सोई पड़ी है। पप्पू जी भी जागते तो सबसे पहले हिम्मत को ही पुकारते। मां थपकियां देती, पुचकारती और चाहती कि वह और थोड़ी देर आराम से पड़ा रहे पर पप्पू जी 'इम्मत-इम्मत' की तब तक बराबर टेर लगाते रहते जब तक हिम्मत आकर उन्हें अपनी गोद में नहीं ले लेता था। और तब मनोहरलाल और शीला का घर साक्षात् स्वर्ग बन जाता था। ऐसे निर्मल स्नेह की निर्झरिणी स्वर्ग के अतिरिक्त और कहां देखने को मिल सकती है ?

मनोहरलाल नित्य प्रातः उठ कर दूध लेने जाया करते थे। वे शुद्ध दूध के बड़े शौकीन थे। उनके घर से थोड़ी दूर ही एक गुज्जर ने डेरी खोल रखी थी। खुले मैदान में चार-पांच भैंसें और तीन गायें बांध रखी थीं। एक ओर एक छोटी सी चौकी बिछा रखी थी जिस पर धवल झागों से भरी दूध की बाल्टियां रखी रहती थीं। इनके आसपास पीतल और अलूमोनियम के बर्तन आकर एकत्रित हो जाया करते थे। नित्य प्रातःकाल मुर्गे की पहली बांग

के साथ भैंसें डिडकार उठतीं और गायें रंभा उठतीं। दूध दुहाने के इस सुखद आह्वान को सुनकर डेरी के मालिक गूजर का मन आनन्द से प्रफुल्लित हो जाता था। उसे ये सभी भैंसें और गायें साक्षात् कामधेनु लगतीं थीं। पांच वर्ष पहले उसने जब यहां आकर अपनी पहली भैंस का खूंटा गाड़ा था तो उसके पास कुछ भी न था। एक चौधरी के यहां अपनी गूजरी के गहने गिरवी रखकर ही वह पहली भैंस लाया था। पर वह खूंटा ऐसा फला कि आज आठ खूंटे हो चुके थे और अब भी सवेरे इतने ग्राहकों की भीड़ लग जाती थी कि वह सब की मांग पूरी नहीं कर पाता था।

दूध के मामले में मनोहरलाल बड़े चौकन्ने रहा करते थे। भैंस के नीचे दूध दुहने के लिये गूजर जब से बैठता तब से लेकर जब तक उसके पौवे से नपवाकर दूध अपने बर्तन में नहीं डलवा लेते थे, उनकी तेज़ दृष्टि सावधानी के साथ गूजर के हाथों पर ही लगी रहती थी। उनका विश्वास था कि जहां जरा भी चूके कि ठगे गये। दूध लेने में कदम कदम पर ठगी की आशंका थी। जब गूजर दूध निकालता होता तो मनोहरलाल तथा अन्य खरीदारों की चर्चा का भी यही विषय रहता था। कोई कहता कि 'इन दूध वालों से भगवान् बचाये। किसी को नहीं चूकते।' इस पर दूसरा कहता 'पानी मिला देना इनके बायें हाथ का खेल है।'

गूजर इसे सुनकर कभी-कभी चिढ़ जाता और दुहने से पहले अपनी बाल्टी उल्टी करके कहता 'लो देख लो, इसमें कहीं एक बून्द भी पानी की नहीं है।'

लोग अच्छी तरह देख लेते पर फिर भी उन्हें सन्तोष नहीं होता था। थोड़ी देर बाद फिर वही पानी मिलाने का विषय उत्साह के साथ चल पड़ता था। कोई कहता जब बाल्टी देख ली तो फिर पानी मिलाने की गुंजाइश कहां रही? इस पर दूसरा खरीदार कहता, 'अजी साहब, बाल्टी दिखाने से क्या होता है। पानी मिलाने की हजार तरकीबें होती हैं।' इस पर मनोहरलाल उसका समर्थन करते हुए बोलते, 'मैं भी भुगता हुआ हूं भाई। मैं पहले जहां रहता था वहां भी एक डेरी थी। कहने को तो डेरी वाला हमें शुद्ध दूध देता था पर घर लाकर देखो तो पानी। मैं हैरान मेरी देवी जी हैरान, मेरे अड़ौसी-पड़ौसी हैरान कि दूध को हो क्या जाता है? आखिर हम सब नें खास तौर से सावधान रहने का निश्चय किया। और एक दिन पकड़ हीं लिया बच्चू को।'

'कैसे?' तीन चार व्यक्ति बड़ी उत्सुकता के साथ पूछ उठे।

'बड़ी गहरी चाल निकली साहब। दूध दुहने से पहले गूजर जीं झोंपड़ी में बाल्टी लेने जाया करते थे और कुरते के नींचे साइकल की पूरी ट्यूब पानी की भरकर छिपा लाते थे। हम सब का ध्यान बाल्टी पर लगा रहता था। ट्यूब की हमें सपने में भी कल्पना न थी। हजरत दूध निकालते जाते तो साथ ट्यूब भी उसी में खाली करते जाते।'

'था उस्ताद यार।' एक ने गूजर की प्रशंसा की।

'पर एक दिन हम उसके भी उस्ताद बन गये। ज्यों ही ट्यूब का पानी मिलाने लगा मैंने चट से जाकर पकड़ लिया,' मनोहरलाल बोले।

गूजर सब की बातें सुन रहा था पर चुप चाप दूध निकालते जा रहा था। निकाल चुका तो बोला, 'बाबू जी, इस दुनियां में भांति-भांति के लोग हैं। बेईमान भी हैं और सच्चे भी। जो जैसा करता है वो वैसा भरता है। यहां तो कसम खा रखी है जो एक बून्द भी पानी मिलाऊं।'

गूजर ने बात बड़ी गम्भीरता के साथ कही थी। ग्राहकों पर उसका काफ़ी प्रभाव पड़ा। फिर उसने पौवे से झाग मारने शुरू किये। थोड़ी देर में जब झाग काफी बैठ गयी तो बोला, 'देखा आप सब ने। दूसरी डेरी वाले बरतन झाग से ही भर देते हैं। सेर का चौदह छटांक दूध पल्ले पड़ता है। मैं सदा झाग मार कर देता हूं।'

ग्राहक प्रसन्न होने लगे। बाबू मनोहरलाल बोले, 'ईमानदारी से काम करने वाले ही फलते फूलते हैं।'

'ठीक कहते हो बाबू जी। मैंने एक भैंस से यह काम शुरू किया था। अब भगवान् की दया से देख लो ये कितनी भैंसें और गायें हो गईं। यह सब ईमानदारी का ही फल है।'

'हम लोग भी यही चाहते हैं कि कोई पैसे चाहे खूब कस कर ले ले पर दूध अच्छा दे।'

'सो आंख बन्द करके लेते जाइये। कभी फ़रक निकल आये तो बेशक दूध नाली में फेंक दीजिये। मैं एक पैसा भी नहीं लूंगा।'

'दूध तो भाई तेरा कभी खराब नहीं निकला,' खूब मोटी ताजी खिचड़ी बालों वाली एक माता जी बोलीं, 'पर कभी-कभी कम निकलता है।'

'राम राम कहो, माता जी। यह पौवा रखा है। इसी से सब के सामने नाप कर देता हूं। लो देख लो,' कहते हुए गूजर ने अपना पौवा सब के आगे बढ़ा दिया।

'इसमें देखना क्या है, एक दूसरे साहब बोले, यह तो ठीक ही है।'

'जी हां, आप सब के सामने नापता हूं। अगर कम नापूं तो फौरन कान पकड़ लीजिये।'

एक दूसरे साहब बोले, 'अपने सामने नपवा लो, कम निकले ही क्यों ?'

सब ग्राहक खुशी-खुशी दूध लेकर चले गये। गूजर अपने बरतन धोने लगा। उसे मनोहरलाल और बूढ़ी माता जी पर गुस्सा आ रहा था। बरतन धोता जा रहा था और बड़-बड़ाता जा रहा था—'आप सारी दुनियां का गला दबा दबा कर मोटे पड़ते जा रहे हैं और मेरी बेईमानी देखते हैं। आजकल कौन मुंह में सोना डाले है ?'

पड़ौस की दूसरी डेरी का मालिक उसके पास आ खड़ा हुआ और बोला, 'क्या बड़बड़ा रहा है भाई ?'

'कुछ नहीं, इन बड़ी-बड़ी कोठी वालों की बात कर रहा था। आप तो हजारों की चोरी करते नहीं झिझकते, हम से कहते हैं—तू दूध में पानी मिलाता है, कम नापता है।'

'बकने दे। अपने-अपने दांव पर कौन चूक जाता है ?'

'ये नहीं चूकते तो हम क्यों राजा हरीचन्द जैसे सत्तधारी बने रहें। हमारी जहां चलेगी वहां हम भी चूना लगायेंगे।'

'पर ऐसे जो किसी को पता न चले।'

'पता इनके देवताओं को भी न चलेगा। यह बाबू मनोहरलाल कहता था कि हम साइकिल की ट्यूब में पानी भर कर दूध में मिला देते हैं। हः हः हः।'

'हमारी चलेगी तो हम मोटर के टायर में भर कर भी मिलायेंगे। रोकते बने तो रोक लो। हः हः हः।'

दोनों मित्र जी भर कर हंसे। मनोहरलाल को एक सप्ताह दौरे पर जाना पड़ा। दूध लाने का काम हिम्मत के सिर पड़ गया। वह नित्य सवेरे पप्पू को गोद में लेकर डेरी पर आ डटता और बड़ी चौकसी के साथ दूध नपवा कर ले जाता। पर शीला देवी को पहले दिन से ही शक हुआ। उन्होंने दूध नापा तो दो सेर में पूरा चार छटांक कम निकला। पहले दिन वे कुछ न बोलीं, परन्तु जब दूसरे और फिर तीसरे दिन भी दूध कम निकला तो उन्होंने गूजर से शिकायत की। गूजर गम्भीर होकर बोला, 'क्या पता बीबी जी, मैं तो पूरा दो सेर नाप कर देता हूं।'

'फिर चार छटांक कहां उड़ जाता है। झाग भर देते होगे।'

'नहीं बीबी जी झाग तो मैं पहले ही हटा देता हूं लो देख लो।'

यह कह कर उसने सचमुच झाग हटा कर दो सेर दूध नाप कर दे दिया और बोला, 'घर जाकर इसे एक वार नहीं पांच वार नाप कर देख लेना। तोले भर भी कम निकले तो महीने भर के दाम छोड़ दूंगा।'

'पर अब तक क्यों कम निकलता था ?'

'मैं क्या जानूं बीबी जी, आपका नौकर बीच में पी जाता होगा।'

'नहीं वह बड़ा ईमानदार है।'

यों तो सारी दुनियां ईमानदार है। पर पेट तो सभी को भरना पड़ता है। आप लोग उसे कभी दूध नहीं देते होंगे सो उसकी कसर यों पूरी कर लेता होगा।'

शीला देवी जी का हिम्मत की ईमानदारी में जो अटल विश्वास था वह डगमगा गया। वे चुप रह गईं। दूसरे दिन उन्होंने फिर हिम्मत को ही दूध लेने भेजा और जब नापा तो फिर वह चार छटांक कम निकला। अब उनका सन्देह पक्का हो गया। मनोहरलाल ने दौरे से जब आकर हाल सुना तो उन्होंने हिम्मत को बुला कर डांटना शुरू किया—'तुझे चुरा कर दूध पीने में शरम नहीं आई ?'

'मैंने दूध नहीं पिया,' हिम्मत हक्का बक्का होकर बोला।

मनोहरलाल का क्रोध भड़क उठा। चिल्ला कर बोले, 'चोरी करता है और ऊपर से झूठ बोलता है।'

'नहीं बाबू जी। मैंने न चोरी की है और न मैं झूठ बोलता हूं।'

'कमीना कहीं का,' मनोहरलाल गरजे

और डट कर उन्होंने हिम्मत के तीन चार चांटे जड़ दिये। इसके बाद उसे घसीटते हुए बाहर ले गये और सड़क पर धकेल कर बोले, 'निकल जा मेरे घर से।'

हिम्मत चुपचाप खड़ा खड़ा सिसकता रहा। मनोहरलाल ने अपने किवाड़ बन्द कर लिये। घण्टे भर तक हिम्मत वहीं खड़ा रहा पर जब किवाड़ फिर भी न खुले तो वहां से चुपचाप चल दिया।

दो-तीन दिन के बाद मनोहरलाल का दूध फिर चार छटांक कम निकलने लगा। अब वे चकराये। दूध नापते समय वे विशेषतः सावधान रहने लगे। एक दिन उन्होंने देखा कि गूजर ने दूध नापने के दो पौवे रख छोड़े हैं। किसी को एक से नाप कर देता है तो किसी को दूसरे से। उन्होंने सहसा दोनों को उठा लिया और उलट पुलट कर देखा तो एक पौवे की तली को गूजर ने भीतर की ओर ठोक कर दबा दिया था और इस तरह उसमें पाव के बदले साढ़े तीन छटांक दूध ही आता था। दूसरा पौवा पूरा चार छटांक का था। गूजर की पोल खुल गई और मनोहरलाल भी समझ गये कि हिम्मत का लाया हुआ दूध क्यों चार छटांक कम निकलता था। हिम्मत बेचारा सचमुच निर्दोष था। कम नाप का पौवा रख कर इस गूजर ने उन्हें बेवकूफ बना दिया था। उन्होंने हिम्मत को बहुत ढूंढा पर उस ईमानदार नौकर का कहीं पता न चला। सांझ सवेरे पप्पू अब भी अपने उस स्नेहमय साथी को बारम्बार पुकारा करता है—'इम्मत—इम्मत।' तब मनोहर और शीला दोनों ही बारम्बार पछता उठते हैं।

(मीटर प्रणाली को नापतौल पूरी तौर पर चालू हो जाने पर इन पौवों आदि के स्थान पर जो पैमाने चलेंगे उनकी सरकारी कर्मचारी बड़ी सावधानी के साथ समय-समय पर परीक्षा किया करेंगे जिससे बेईमानियों का अन्त हो जाएगा। —सम्पादक।)

आदर्श प्रजातन्त्र प्रणाली

भारत को अपने यहां एक ऐसी आदर्श प्रजातन्त्रीय प्रणाली डालनी चाहिये, जो कि दूसरों के लिये उदाहरण बन सके और जो समस्त संसार को सर्वोदयी आधार पर शासन व्यवस्था कायम करने के लिये प्रेरित करे। यह तभी संभव हो सकता है जब कि जनता संसदीय प्रणाली की कमजोरियों को समझें और उसमें सुधार के लिये समाजनिष्ठ प्रयत्न किये जाएं। प्रजातन्त्र में अडिग विश्वास रखने वाले यदि कार्य रत हों, तो जनता की सरकार भारत में कायम की जा सकती है।

—श्री जयप्रकाश नारायण

अब कार्य क्षेत्र में आना है

श्री कवि जोरावरसिंह जी, बरसाना (ज़ि० मथुरा)

ऐ भारत के युवको तुमको, अब कार्य क्षेत्र में आना है।
स्वाधीन हुआ अब देश यहां, फिर से वैदिक युग लाना है ।। १ ।।

वैदिक युग लाकर प्रथम यहाँ, कर दूर अविद्या घर-घर से।
जगती के कोने-कोने में, वेदों का नाद बजाना है ।। २ ।।

सब पराधीन की सड़ांद, जिसमें पड़ करके जल जाए।
कर क्रान्ति देश भारत में अब, ऐसी ज्वाला सुलगाना है ।। ३ ।।

यह महाक्रान्ति की चामुण्डी, मानव लोहू की प्यासी है।
अपना जीवन बलिदान चढ़ा, अब इसकी प्यास बुझाना है ।। ४ ।।

जब बुड्ढे-बुड्ढे नेता भी, कर रहे परिश्रम रात-दिवस ।
तो उनसे भी कुछ अधिक तुम्हें, अपना जौहर दिखलाना है ।। ५ ।।

विघ्नों को पथ से दूर हटा, बाधाओं का आलिङ्गन कर।
आगे ही बढ़ना है वीरो, पीछे नहिं पैर हटाना है ।। ६ ।।

हैं बंधा कफन शिर के ऊपर, तन पर हैं केशरिया कपड़े।
हाथों में कर्म कुठार लगा, यह देशभक्त का बाना है ।। ७ ।।

हैं शत्रु हमारे सर्व प्रथम, निर्धनता और अविद्या दो।
निज लगा करके शक्ति सारी, दोनों को मार भगाना है ।। ८ ।।

करना है भ्रष्टाचार दूर, सदाचार फिर सिखलाना।
भारत के कोने-कोने में, मानवता को फैलाना है ।। ९ ।।

उठ पड़ो 'सिंह कवि' ऐ युवको! यह ठान दिलों में ठानो तुम।
भारत की सेवा में ही अब, यह जीवन सकल लगाना है ।।१०।।
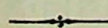
सत्कर्म की कसौटी

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

मनुष्य के मानसिक, वाचिक और शारीरिक कार्यों का शास्त्रीय नाम कर्म है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक कर्म का कुछ न कुछ फल अवश्य होता है। आग में हाथ देने से अवश्य जलेगा, ऊंचाई से गिरें तो चोट अवश्य लगेगी, यदि दीवार पर गेंद मारें तो वह लौट कर अवश्य आएगी। ये सामान्य लौकिक दृष्टान्त हैं, जिनसे प्रत्येक मनुष्य अनुमान लगाता है कि जो कर्म किये जाते हैं, उनका फल अवश्य होता है। जब जड़ पदार्थों की अचेतन क्रियाओं का भी फल होता है तो चेतन मनुष्य के इच्छा पूर्वक किये गये कर्मों का फल क्यों न होगा? 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म' जब तक उसका फल भोग न लिया जाय तब तक कर्म नष्ट नहीं होता, इस कारिकांश का यही अभिप्राय है।

कर्म दो प्रकार के होते हैं, अच्छे और बुरे। जिन कर्मों का परिणाम सुखदायक हो, वे अच्छे; और जिन का परिणाम दुःखदायक हो वे बुरे कर्म कहलाते हैं। योग दर्शन में कर्मों के सम्बन्ध में कहा गया है—

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्य हेतुत्वात्।
(योग २।१४)

'जो कर्म सुखजनक हैं, वे पुण्य (अच्छे) और जो परिताप (दुःख) जनक हैं वे अपुण्य (बुरे) कहलाते हैं।'

यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि कर्म के प्रकरण में सुख-दुःख शब्दों से किसके सुख-दुःख का ग्रहण होना चाहिये? क्या केवल कर्म करने वाले के अपने सुख-दुःख ही पुण्य और अपुण्य के पैमाने हैं या अन्य प्राणियों के सुख-दुःख की भी कोई गिनती है? वस्तुतः यह प्रश्न कर्तव्या-कर्तव्य के बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न का ही एक अङ्ग है। वह प्रश्न यह है कि मनुष्य के लिए अच्छाई की परिभाषा क्या है? क्या वह अच्छा है जो अपने को सुख देने वाला है; या वह अच्छा है जो कर्तव्य है; अथवा वह अच्छा है जो उसे पूर्णता की ओर ले जाए? ये सब धर्मशास्त्र के गहरे और लम्बे विवाद-ग्रस्त प्रश्न हैं। दार्शनिकों में इस पर बहुत गहरे मतभेद हैं। उस गहराई में न जाकर हम यहां अच्छाई की एक सरल व्याख्या को स्वीकार करेंगे। वह व्याख्या व्यास मुनि ने महाभारत में की है। कहा है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषान्न समाचरेत्॥

धर्म का सार क्या है, यह मैं बतलाता हूं। इसे ध्यान से सुनो और उस पर विचार करो। धर्म का सार यह है कि जो हमें अपनी अन्तरात्मा के प्रतिकूल प्रतीत होता है, उसे दूसरे के लिये भी प्रतिकूल ही मानो और यही मान कर आचरण करो। हम दूसरों से जिस व्यवहार की इच्छा रखते हैं, दूसरे भी हम से वैसे ही व्यवहार की इच्छा रखेंगे। जो अच्छा है, वह सब के लिये अच्छा है, और जो बुरा है वह सब के लिये बुरा है। धर्म वह नहीं जो केवल अपने लिये सुखकारी हो, धर्म वह है जो सब के लिये सुखकारी हो। अच्छे और बुरे की यह ऐसी

कसौटी है, जिसे प्रत्येक मनुष्य समझ सकता है।

पश्चिम के धर्माचार्यों और दार्शनिकों ने अच्छे और बुरे कर्मों का लक्षण ढूंढने के अनेक यत्न किये हैं। एक समय था जब योरोप में हिडोनिज्म (सुखवाद) का दौरदौरा था। उस सिद्धान्त का अभिप्राय यह था कि प्रत्येक मनुष्य के लिए वही 'अच्छा' है जो उसके लिए 'सुखदायी' है। यह मन्तव्य इतना संकुचित और दोषयुक्त था कि धीरे-धीरे उसका रूप बदलने लगा। बैन्थम और मिल आदि विचारकों ने उसे 'उपयोगितावाद' का नया नाम देते हुए 'सुखदायी' की व्याख्या यह की कि जो कार्य अधिक से अधिक व्यक्तियों को अधिक से अधिक सुख देने वाला है, वह 'अच्छा कार्य' है।

सुखवाद का सब से बड़ा दोष यह था कि 'सुख' शब्द की व्याख्या सर्वथा अनिश्चित है। सब मनुष्यों के लिये सुख का एक ही रूप नहीं है। किसी को धन के कमाने में सुख मिलता है, किसी को जोड़ने में सुख प्राप्त होता है तो किसी को दान करने में। यदि सुख या प्रसन्नता की अनुभूति को ही अच्छे या पुण्य कर्म का लक्षण मानें तो तीनों व्यक्तियों के लिये उनका रूप पृथक्-पृथक् हो जायगा। जो प्रत्येक इकाई में बदले उसे न्यायसंगत लक्षण कैसे कह सकते हैं?

पश्चिम के जिस विचारक ने 'अच्छे कर्म' की सब से अधिक तर्कसंगत व्याख्या की, वह जर्मनी का इम्यैनुएल काण्ट था। काण्ट की युक्ति-शृङ्खला बहुत गहन है उसमें न उलझ कर यदि हम उसका सारांश जानना चाहें तो यह है पाप और पुण्य की कसौटी मनुष्य को कहीं बाहर ढूंढने की आवश्यकता नहीं, वह उसके अन्दर विद्यमान है। सत्य वह है जो देश और काल के भेद से भिन्न न हो। कर्तव्य सम्बन्धी सिद्धान्त भी वही सत्य होगा, जो सारे विश्व के लिये समान है। कुछ दृष्टान्त लीजिये; प्रश्न यह है कि क्या झूठ बोलना उचित है? इस प्रश्न का उत्तर दो प्रश्नों के उत्तरों में आ जाता है। यदि सभी लोग सदा झूठ बोलने लगें तो दुनियां का व्यवहार चल सकता है? क्या मैं पसन्द करूंगा कि सब लोग झूठ बोलें? उत्तर स्पष्ट है कि नहीं। सिद्ध हुआ कि सत्य बोलना अच्छा और झूठ बोलना बुरा है। काण्ट का सिद्धान्त प्रकारान्तर से मनु के बताए हुए धर्म के चतुर्थ 'साक्षात्-लक्षण' 'स्वस्य च प्रियमात्मनः' की युक्तिसगत व्याख्या है।

भगवद्गीता के इन श्लोकों का भी यही अभिप्राय है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनी।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं, स योगी परमोमतः ॥

—श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित अध्यात्म रोगों की चिकित्सा से उद्धृत।

एक शिक्षाप्रद कथा—

सच्चा पुरस्कार

श्री रमेशकुमारी जी किंग्सवे कैम्प, देहली

टन-टन-टन-टन · · · स्कूल की घंटी बजनी शुरू हो गई। छोटे-छोटे बालक, हाथ हिलाते, एक-दूसरे को बुलाते कक्षा में आके बैठने लगे। गणित का घण्टा था। अध्यापक जी आए, उपस्थिति ली और कहने लगे 'बच्चो, जो मैंने कल सवाल दिये थे बारी बारी से आकर दिखाओ, हां, जिसके सब सवाल ठीक होंगे उसे पुरस्कार भी दिया जायेगा। हां, तो अब आओ। अरे नहीं, ऐसे नहीं, तुम तो गड़बड़ कर देते हो, पहले बाईं ओर वाले छात्र आयेंगे। देखो, शोर कोई भी न मचाये। अच्छा नरेश अब तुम आओ।'

बारी बारी से सब विद्यार्थी आकर काम दिखाने लगे और अपनी अपनी जगह जा वापिस खड़े होते गये। कारण यह था कि किसी के सवाल ठीक ही नहीं थे कठिन जो थे! अध्यापक जी ने देखा सारी कक्षा खड़ी थी। किन्तु नहीं, सबसे अन्त में बैठा हुआ गोपाल अपने स्थान पर सिर झुकाए बैठा था।

अध्यापक जी ने गोपाल को बुलाया और गले लगा लिया। शाबाश बेटा तुम्हीं सब से लायक हो, देखो नालायको! इसके एक नहीं सारे के सारे सवाल ठीक हैं कितने शर्म की बात है · · · किन्तु हैं! गोपाल ने तो रोना शुरू कर दिया। 'क्या बात है बेटा, क्या बात है, अरे रोते क्यों हो?' अध्यापक जी ने पुचकारा। किन्तु वह तो रोता ही जाता था। अन्त में रोने का वेग कुछ कम हुआ तो उसने इतना ही कहा, 'कि यह मैंनें किसी दूसरे से कराये हैं और एक बार फिर रोना शुरू कर दिया। सारी कक्षा गोपाल के मुख की ओर देख रही थी। अध्यापक जी कुछ देर तो उसके मुख की ओर देखतें रहे, फिर उन्होंने उसे छाती से लगा लिया—'अच्छे बेटे तुम तो बड़े ही ईमानदार हो। अब भी पुरस्कार तुम्हें ही मिलेगा बस अब रोना बन्द करो।'

यह ईमानदार बालक हमारे श्री गोपाल कृष्ण गोखले थे, जो हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के एक प्रमुख सेनानी थे।

अहिंसा द्वारा सुख प्राप्ति

यो बन्धनबधक्लेशान्, प्राणिनां न चिकीर्षति। स सर्वस्य हितप्रेप्सुः, सुखमत्यन्तमश्नुते ॥

मनु० ५।४६

जो मनुष्य सब जीवों का हित चाहता है और किसी जीव को बन्धन में रखने, मारने अथवा किसी प्रकार का कष्ट पहुंचाने की इच्छा नहीं करता, उसे सब प्रकार के श्रेष्ठ सुख उपलब्ध होते हैं।

वेद और गोपालन

ब्र० श्यामनाथ कक्षा १३

वेदों में गौवों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। वेदों में स्थान-स्थान पर व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से गौवों के लिये प्रार्थना की गई है। निम्न मन्त्रों में प्रभु-भक्त याचक प्रार्थना कर रहे हैं—

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
संसिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवागावो मयि गोपतौ॥
आहरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम्।
आहृता अस्माकं वीरा आपलीरिदमस्तकम्॥

ऋग्वेद ६।२८ का सारा सूक्त राज्य के प्रति गौवों के लिये निर्देश करता है। हम केवल यहां कुछ मुख्य मन्त्रों का निर्देश करते हैं--

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान्,
गावः सोमस्य प्रथमस्य भंक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्रः,
इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम्॥
प्रजावतीः सुयवसं रिशन्तीः,
शुद्धा अपः सुप्रयाणे पिबन्ती।
मा वःस्तेन ईशत माघशंसः,
परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः॥

इस सूक्त का देवता इन्द्र तथा गावः हैं। इसमें गौओं के सम्बन्ध में राजा के कर्तव्यों का निर्देश है। इस सूक्त का भाव इस प्रकार है--

गौएं बहुत सन्तान वाली होकर हमारी गोशाला में बैठें और सुखपूर्वक रहें। राजा को निर्देश करते हुए वेद आगे कहता है कि हे राजन्! तू गोधन की उत्तरोत्तर वृद्धि के लिये गौ विशेषज्ञों की नियुक्ति करा 'इन्द्रो मे गावः अच्छान्' से यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि गौओं के क्रय-विक्रय पर राज्य की ओर से पूरा नियन्त्रण होना चाहिये और राजा उन विशेषज्ञों द्वारा समय-समय पर यह देखता रहे कि गौओं में किसी प्रकार का भयंकर रोग इत्यादि तो नहीं हो रहा है। गौओं को जो घास आदि खाने को दिया जाए वह सड़ा, गला, मैला, पुराना इत्यादि नहीं होना चाहिये। उनके पीने का पानी भी अति स्वच्छ होना चाहिए। इस प्रकार उनकी सन्तानें उत्तम होंगी तथा वे चिर-काल तक जीवनयापन कर सकेंगी। चोर, डाकू इत्यादि से रक्षा करने के लिये राज्य को उचित व्यवस्था करनी चाहिए। सूक्त के अन्तिम मन्त्र में वेद इस प्रकार निर्देश करता है जिसका कहीं किसी भी देश में पालन नहीं किया जाता। मन्त्र इस प्रकार हैं—

उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम्।
उपऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये॥

(आसु गोषु) इन गौओं में (इदं) यह जो (उपपर्चनं) साँड के समीप जा कर मिलने का गुण या इच्छा है और (ऋषभस्य) सांड के (रेतसि) वीर्य में (उप) जो गौओं के पास जाकर मिलने का गुण है वह (इन्द्र) हे राजन् (तव) तेरे (वीर्ये) पराक्रम में अर्थात् तेरे पराक्रम की अधीनता में (उपपृच्यताम्) मिले।

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि राज्य की शक्ति का इस पर पूरा नियन्त्रण होना चाहिए कि वे

ही सांड बच्चे उत्पन्न कर सकें जिन्हें राज्य के इस गोपालन विभाग के विशेषज्ञ स्वीकृत कर चुके हों और ऐसे सांडों के मिलाने से पहले प्रत्येक गोपति गृहस्थ को अपनी प्रत्येक गौ की राज्य के इन विशेषज्ञों से परीक्षा करानी चाहिए। गौओं पर राष्ट्र के स्वास्थ्य, बल और वीर्य की निर्भरता है। अतः बीमार और दुर्बल सांड गायों से मिलकर बच्चे पैदा न करें। इसका राज्य को पूरा नियन्त्रण करना चाहिए।

केवल ऋग्वेद में ही नहीं बल्कि अथर्ववेद में भी स्थान-स्थान पर कुछ अन्य निर्देश देखिये—

शिवो वो गोष्ठो भवतु।　　　अ० ३।१४।१

अयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः।　अ० ३।१४।१

अथर्ववेद के इन वाक्यों में कहा गया है गौओं के रहने का स्थान (गोष्ठ) ऐसा हो, जिसमें गौएं सुखपूर्वक बैठ सकें और रह सकें। वह उनके लिये सब भांति शिव अर्थात् कल्याण-कारी होना चाहिए और उसमें सब प्रकार की पुष्टि प्राप्त हो सके। उनके खान-पान आदि का पूरा प्रबन्ध होना चाहिये।

इसी प्रसंग में यह भी विचार करना आवश्यक है कि वेदों में गोवध है या नहीं? इस प्रश्न के उत्तर के लिये विस्तार में न जाते हुए केवल हम संक्षेपतः यहां वेद प्रतिपादित बातों को दिखायेंगे।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के आधार पवित्र वेदों में 'गौ' के लिये 'अघ्न्या' शब्द का जिसका निश्चित अर्थ अवध्य होता है एक-दो बार नहीं वरन् १३७ बार प्रयोग किया गया है। वेदों में स्वतन्त्र रूप से गो विषयक १०-१२ सूक्त आये हैं।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां,
स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय,
मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥

ऋ० ८।१०१।१५

ऋग्वेद के इस मन्त्र में स्पष्ट लिखा है कि गौ राष्ट्र के रुद्र, वसु और आदित्य ब्रह्मचारी बनकर विद्या प्राप्त करने वाले प्रजाजनों की माता पुत्री और बहिन है। भाव यह है कि प्रजाजनों को गौओं के साथ माता, बहिन और पुत्री की भांति गहरा प्रेम भाव रखना चाहिए। गौ दूध रूपी अमृत को पिलाती है वह निष्पाप और काटी जाने योग्य नहीं है।

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा॥

यदि तू हमारे गौ, घोड़े तथा पुरुष की हत्या करेगा तो हम सीसे की गोली से तुझे बींध देंगे, जिससे तू हमारे वीरों का वध न कर सके। इस प्रकार गोवध कर्ता के लिये स्पष्ट रूप से मृत्यु दण्ड का विधान वेद कर रहा है। इसी प्रकार का विचार प्रकट करते हुए एक बार पूज्य महात्मा गांधी ने २५ जनवरी १९२५ को अपने प्रवचन में कहा था कि 'मेरे नजदीक गोवध और मनुष्य वध एक ही चीज है।'

गोवधकर्ता को वैदिक वाङ्मय में कितना नीच समझा जाता है इसका एक और उदाहरण देखिये—

क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति तम्।

काण्व ३४—८

जो गाय काटने वाले के पास भीख मांगने के लिये उपस्थित होता है, उसे भूख के अर्पण करो अर्थात् उसे भूखा मरने दो। दूसरे शब्दों में भीख मांगने वाला भी गो घातक के घर भीख मांगने न जाय, भले ही वह भूखा मरजाय। गोवध कर्ता के लिये वेद में इतना बड़ा सामाजिक दण्ड रखा गया है। गोवध तो दूर रहा लात मारने वाले के लिये वेद कहता है कि जो गाय को पैर से ठुकराता है उस पुरुष को मैं जड़मूल से काट गिराता हूं। अथर्ववेद ७–५–५ में पुन: कहा है—

> मुग्धा देवा उत शुना–
> यजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधा यजन्त।
> य इमं यज्ञं मनसा चिकेत,
> प्रनो वोचस्तमिहेह ब्रुवः॥

वे लोग मूर्ख हैं जो कुत्ते के मांस से तथा गौ के अवयव से यजन करते हैं।

इस मन्त्र द्वारा गोमांस से हवन करने वालों को स्पष्ट रूप से मूढ़ अज्ञानी कहा गया है।

प्राचीन भारत में गौ की महत्ता और देश की समृद्धिशालिता को देख कर हृदय गद्गद हो जाता है। उपनिषदों में गाथायें आती हैं कि उस समय गौओं के सींगों पर मोहरें बांधकर या स्वर्ण जड़वा कर एक-दो नहीं वरन् हजारों गौओं का दान किया जाता था। परन्तु आज हमने गोसेवा के पवित्र कार्य को घृणित समझ कर छोड़ दिया। इसी का तो परिणाम है जिस देश में घी और दूध की नदियां बहती थीं, जिस देश में चलते हुए राहगीरों को पीने के लिये पानी मांगने पर दूध के भरे लोटे मिलते थे, वहां के लोगों के हिस्से में आज केवल साढ़े तीन छटांक दूध मुश्किल से आता है। जो देश कभी गौओं की सुख समृद्धि के लिये प्रसिद्ध था आज उस देश की अभागी सरकार प्रति पशु ६ पाई वार्षिक व्यय करती है जब कि यूरोप के देशों में ६२ पाई प्रति पशु व्यय किया जाता है।

उपर्युक्त प्रमाणों के होते हुए भी वेदों में यदि कोई अपने कुबुद्धि के चातुर्य से गोहत्या निकालता है तो वह नास्तिक, अज्ञानी और मूर्ख है। परन्तु जिस वेद में गौ के लिये 'अघ्न्या' 'अमृतस्यनाभिः' 'अन्तकाय गोघातम्' 'गां मा हिंसीः' 'यजमानस्य पशून् पाहि'— यह सब लिखा हुआ है, मैं नहीं समझता फिर कौन है जो वेदों में गोहत्या का स्वप्न देखता है?

अन्त में पूज्य महात्मा गांधी के २५ जनवरी १६२५ के उद्गारों को प्रकट करते हुए अपने लेख की समाप्ति करता हूं। 'मेरे विचार के अनुसार गोरक्षा तथा पालन का प्रश्न स्वराज्य प्राप्ति से छोटा नहीं है, कई बातों में मैं उसे स्वराज्य प्राप्ति से बड़ा मानता हूं।'

अतः हम सरकार के प्रतिनिधियों से सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि वेद की आज्ञा के अनुसार गोवध निषेधक कानून बनाएं तथा उसे कार्य रूप में परिणत करायें।

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तकादि की दो प्रतियां पत्रिका कार्यालय में आनी चाहियें)

महर्षि दयानन्द से पूर्व का भारत

लेखक—स्वर्गीय मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी, प्रकाशक—श्री गोविन्दराम हासानन्द जी अध्यक्ष आर्य साहित्य भवन नई सड़क, देहली, पृष्ठ लगभग १६० मूल्य १.५० ।

स्वर्गीय मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी एक सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान् वक्ता और लेखक थे जिन्होंने संस्कार चन्द्रिका, वैदिक विवाहादर्श, दिग्विज्ञान आदि अनेक उत्तम ग्रन्थों की रचना की थी। प्रस्तुत पुस्तक उनकी लिखी वह विद्वत्तापूर्ण भूमिका है जो श्री रामविलास शारदा द्वारा लिखित 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' नामक महर्षि दयानन्द जी के जीवन चरित्र की भूमिका के रूप में उन्होंने लिखी थी। 'आर्यधर्मेन्द्र जीवन' चिरकाल से उपलब्ध नहीं हो रहा था जिसके कारण स्वाध्यायशील आर्य उस विद्वत्तापूर्ण भूमिका से भी वञ्चित हो रहे थे। अतः श्री गोविन्दराम जी ने 'वेद प्रकाश' मासिक के विशेषांक के रूप में इस भूमिका को प्रकाशित करके बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है। इस पुस्तक में वैदिक काल की सभ्यता का महत्व दर्शाते हुए वेदों की शिक्षाओं को सार्वभौम सिद्ध किया गया है। वेद में विविध विद्याओं का भी अति संक्षेप से प्रतीक देकर निर्देश मात्र किया गया है। महाभारत युद्ध के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने बताया है कि इससे लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व ईर्ष्या द्वेष, विषयासक्ति, आलस्य, अभिमानादि उत्पन्न हो चुके थे जो नैतिक पतन के कारण बने। वाममार्ग, शैव, शाक्तमत, वैष्णव, जैन और बौद्धमत, अद्वैतवाद इत्यादि का संक्षेप से विवेचन करते हुए सुयोग्य लेखक ने बताया है कि इनके प्रचार के कारण क्या-क्या हानियां हुईं, महात्मा बुद्ध के अहिंसादि विषयक उपदेशों का पृ० ६५ पर उल्लेख करते हुए जिनमें अहिंसा की महिमा बता कर उसका अन्तिम लाभ यह बताया गया है कि 'अहिंसा के व्रत का पालन करने वाला मरने पर ब्रह्मलोक (ब्रह्मदर्शन) पाता है।' विद्वान् लेखक ने ठीक ही लिखा है कि 'इस उपदेश से यह विदित होता है कि महात्मा बुद्ध ईश्वरवादी थे। शोक का विषय है कि बुद्ध के चेलों ने नास्तिकपन फैला दिया।' हमने अपनी 'बौद्ध मत और वैदिक धर्म' आर्य समाज दीवानहाल द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तक और 'महात्मा बुद्ध ऐन आर्य रिफॉर्मर' नामक अंग्रेजी पुस्तक में (जिस की बौद्ध मत और पाली के जगद्विख्यात विद्वान् प्रो. नारायण भागवत एम. ए. द्वारा सम्पादित 'धर्मचक्र' 'विश्वज्योति' भारतीय विद्याभवन बम्बई की पत्रिका भारती और 'भवन्स जर्नल, सार्वदेशिक, हिन्दी सन्देश, आर्यमित्र, प्रबुद्ध भारत (अंग्रेजी) इत्यादि में अत्यन्त प्रशंसात्मक आलोचना प्रकाशित हुई है।) सप्रमाण इसी बात को सिद्ध किया है। लेखक ने 'श्री शंकराचार्य जी ने मूर्ति पूजा खण्डन किया' यह शीर्षक रख कर कई पृष्ठ लिखे हैं किन्तु इसके लिये प्रमाण नहीं दिये जो 'परापूजा' आदि में

'पूर्णस्यावाहनं कुत्र, सर्वाधारस्य चासनम् ।
अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य, कथमुद्वासनंभवेत् ॥'

इत्यादि रूप में स्पष्ट पाये जाते हैं। उन्हें उद्धृत कर देना अच्छा होता। आशा है अगले संस्करण में उन्हें पाद टिप्पणी रूप में उद्धृत कर दिया जाएगा क्योंकि आजकल श्री शंकराचार्य के अनुयायी भी मूर्तिपूजा करते हैं। भूमिका के अन्तिम भाग में 'भारत के इतिहास में पौराणिक अमावस्या की घनघोर रात्रि और उसमें आदित्य ब्रह्मचारी का आगमन' इस शीर्षक से महर्षि दयानन्द के अद्भुत वेदोद्धारादि विषयक कार्य का उत्तमता से दिग्दर्शन कराया गया है और आर्यसमाज के १० नियमों का मूल वेद मन्त्रों में दिखाया गया है। पृ० ११८ में अपने शिष्य श्री श्याम जी कृष्णवर्मा के नाम महर्षि दयानन्द का जो पत्र हिन्दी में प्रकाशित किया गया है उसको मूल संस्कृत में भी अगले संस्करण में दे देना अच्छा होगा। इस प्रकार यह बड़ी विद्वत्तापूर्ण भूमिका थी जिसके पुस्तक रूप में प्रकाशन से आर्य जनता को लाभ ही होगा। श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक अध्यक्ष अनुसन्धान विभाग महर्षि दयानन्द स्मारक टंकारा ने इस पुस्तक का अनुसन्धान सूचक प्राक्कथन लिख कर इसकी उपयोगिता को और भी बढ़ा दिया है। हम श्री गोविन्दराम जी का इस उत्तम प्रकाशन के लिये अभिनन्दन करते और इसका यथेष्ट प्रचार चाहते हैं।

'सम्पदा' सहकारी कृषि विशेषाङ्क

सम्पादक—श्री पं० कृष्णचन्द्र जी विद्यालंकार, अशोक प्रकाशन मन्दिर, शक्तिन गर देहली पृष्ठ १०४ मूल्य १.५०।

'सम्पदा' नाम्नी मासिक पत्रिका गत लगभग ८ वर्षों से गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के सुयोग्य स्नातक श्री पं० कृष्णचन्द्र जी विद्यालंकार भूतपूर्व सम्पादक 'वीर अर्जुन' के सम्पादकत्व में निकल रही है जिस में मुख्यतया आर्थिक विषयों पर अत्युत्तम लेख होते हैं। अभी कुछ मास पूर्व इसका 'समाजवाद अंक' नामक अत्यन्त उपयोगी ठोस सामग्री वाला अंक प्रकाशित हुआ था। सहकारी कृषि का विषय नागपुर कांग्रेस के बाद से अत्यन्त विवादास्पद विषय बना हुआ है। जहां श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू तथा कांग्रेस के अन्य नेता उसके प्रबल समर्थक हैं वहां श्री राजगोपालाचार्य,श्री मसानी, श्री रंगा, श्री कन्हैयालाल जी मुन्शी आदि उसके प्रबल विरोधी हैं। इस अंक में दोनों पक्षों के लेखों का बड़ा उत्तम संग्रह कर दिया गया है ताकि निष्पक्षपात विचारक दोनों पक्षों पर विचार करके उचित निष्कर्ष पर पहुंच सकें। यह अंक इस दृष्टि से सब देश हितैषियों के लिये अत्यधिक उपयोगी तथा उपादेय है। इस पत्रिका के साधारण अंक भी बड़े अच्छे होते हैं।

आर्थिक समीक्षा का तृतीय पंचवर्षीय योजना ऊटी विचार– 'गोष्ठी विशेषाङ्क'

प्रधान सम्पादक—श्री सादिक अली पृष्ठ १०० इस विशेषांक का मूल्य १.००।

आर्थिक समीक्षा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आर्थिक-राजनैतिक-अनुसन्धान विभाग

की पाक्षिक पत्रिका है। इस विशेषांक में मद्रास राज्य में स्थित ऊटकमण्ड (ऊटी) में ३० मई से ५ जून १९५९ तक श्री उच्छंगराय ढेबर भू० पू० अध्यक्ष अ० भा० कांग्रेस की अध्यक्षता में हुई विचार गोष्ठी का विवरण दिया गया है, जिसका मुख्य विषय तृतीय पंचवर्षीय योजना पर विचार विमर्श था। इस विशेषांक में माननीय प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल जी, देहली विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री वी. के. आर्. वी. राव, डा० सम्पूर्णानन्द जी, श्री गुलजारी लाल नन्दा, श्री चिन्तामणि देशमुख, श्री वैकुण्ठलाल मेहता, श्री श्यामनन्दन मिश्र के 'तृतीय योजना के मुख्य उद्देश्य, समाजवादी समाज की ओर उन्मुख तीसरी योजना सम्बन्धी दृष्टिकोण पर एक टिप्पणी, योजना में सफलता के लिये अनिवार्यताएं, बेरोजगार जनशक्ति का उपयोग, पंचवर्षीय योजनाओं के लिये कृषि क्षेत्र से साधनों की प्राप्ति में कुछ मनोवैज्ञानिक रुकावटें, योजना का ग्रामीण पक्ष, आयात और निर्यात का राजकीय व्यापार' इत्यादि विषयों पर विचार पूर्ण गम्भीर लेख हैं। यह अंक उन सबके लिये जो पंचवर्षीय योजना के विषय में नेताओं और विचारकों के विचार जानना चाहते हैं अत्यन्त उपयोगी है, इससे सब को लाभ उठाना चाहिये।

महामहोपाध्याय ताता सुब्बाराय शास्त्रीमहोदयः

लेखक—पण्डित प्रवीण साहित्य चक्रवर्ती पं० कर्णवीर नागेश्वरराव जी वेटपालेम, आन्ध्र प्रदेश, प्रकाशक—आन्ध्र भारती प्रकाशन मन्दिर वेटपालेम। मूल्य ७५ नये पैसे।

पण्डित प्रवीण कर्णवीर जी से हमारे पाठक भली-भांति परिचित हैं। उनके लेख हमारी पत्रिका में निकलते रहते हैं और उनकी अनेक संस्कृत हिन्दी पुस्तकों की समीक्षा भी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है। आन्ध्र प्रदेश के सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् महामहोपाध्याय ताता सुब्बाराय शास्त्री जी का यह जीवन चरित्र पं० कर्णवीर जी ने अत्यन्त सरल संस्कृत भाषा में लिखा है। उत्तर भारतीय विद्वान् दक्षिण भारत के विद्वानों से बहुत कम परिचय रखते हैं। ऐसे ग्रन्थों के द्वारा उनका परस्पर परिचय बढ़ेगा। इस दृष्टि से ऐसी पुस्तकों की विशेष उपयोगिता है। हम पण्डित कर्णवीर जी के संस्कृत और हिन्दी के प्रति सक्रिय अनुराग का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

महापुरुषकीर्तनम्

लेखक और प्रकाशक—पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, आनन्द कुटीर ज्वालापुर उ० प्र० मूल्य सजिल्द २.२५ अजिल्द २.००।

मैंने 'महापुरुषकीर्तनम्' नामक संस्कृत हिन्दी भाषानुवाद सहित पुस्तक ध्यान से पढ़ी और पढ़ कर प्रसन्न हुआ। इसकी संस्कृत सुबोध और मुहावरेदार है और शैली चित्ताकर्षक। महापुरुषों की मुख्य विशेषताओं की कीर्ति इस पुस्तक द्वारा बढ़ेगी ऐसी आशा है। विश्वास है कि यह पुस्तक लोकप्रिय सिद्ध होगी। शुभ

कामनाएं स्वीकार करें ।

—बाबूराम सक्सेना एम. ए डी. लिट्
प्रधानाचार्य संस्कृत प्राकृत भाषा विभाग,
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

मान्य उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् जी का पं० धर्मदेव जी के नाम १७ अगस्त १९५९ का पत्र

भारत-उपराष्ट्रपति कार्यालय नई देहली
१७—८—१९५९

प्रिय श्री धर्मदेव !

आप के १२ अगस्त के पत्र के लिये धन्यवाद। मैंने अब आपकी पुस्तक 'महापुरुष-कीर्तनम्' को पढ़ लिया है। हमारे देश में ऐसे साहित्य की कमी है जो हमारे युवकों और युवतियों के लिये स्फूर्तिदायक हो। आपने इस पुस्तक को संस्कृत श्लोकों और हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करके निश्चय से एक उत्तम प्रयत्न किया है। मैं आशा करता हूं कि इस को सर्वत्र बहुत बड़ी संख्या में पढ़ा जाएगा। सम्पूर्ण शुभ कामनाओं के साथ

आपका स्नेही

(ह०) एस्. राधाकृष्णन्

—(अंग्रेज़ी पत्र से अनूदित)

राष्ट्रीय हित का ध्यान

यह आवश्यक है कि लोगों में यह विचार पैदा हो कि वे एक राष्ट्रीय महत्व के कार्य में, देश की योजना में भाग ले रहे हैं। इस योजना से जनता का जीवनसार ऊंचा करने का प्रयत्न किया जा रहा है। योजना की सफलता से पहले लोगों में उत्साह, भक्ति और लगन की भावना जागृत होना आवश्यक है।

भारत में ईमानदारी और निजी स्वार्थों को राष्ट्र के हित के आगे बिल्कुल गौण बना देने की आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि राष्ट्र निर्माण में दिलचस्पी रखने वाले सभी व्यक्ति चाहे वे साहूकार हों या व्यापारी या कुछ और, कर्मयोगी बन सकते हैं। यदि हर व्यक्ति अपने जीवन में कर्मयोगी बन जाए, तो वह कोई भी काम करे, उससे दुनियां का भला ही होगा।

—उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्

गुरुकुल-समाचार

ऋतु रङ्ग

कुलभूमि पर वर्षा ऋतु का साम्राज्य छाया हुआ है। सर्वत्र शान्ति, शोभा और शीतलता है। मौसम अत्यन्त सुखद और सुहावना बना हुआ है। चहुं दिश हरितवर्ण की प्रधानता प्रतीत होती है। गुरुकुल की खेतियां लहलहा उठी हैं और किसान प्रमुदित हो उठे हैं। नहर का पानी गदला हो गया है। ब्रह्मचारी गण मनोहर दिन का आमोद ठीक-ठीक मना रहे हैं। किन्तु कभी-कभी वर्षा के न होने पर भाद्रपद का उत्ताप भी अनुभव होता है। मच्छरों का उपद्रव बढ़ रहा है। प्रायः सब कुलवासी स्वस्थ एवं सानन्द हैं। श्रावणी के कारण इस मास भी दर्शकों का आवागमन पर्याप्त रहा।

मान्य अतिथि

(१) ४–८–५६ को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामान्य श्री वेंकट वराह गिरि जी गुरुकुलीय वनमहोत्सव के प्रसंग में कुल में पधारे। श्री आचार्य जी, श्री सहायक मुख्याधिष्ठाता जी तथा अन्य कुलवासियों ने अमनचौक में आप का स्वागत किया। श्रद्धानन्द अतिथि भवन तथा डाकखाने के सामने के मैदान में राष्ट्रीय छात्र सेना (एन. सी. सी.) के शस्त्रागार के समीप विशेष रूप से निर्मित एक पण्डाल में आपने शिक्षाप्रद भाषण दिया। आपने गुरुकुल के कृषि विद्यालय तथा प्रशिक्षण केन्द्र के विद्यार्थियों तथा कुलवासियों को ग्रामसेवा, सहकारिता और कृषि में होने वाले नवीन प्रयोगों से लाभ उठाने के लिए प्रेरणा दी। अपने इस संक्षिप्त भाषण के उपरान्त आपने मण्डप के सामने ही आंवले के एक पौधे का रोपण किया। आंवले का दूसरा पौधा श्रीमती गिरि के कर-कमलों द्वारा रोपित किया गया। अन्त में आप ने गुरुकुल के अनेक विभागों का अवलोकन किया। गुरुकुल के इस प्रकार के विकास से प्रसन्न होकर आपने भविष्य में कभी अधिक समय के लिए गुरुकुल में आकर उसे गहराई से समझने की इच्छा प्रकट की।

(२) पंजाब के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डा० अमोलकराम जी, एम. डी. १४–८–५६ को गुरुकुल पधारे। उनके साथ उनके प्रज्ञाचक्षु योग्यपुत्र भी थे। नेत्र ज्योति के अभाव में भी आपने अमरीका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से डाक्टर की उपाधि प्राप्त की है। इस समय उक्त विश्वविद्यालय में ही आपकी उपाध्याय के रूप में नियुक्ति हुई है। आपने गुरुकुल के समस्त विभागों का परिभ्रमण करके प्रसन्नता प्रकट की।

१५ अगस्त

भारत का १२ वां स्वाधीनता दिवस कुल में बड़े समारोह के साथ मनाया गया। प्रातः ८–३० बजे श्री आचार्य जी ने राष्ट्रीय ध्वजा का आरोहण किया। आपने इस राष्ट्रीय पर्व का एवं ध्वजा के तीनों रंगों का महत्त्व समस्त कुलवासियों को समझाया और पताका के अन्तिम चक्र के सदृश जीवन को गतिशील एवं अग्रगामी बनाने की प्रेरणा की। तत्पश्चात् आपने उत्तरप्रदेश के शिक्षामन्त्री एवं जिला निरीक्षक द्वारा प्रेषित स्वाधीनता दिवस का शुभ संदेश पढ़कर सुनाया।

अन्त में राष्ट्रगीत एवं जयकारों के साथ कार्यवाही समाप्त हुई ।

श्रावणी महापर्व

कुलवासियों ने श्रावणी और रक्षाबन्धन का पर्व प्रेमपूर्वक मनाया । प्रभात में समस्त कुलवासियों ने अमृतवाटिका में स्थित बृहद् यज्ञशाला में समवेत होकर विशेष यज्ञ करके नवीन उपवीत धारण किये । मान्य आचार्य जी ने उपाकर्म की प्राचीन परम्परा एवं यज्ञोपवीत का विस्तृत महत्त्व एवं मर्म समझाते हुए वैदिक स्वाध्याय की महिमा बताई ।

शानदार सफलता

गतवर्षों की भांति इस वर्ष भी हमारे कुछ मेधावी छात्रों ने परीक्षा में प्रशंसनीय सफलता प्राप्त की है । उन में से निम्न लिखित के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

(१) ब्र० नरेन्द्रपाल द्वितीय वर्ष ने भारतीय चिकित्सा परिषद् उत्तरप्रदेश, लखनऊ की ए. एम. बी. एस. परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया है (२) ब्र० मदनगोपाल ५म वर्ष ने भी प्रथम श्रेणी में तृतीय स्थान प्राप्त किया है । एक वर्ष के लिये इनको बोर्ड की ओर से वार्षिक २५०) रु० छात्रवृत्ति प्रदान की गई है। उक्त दोनों बन्धु प्रशंसा व साधुवाद के पात्र हैं । कुलवासी उन का अभिनन्दन करते हैं ।

गृह चिकित्सक

हमारे सुयोग्य गृह चिकित्सक डा० राजेश्वर जी आयुर्वेदालंकार ए. एम. बी. एस. के चले जाने पर रिक्त स्थान पर सुयोग्य नवस्नातक डा० मदन गोपाल ए. एम. बी. एस की नियुक्ति हुई है ।

क्रीडा मन्त्री

हमारे सुयोग्य एवं सर्वप्रिय क्रीडामन्त्री ब्र० महाव्रत ५म वर्ष के त्यागपत्र देने पर रिक्त-स्थान के लिए मान्य क्रीडाध्यक्ष डा० अनन्त-नन्द जी ने ब्र० आनन्दसिंह ४र्थ वर्ष की क्रीडा-मन्त्री के रूप में नियुक्ति की है । साथ ही उप-क्रीडा मन्त्री के स्थान पर ब्र० प्रियव्रत तृतीय वर्ष की नियुक्ति की गई है ।

नवीन उपाध्याय

आयुर्वेद महाविद्यालय में जीवाणु विज्ञान एवं विकृति विज्ञान के उपाध्याय के रूप में अनुभवी एवं सुयोग्य विद्वान् डा० प्रकाशचन्द्र जी एम. बी. बी० एस एल. आर. सी. पी. की नियुक्ति हुई है । ।

वार्षिक वृत्तान्त राष्ट्रीय छात्र सेना (एन० सी० सी०) १९५८

गुरुकुल रा. छा. से. का यह वर्ष पिछले वर्षों से अधिक महत्व का रहा । इस वर्ष सरकारी अनुदान से रा. छा. से. के भवन निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ । गुरुकुल के कैडिट्स डी. ए. वी. कालेज देहरादून की तुलना में बहुत अधिक विजयोपहार(ट्राफी)जीत कर लाये, गुरुकुल वार्षिकोत्सव पर श्री के. एल्. श्रीमाली जी (शिक्षा मन्त्री भारत सरकार) का कैडिट्स ने अभिवादन किया तथा गुरुकुल के कैडिट्स अखिल भारतीय रा. छा. से. शिविर और उत्तर प्रदेश की रा. छा. से. रैली में प्रथम वार

भाग लेकर ख्याति प्राप्त की ।

१. शिविर—इस वर्ष गुरुकुल रा० छा० से० के कैडिट्स ने तीन शिविरों (कैम्पों) और उत्तर प्रदेश की रेली में भाग लिया । प्रथम शिविर नवम्बर मास में लच्छी वाला में सैनिक शिक्षण का लगा, जिसमें डी० ए० वी० कालेज देहरादून और गुरुकुल के कैडिट्स शामिल हुए । शिविर को देखने बहुत से अतिथि गुरुकुल से भी गये । इस शिविर में पांच प्रतियोगिताएं हुई जिनमें से निम्नलिखित चार में डी० ए० वी० कालेज देहरादून के मुकाबिले में गुरुकुल के कैडिट्स जीते और विजयोपहार लाये ।

(१) शूटिंग ट्राफी (२) लाइन इन्सपेक्शन ट्राफी (३) वालीबाल ट्राफी और (४) कबड्डी ट्राफी । इसके अतिरिक्त कैडिट् दयानन्द ने अपनी कौतूहल पूर्ण शक्ति के कारनामे दिखाये और बहुत से इनाम प्राप्त किये । इन सब बातों से गुरुकुल की खूब प्रशंसा हुई । दूसरा शिविर मई मास में उत्तर प्रदेश रा० छा० से० द्वारा अल्मोड़ा में सैनिक प्रशिक्षण और समाजसेवा का लगा । इस शिविर में भी उत्तर प्रदेश के अन्य कालेजों के कैडिट्स के साथ में गुरुकुल के कैडिट्स ने अधिक से अधिक निष्काम समाज सेवा कार्य करके प्रमाण पत्र प्राप्त किये । तीसरा शिविर देहरादून में भारत की समस्त रा० छा० से० का सैनिक प्रशिक्षण के लिये लगा जिसमें तमाम भारत के कालेजों के चुने हुये कैडिट्स के साथ गुरुकुल के कैडिट्स ने भी भाग लिया । इस शिविर में भी कैडिट् दयानन्द ने अपने शक्तिशाली काम दिखाये जिससे गुरुकुल की ख्याति देश भर में फैल गई । उत्तर प्रदेश की लखनऊ रैली में भी गुरुकुल के कैडिट्स ने अच्छा प्रभाव डाला ।

२. परीक्षाएं—रा० छा० से० नियमों के अनुसार गुरुकुल के चार कैडिट्स को 'बी' सार्टिफिकेट की परीक्षा में बैठने की आज्ञा मिली और चारों ही कैडिट्स अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण हुये और प्रमाण पत्र प्राप्त किये ।

३. विशेष समारोह—इस वर्ष चार समारोह हुये । प्रथम उत्सव १५ अगस्त को स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में हुआ, जिस में राष्ट्रीय ध्वजा फहराई गई, परेड हुई और श्री आचार्य जी ने सलामी ली । दूसरा समारोह २१ अक्टूबर १९५८ को हुआ जिसमें अपार जनसमुदाय के सामने कैडिट्स ने श्री के० एल० श्रीमाली (शिक्षा मन्त्री भारत सरकार) का अभिवादन किया । प्रमाण पत्र तथा उपाधि वितरण श्री के० एल० श्रीमाली जी के करकमलों से सम्पन्न हुआ । तीसरा उत्सव २६ जनवरी १९५९ गणतन्त्र दिवस के उपलक्ष्य में हुआ जिसमें खेल-कूद प्रतियोगिता भी सम्पन्न हुई । मान्य उपकुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने अभिवादन स्वीकार करते हुये वर्तमानावस्था में सैनिक शिक्षा का महत्व बताया । इसमें दर्शकों का भी पर्याप्त मनोरंजन हुआ । पारितोषिक वितरण श्री विद्यावाचस्पति जी द्वारा सम्पन्न हुआ । पांचवां समारोह रा० छा० से० भवन की आधार शिला रखने का अप्रैल १९५९ में हुआ । जिसमें यज्ञविधि के पश्चात् मान्य उपकुलपति जी ने अपने करकमलों से

आधार शिला रखी ।

४. सरकारी अनुदान तथा भवन निर्माण— सबसे हर्ष की बात यह है कि भारत सरकार ने गुरुकुल में रा० छा० से० प्रशिक्षण की उन्नति के लिये रा० छा० से० भवन निर्माणार्थ ९०५०) रु० का अनुदान दिया और गुरुकुल ने भी भारत सरकार की शर्तों के अनुसार इतनी ही राशि लगा कर १८१००) रु० से भवन निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया । आशा है निकट भविष्य में ही भवन तैयार हो जायेगा ।

मान्य उपकुलपति जी केन्द्रीय संस्कृत मण्डल के सदस्य मनोनीत

यह हर्ष की बात है कि केन्द्रीय शासन ने भारत में संस्कृत की उन्नति तथा प्रचार की नीति निर्धारित करने तथा अनुसन्धान की व्यवस्था कराने आदि के शुभ उद्देश्य से जिस केन्द्रीय संस्कृत मण्डल की स्थापना की है गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के मान्य उपकुलपति और संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति भी उसके सदस्य मनोनीत किये गये हैं । गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने संस्कृत शिक्षा के प्रसार के लिये संस्कृत को अनिवार्य बना कर जो प्रशंसनीय कार्य किया है वह सर्व विदित है । संस्कृत व्याकरण और साहित्य की उत्तम पुस्तकों के भी निर्माण तथा संकलन की ओर भी इस विश्वविद्यालय ने प्रारम्भ से ही अत्यधिक ध्यान दिया है । मान्य पं० इन्द्र जी इस गुरुकुल के वेदालंकार और विद्यावाचस्पति होने के अतिरिक्त वेद के उपाध्याय भी रहे हैं और वे संस्कृत के कवि भी हैं । आजकल भी वे एक संस्कृत महाकाव्य की रचना कर रहे हैं । ऐसे सुयोग्य संस्कृतज्ञ को केन्द्रीय संस्कृत मण्डल का सदस्य मनोनीत करना सर्वथा उचित ही था। यह केवल मान्य उपकुलपति जी का मान नहीं अपितु गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का भी मान है जिस के वे सुयोग्य स्नातक हैं । समस्त कुलवासी मान्य उपकुलपति जी को यह मान दिये जाने पर हर्ष प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि उनका विस्तृत अनुभव मण्डल के कार्य संचालन के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा ।—ब्र. दिलीप १३

अनुदान में इतना अधिक वैषम्य क्यों ?

नई देहली का ३१ अगस्त १९५९ का समाचार है कि आज लोकसभा में श्री प्रकाशवीर शास्त्री के प्रश्न के उत्तर में शिक्षामन्त्री डा० कालूलाल श्री माली ने बताया कि पिछले १० वर्षों में दिल्ली की जामिया मिल्लिया इस्लामिया को कुल ३५७४८०६ रु. अनुदान के रूप में दिये जा चुके हैं । इन १० वर्षों में गुरुकुल कांगड़ी को ७३०००० रु. और वनस्थली विद्यापीठ को ५२२१४० रु. दिये गये ।

सम्पादकीय

पुनर्जन्म का एक अन्य अति स्पष्ट प्रमाण

'गुरुकुल पत्रिका' के गत आषाढ़ अङ्क में हम ने बरेली के मुस्लिम परिवार में उत्पन्न एक बालक के पूर्वजन्म की स्मृति के वृत्तान्त को उद्धृत किया था। इस मास के पत्रों में छतर प्रदेश (मध्यप्रदेश) की एक १० वर्षीया स्वर्णलता नाम्नी बालिका के पूर्वजन्म की स्मृति का अद्भुत वृत्तान्त प्रकाशित हुआ है जिसे हम पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित करते हैं। ऐसे उदाहरणों से पुनर्जन्म विषयक वैदिक सिद्धान्त का प्रबल समर्थन होता है इसमें सन्देह नहीं हो सकता।

यह वृत्तान्त 'वीर अर्जुन' आदि के १३ अगस्त के अङ्क में इस रूप में प्रकाशित हुआ है—छतरपुर की दसवर्षीया बालिका स्वर्णलता ने इस क्षेत्र में सबको आश्चर्य में डाल रखा है। उसे अपने जन्म की सारी गाथा भली-भांति स्मरण है। स्वर्णलता इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स श्री मनोहरलाल जी मिश्र की लड़की है। वे लगभग ६ वर्ष पूर्व एक दिन जबलपुर जाते हुये कटनी में कुछ घण्टे रुके। वहां वे एक चाय के स्टाल पर गये। स्वर्णलता जो तब ४ वर्ष की थी उन के साथ थी। लड़की बोल उठी मेरे पिता का घर यही है। आइये हम चाय पीने वहां चलें। श्री मिश्र आश्चर्य में पड़ गये कि यह मामला क्या है ? उन्होंने डाक्टरों से परामर्श किया कि कहीं लड़की के मस्तिष्क में कुछ विकार तो नहीं हो गया। बाद में सागर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री डी. बी. मिश्र और सेठ सोहन लाल मनोविज्ञान संस्थान गङ्गापुर के निर्देशक श्री एच्. एन्. बैनर्जी ने इस बात की जांच की और वे इस बात से चकित रहे कि लड़की जो कुछ बताती है, वह सब ठीक ही है। लड़की ने बताया कि उसके पिता का नाम पाठक है। उसने घर का पता भी बताया। इस पर कटनी में पाठक परिवार के एक वरिष्ठ सदस्य श्री हरिप्रसाद पाठक लड़की से मिलने छतरपुर आये और जब लड़की ने उन्हें पहचान लिया तो सबको विश्वास हो गया कि लड़की को पूर्वजन्म का हाल ज्ञात है। श्री हरिप्रसाद पूर्वजन्म में उसके छोटे भाई थे और स्वर्णलता की मृत्यु सन् १६३६ में हुई थी। फिर लड़की को कटनी ले जाया गया जहाँ उसने अपना पिछला घर पहचान लिया। परिवार के सब सदस्य उससे मिले। उसने सब भाइयों को पहचान लिया और उन्हें अपने बचपन के नामों से पुकारा। उनके वास्तविक नाम उसे याद न थे। वह सबसे बड़ी थी। बाद में ६२ वर्षीय श्री चिन्तामणि जी पाण्डे जो लड़की के पिछले जन्म में पति थे, आ गये। पूछने पर कि वे कौन हैं लड़की शरमा गई और बोली ये वही हैं जिन्हें मैंने कटनी और मेहार में (जहां उसका ससुराल था) देखा था। पिछले जन्म के उसके लड़के ने अपना नाम ग़लत बताया जिस पर उसने कहा—तुम अपनी माता को ग़लत नाम बता रहे हो।

लड़की को अपने एक अन्य जन्म का भी हाल विदित है। तब वह सिलिट (असम) में जन्मी थी। उसने वहां के कुछ लोगों के नाम भी बताये। जब वह पांच वर्ष की ही थी उसने

एक ऐसा गाना गाया जिसे वह स्वयं भी न जानती थी। श्री हरिप्रसाद पाठक उसे अब अपनी बहिन मानते हैं और वह उन्हें राखी बांधने कटनी जा रही है।

(वीर अर्जुन नई देहली १३—८—५९)

पुनर्जन्म के आर्य सिद्धान्त की सत्यता में ऐसे उदाहरणों को देख कर अणुमात्र भी संदेह नहीं रह सकता।

केन्द्रीय संस्कृत मण्डल की स्थापना का प्रशंसनीय निश्चय

हमें यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि भारत सरकार ने उच्चतम न्यायालय के सेवा-निवृत्त प्रधान न्यायाधिपति श्री पतंजलि शास्त्री जी की अध्यक्षता में संस्कृत भाषा की उन्नति और प्रचार के लिये ९ सदस्यों का एक केन्द्रीय संस्कृत मंडल स्थापित किया है। इन सदस्यों में महामहोपाध्याय डा. पी. वी. काणे, (बम्बई सदस्य राज्यसभा) डा. वी. राघवन्, (संस्कृत विभागाध्यक्ष मद्रास विश्वविद्यालय) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के सुयोग्य उपकुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री आदित्यनाथ झा, अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन के प्रधान मन्त्री पं. केदारनाथ जी शर्मा सारस्वत (देहली) आदि सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ विद्वान् सम्मिलित हैं। मण्डल का कार्य १ अगस्त १९५९ से प्रारम्भ हो गया है और इसके अध्यक्ष तथा सदस्यों की कार्यावधि ३ वर्ष की होगी। सरकार ने संस्कृत आयोग की अनुशंसा (सिफारिश) के आधार पर उक्त मण्डल स्थापित किया है और वह देश में संस्कृत की उन्नति तथा प्रचार के लिये नीति निर्धारित करेगा, संस्कृत के पाठ्यक्रम, परीक्षा, उपाधियां, शिक्षकों के प्रशिक्षण आदि का ढांचा बनाएगा, अनुसन्धान की व्यवस्था, संस्कृत की पाठ्य पुस्तकें तैयार कराना और संस्कृत के विद्वानों को पुरस्कार देने की व्यवस्था आदि कराएगा। हम इस मण्डल का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि इसके द्वारा संस्कृत के प्रचार और प्रसार को अति विशेष प्रोत्साहन मिलेगा जिसका स्वराज्य प्राप्ति के अनन्तर भी अब तक अभाव सा रहा है जैसे कि हमने गत अङ्क की एक सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा था 'संस्कृत भाषा न केवल भारत की सब भाषाओं की जननी है अपितु मानव संस्कृति का मूल आधार है। इसके अध्ययन-अध्यापन को विशेष रूप से प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। इसके पठन-पाठन क्रम को भी इस प्रकार परिवर्तन करने की आवश्यकता है जिस से संस्कृत विषयक लोगों की विभीषिका दूर होकर इसके अध्ययन में सब प्रेम से प्रवृत्त हों क्योंकि इसके बिना मनुष्य को सच्चे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।' सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा ने इस वर्ष श्रावणी पर्व (१८ अगस्त) पर संस्कृत दिवस मनाने और संस्कृत के प्रसार की ओर समस्त आर्यों का ध्यान आकर्षित करके एक अभिनन्दनीय कार्य किया है। खेद है कि अभी तक आर्य नर-नारियों का भी संस्कृत अध्ययन-अध्यापन की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं है यद्यपि महर्षि दयानन्द जी ने आर्य समाज के

उपनियमों में संस्कृत के अभ्यास को प्रत्येक आर्य का कर्तव्य बताया था ।

शिक्षणालयों में धार्मिक शिक्षा विषयक समिति का निश्चय

हम गुरुकुल पत्रिका के अनेक सम्पादकीय स्तम्भों में जनता तथा शासनाधिकारियों का ध्यान शिक्षणालयों में धर्मशिक्षा की आवश्यकता की ओर आकर्षित करते रहे हैं । यह प्रसन्नता की बात है कि शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक और नैतिक शिक्षा देने के प्रश्न पर विचार करने के लिये भारत सरकार ने चार सदस्यों की समिति नियुक्त करने का निश्चय किया है । बम्बई के राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश जी इस समिति के अध्यक्ष होंगे । यह निर्णय शिक्षा के केन्द्रीय सलाहकार मण्डल की सिफारिश पर किया गया । मण्डल ने मद्रास में आयोजित अपनी पिछली बैठक में धार्मिक और नैतिक शिक्षा के महत्त्व को देखते हुए यह सिफारिश की थी । अध्यक्ष श्री श्रीप्रकाश जी के अतिरिक्त समिति के सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं—जम्मू कश्मीर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री ए. ए. फैज़ी, राजस्थान विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री जी. सी. चैटर्जी और शिक्षा मन्त्रालय के संयुक्त सचिव श्री पी. एन. कृपाल ।

धर्मशिक्षा के अभाव में युवक-युवतियों का जो नैतिक पतन हो रहा है, जिसके अनेक उदाहरण हम पत्रिका के सम्पादकीय स्तम्भों में जनता के सम्मुख सखेद रखते रहे हैं हम आशा करते हैं कि उपर्युक्त समिति इसकी आवश्यकता को गम्भीरता से अनुभव करेगी और ऐसी व्यवस्था करेगी जिससे प्रत्येक विद्यालय और महाविद्यालय में सार्वभौम युक्तियुक्त उदार धर्म की शिक्षा का प्रबन्ध हो । इसके बिना छात्र-छात्राओं के सच्चरित्र निर्माण में सहायता नहीं मिल सकती ।

अभी इस टिप्पणी को लिखने के अनन्तर जब १६ अगस्त के 'नवभारत टाइम्स' के साप्ताहिक संस्करण को देखने का हमें अवसर प्राप्त हुआ तो उसमें बदायूं के छात्रों की बढ़ती हुई गुण्डागिरी के विषय में निम्न दुःखजनक समाचार पढ़ने को मिला ।

बदायूँ में लड़कियों से छेड़छाड़ की घटनायें

'कुछ समय से नगर में छात्रों की बढ़ती हुई गुण्डागर्दी को देख कर नगर के निवासियों में घृणा एवं असन्तोष बढ़ता जा रहा है । बताया गया है कि कई मारपीट की घटनाओं के साथ-साथ हाल ही में दो लड़कों ने सैयद बाड़े की गली में एक स्त्री से अकेली जाते हुए छेड़ छाड़ की । इसी प्रकार नगर के एक शिक्षित परिवार की लड़की से १० वीं श्रेणी के एक लड़के ने छेड़छाड़ की । लड़की के शोर मचाने पर लड़का घबरा कर साइकल लेकर भाग गया तथा अपनी पाठ्यपुस्तकों को भी वहीं छोड़ गया । इस घटना से नगर में बड़ी बेचैनी है ।'

—(नवभारत टाइम्स १६—८—५९) ।

धार्मिक और नैतिक शिक्षा के अभाव के कारण विद्यार्थियों में ब्रह्मचर्य विरुद्ध ऐसी उद्धत प्रवृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं अन्यथा वे सब देवियों को अपनी बहिन अथवा माता

के रूप में देखते और यति लक्ष्मण के उदाहरण को अपने सामने रखते जिस ने १४ वर्ष दिन-रात सीता देवी जी के पास रहते हुए भी कभी उन के मुख की ओर आंखें उठा कर भी नहीं देखा।

एक वयोवृद्ध आर्यविद्वान् का उचित सम्मान

हमें यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि भारत सरकार ने गतवर्ष में प्रचलित की हुई उत्तम परम्परा के अनुसार इस वर्ष जिन संस्कृत के विद्वानों को प्रमाणपत्र, सरोपा और आजीवन १५००) वार्षिक गौरव वृत्ति दे कर सम्मानित किया है उन में 'वैदिकधर्म' के सम्पादक स्वाध्याय मण्डल किला पारडी. ज़िला सूरत के अध्यक्ष, वेद-विषयक पचासों पुस्तकों के लेखक श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी भी हैं जिन की आयु इस समय लगभग ९२ वर्ष की है। वे अब भी दिन रात भाषणों और लेखों द्वारा आर्य संस्कृति, आर्य धर्म तथा संस्कृत भाषा के प्रचार में तत्पर हैं। संस्कृत स्वयं शिक्षक, ३ भाग, संस्कृत पाठशाला (२४ भाग) तथा अन्य सरल पुस्तकों के निर्माण द्वारा जहां उन्हों ने संस्कृत के प्रचार का प्रशंसनीय प्रयत्न किया वहां गत कुछ वर्षों से स्वाध्याय मण्डल की ओर से अखिल भारतीय संस्कृत भाषा परीक्षा समिति की स्थापना करके वे साहित्य प्रवीण, साहित्य रत्न और साहित्याचार्य इन परीक्षाओं का सफल संचालन कर रहे हैं। इस समिति के साथ हमारा भी परीक्षक के रूप में गत वर्ष से सम्बन्ध रहा है। हम मान्य आर्य विद्वान् श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी का भारत सरकार की ओर से इस सर्वथा उचित मान पर हार्दिक अभि. नन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि वे अपने दृढ़ संकल्पानुसार कम से कम १२० वर्ष की आयु प्राप्त करके समाज और राष्ट्र की सक्रिय सेवा करने में सदा तत्पर रहेंगे। राष्ट्रपति जी द्वारा यह सम्मान उन विद्वानों को दिया जाता है जो प्राच्य विद्या और भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त करते और प्रशंसनीय कार्य करते हैं।

मान्य प्रधान मन्त्री जी का एक आक्षेपणीय वक्तव्य

'गुरुकुल पत्रिका' के ज्येष्ठ मास के अङ्क में एक सम्पादकीय टिप्पणी में हमने लिखा था कि 'श्री फ्रैङ्क ऐन्थनी आदि के इस प्रस्ताव को हम नितान्त उपहासास्पद और निन्दनीय समझते हैं जिस के द्वारा वे अंग्रेजी को भी १५वीं भारतीय भाषा के रूप में स्वीकार कराना चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि जब ऐसा असङ्गत प्रस्ताव लोक सभा में प्रस्तुत होगा तो उसे सर्वथा अस्वीकृत कर दिया जाएगा।

यह हर्ष की बात है कि ७ अगस्त को जब श्री ऐन्थनी ने इस प्रस्ताव को लोक सभा में प्रस्तुत किया तो उस का इतना प्रबल विरोध अनेक मान्य सदस्यों ने किया कि उन्हें उस प्रस्ताव को लौटाने को बाधित होना पड़ा। हमारे मान्य प्रधान मन्त्री जी ने भी श्री ऐन्थनी के इस प्रस्ताव को बुद्धिमत्ताशून्य बताते हुए उसे लौटाने की प्रेरणा की और यह कहा कि व्यावहारिक कारणों से भारतीय

संविधान में हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया था । अंग्रेजी स्कूलों और कालेजों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी न होनी चाहिए। यहाँ तक तो उनकी बात ठीक व प्रशंसनीय थी किंतु जब उन्होंने उसी प्रसङ्ग में संभवतः भावावेश में यह कहा (यदि समाचार पत्रों की रिपोर्ट ठीक है) कि अनिश्चित काल के लिए मैं यह नहीं कह सकता कि कब तक अंग्रेजी भी एक अतिरिक्त राजभाषा रहनी चाहिए जिस से अहिन्दी भाषा भाषी क्षेत्रों के लोग यह न अनुभव करें कि उन के लिए कुछ द्वार बन्द हैं। मैं जब तक लोग चाहें तब तक अंग्रेजी को वैकल्पिक भाषा के रूप में रखूंगा। इस विषय में निर्णय का अधिकार मैं हिन्दी भाषा भाषियों को नहीं अपितु अहिन्दी भाषा भाषियों को दूंगा। (ट्रिब्यून ८-८-५६ की रिपोर्ट से अनूदित अंश)।

हम माननीय प्रधानमन्त्री जी के इस वक्तव्य से सर्वथा सहमत हैं और उसे भावावेश में दिया हुआ समझते हैं जो राष्ट्रीय हित की दृष्टि के प्रतिकूल है । इस प्रकार अंग्रेजी जैसी विदेशी भाषा को अतिरिक्त अथवा वैकल्पिक भाषा अनिश्चित काल तक रखने से राष्ट्रभाषा हिन्दी की उन्नति कैसे हो सकेगी। प्रतीत होता है कि माननीय प्रधानमन्त्री जी ने इस पर गम्भीरता से विचार नहीं किया । अहिन्दी भाषा भाषी क्षेत्रों के निवासियों का ध्यान रखना उचित है किन्तु यदि वे सच्चे देशभक्त हैं तो क्या वे इस राष्ट्रभाषा को सीखना अपना कर्तव्य न समझेंगे ? यदि लोग विशेषतः दक्षिण भारत निवासी अंग्रेजी जैसी सर्वथा विदेशी भाषा में असाधारण प्रवीणता प्राप्त कर सकते हैं तो उन की अपनी भाषाओं के समान ही संस्कृत निष्ठ हिन्दी का साधारण ज्ञान प्राप्त करना क्या उन के लिए असम्भव है ? कभी नहीं, पर मान्य प्रधानमन्त्री जी के ऐसे भाषणों से हमें आशङ्का है वे राजभाषा हिन्दी को सीखना अपना कर्तव्य न समझेंगे। इसलिए मान्य नेहरू जी के इस वक्तव्य की आलोचना करते हुए कि 'अंग्रेजी भारत में अनिश्चित काल के लिए अतिरिक्त भाषा के रूप में जारी रहनी चाहिए।' इलाहाबाद के समाजवादी दल आदि ने जो प्रस्ताव स्वीकृत किया है हम उस से सहमत हैं कि 'कल्पना की किसी भी उड़ान से अंग्रेजी किसी बंगाली, मद्रासी, गुजराती और पंजाबी की भाषा नहीं बन सकती । अंग्रेजी को जारी रखना हमारे करोड़ों देशवासियों का न केवल अपमान है वरन् उस राष्ट्र के आत्मसम्मान को भी चुनौती है जो अंग्रेजी शासकों को इस भूमि से हटाने में सफल हो गया।'

— हिन्दुस्तान, १२-८-५६।

हम माननीय प्रधानमन्त्री जी से सानुरोध निवेदन करते हैं कि वे भावावेश में भी कभी ऐसी बात न कहा करें जिस से भारत राष्ट्र के आत्मसम्मान को धक्का लगे और जो भाषा द्वारा राष्ट्रीय एकता की स्थापना में बाधक सिद्ध हो। आशा है कि माननीय प्रधानमन्त्री जी इस ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे।

आचार्य विनोबा जी वर्तमान शिक्षा-पद्धति से नितान्त असन्तुष्ट

भूदान आन्दोलन के नेता आचार्य विनोबा भावे जी ने 'भूदान' पत्र में एक लेख द्वारा भारत में प्रचलित शिक्षा-पद्धति को अत्यन्त दूषित बतलाते हुए लिखा है कि विद्यार्थी काल में भी मैं उस समय प्रचलित शिक्षा-पद्धति से नितान्त असन्तुष्ट था। मेरे विद्यार्थीकाल से अब तक ४०, ५० वर्ष बीत चुके हैं किन्तु लगभग वही दूषित शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है। केवल अन्तर यही है कि अब शिक्षा पूर्वापेक्षया भी अधिक अक्षम हो गई है तथा शिक्षा का स्तर अधिक गिर गया है।

इस शिक्षा का एक बड़ा दोष यह है कि इस में औद्योगिक शिक्षा के लिये कोई स्थान नहीं। इस के परिणाम स्वरूप शिक्षित लोगों में बेकारी की वृद्धि हुई है। दूसरा बड़ा दोष इस शिक्षा पद्धति का यह है कि जिन अध्यापकों पर बच्चों को शिक्षित करने की उत्तरदायिता डाली जाती है प्रायः उन का अपना ज्ञान ही बहुत कम होता है और उन का चरित्र भी निर्बल होता है। एक सुझाव यह दिया जाता है कि एक अध्यापक वाले विद्यालयों की योजना बनाई जाए जिस के अनुसार एक ही अध्यापक चार कक्षाओं को पढ़ाए। मैं इस योजना को एक प्रवंचना या धोखे की टट्टी समझता हूं। इस प्रकार की कपटपूर्ण योजना को प्रचलित करने की अपेक्षा ग्रामवासियों को अशिक्षित रखना ही अधिक अच्छा है। आगे उन्होंने लिखा कि ऐसी योजना की व्याख्या केवल यही हो सकती है कि सरकार यह दिखाना चाहती है कि वह ग्रामवासियों के लिये कुछ कर रही है नहीं तो उसे भय है कि ग्रामीण जनता और शोर मचाएगी। लेख के अन्तिम भाग में उन्होंने यह विचार प्रकट किया कि यदि मातृ भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए और अंग्रेज़ी पर बल न दिया जाए तो विद्यार्थी थोड़े ही समय में अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

श्रीनगर में ६ अगस्त को भाषण देते हुए आचार्य विनोबा जी ने कहा कि 'स्वतन्त्र भारत में अंग्रेज़ी का स्तर गिरना स्वाभाविक और अवश्यंभावी समझा जाना चाहिये।' उन्हों ने कहा 'मैं यह नहीं समझ पाया हूं कि बच्चों पर अंग्रेज़ी क्यों थोपी जाती है ? अब समय आ गया है जब कि देश को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा पद्धति को पुनः संगठित करना चाहिये। वर्तमान शिक्षा-पद्धति से सफेद-पोश स्नातक निकलते हैं जो देश का उत्पादन बढ़ाने में सहायता नहीं देते इत्यादि।' हम आचार्य विनोबा जी के इन विचारों से सहमत हैं और समस्त नेताओं तथा शासनाधिकारियों का ध्यान शिक्षा विषयक इन तथा अन्य आवश्यक सुधारों की ओर आकृष्ट करना अपना कर्तव्य समझते हैं। ब्रह्मचर्य और चरित्रनिर्माण को शिक्षा का आधार बना कर ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये जो विद्यार्थियों को धार्मिक, पूर्ण सदाचारी, स्वावलम्बी और देशभक्त बना सके। प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के मौलिक तत्त्वों को अपनाने से ही सब का कल्याण हो सकता है। —धर्मदेव विद्यामार्तण्ड १७-८-५९

स्वाध्याय के लिये चुनी हुई पुस्तकें

वेद का राष्ट्रीय गीत

श्री पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति

इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने अथर्ववेद के प्रसिद्ध सूक्त की एक एक ऋचा का अन्वय पूर्वक अर्थ किया है। मूल सूक्त की भव्य कविता वाचक को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। इसमें मातृभूमि की गुण गरिमा का गान किया गया है जिसे पढ़ कर मातृभूमि के प्रति श्रद्धा से नत हो जाना पड़ता है। पुस्तक सभी प्रकार से संग्रह करनी चाहिये।

मूल्य केवल पांच रुपये, डाक व्यय अलग।

ईशोपनिषद् भाष्य

श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत पुस्तक में लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् लेखक ने 'ईशोपनिषद्' का बहुत सुन्दर हिन्दी भाष्य लिखा है। इसमें आधुनिक युग के अनुसार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। इस भाष्य का मनन करने से वैयक्तिक, सामाजिक तथा जागतिक तीनों प्रकार की शान्ति सुलभ हो सकती है। ज्ञान पिपासुओं के लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है।

मूल्य केवल दो रुपये, डाक व्यय अलग।

हमारा चुना हुआ साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ईशोपनिषद् भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२.००
वेद का राष्ट्रीय गीत	श्री प्रियव्रत	५.००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	,,	५.००
वरुण की नौका, २ भाग	,,	६.००
वैदिक विनय ३ भाग, श्री अभय	हर एक	२.००
वैदिक सूक्तियां	श्री रामनाथ	१.७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त	१.५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२.००
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२.००
ब्राह्मण की गौ	,,	.७५
वेदगीतांजलि	श्री वेदव्रत	२.००
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, ३ भाग		३.७५
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२.००
वैदिक पशुयज्ञमीमांसा	श्री विश्वनाथ	१.००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१.२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२.००
लहसुन : प्याज़	श्री रामेश बेदी	२.५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	,,	३.००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	,,	३.२५
वेदों का यथार्थ स्वरूप	श्री धर्मदेव वि० मा०	६.५०
वैदिक कर्तव्य शास्त्र	,,	१.५०

पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाइये। धार्मिक संस्थाओं के लिये विशेष रियायत का भी नियम है।

पुस्तक भण्डार, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (ज़ि० सहारनपुर)।

मुद्रक : रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक : धर्मपाल विद्यालंकार, स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

सम्पादक : श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

गुरुकुल पत्रिका

श्री स्नातक दीनदयालु जी शास्त्री का गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी में स्वागत

सम्पादक — श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष ११ श्रावण २०१६ अङ्क १२

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।

गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क १३२

जुलाई १९५९

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय हरिद्वार

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

शान्ति की शक्ति — श्री अरविन्द जी

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

वर्ष ११
अंक १२

श्रावण
२०१६

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

वेदामृत गीत

ओं यो भूतं च भव्यं च, सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व. १०. ८. १ ।

शब्दार्थ—

(यः) जो (भूतम्) अतीत काल (च) और (भव्यम्) भविष्यत् काल का (अधितिष्ठति) स्वामी है (यश्च) और जो (सर्वम् अधितिष्ठति) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का अधिष्ठाता है (यस्य च स्वः) और जिसका आनन्द (केवलम्) विशुद्ध अर्थात् सर्वथा दुःखरहित है (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस सर्वतो महान् ब्रह्म को नमस्कार है ।

ब्रह्म को नमस्कार

भूत भविष्यत् वर्तमान का,
जो प्रभु है अन्तर्यामी ।
विश्वव्योम है व्याप्त हो रहा
जो त्रिकाल का है स्वामी ।

निर्विकार आनन्दकन्द है
जो कैवल्य रूप सुखधाम ।
उस महान् जगदीश्वर को है
अर्पित मेरा नम्र प्रणाम ।।

—श्री सत्यकाम विद्यालंकार ।

राष्ट्रीय चेतना का क्रम-विकास

श्री पं० सत्यदेव जी विद्यालङ्कार, नई देहली

हमारी वर्तमान स्वतन्त्रता जिस राष्ट्रीय चेतना का शुभ परिणाम है, उसका उद्भव प्रत्यक्ष रूप में न होकर अप्रत्यक्ष रूप में हुआ है। सामाजिक चेतना के गर्भ में से यह राष्ट्रीय चेतना प्रस्फुटित हुई है। जब इस राष्ट्रीय चेतना से पनपने के लिए बाहरी साधन और प्रत्यक्ष मार्ग प्रायः लुप्त हो गये थे, तब सामाजिक चेतना माध्यम से अन्तर्मुखी होकर पनपने का मार्ग उसने स्वतः ही बना लिया। १८ वीं सदी के अन्तिम दिनों में हैदरअली और टीपू-सुल्तान की सत्ता को समाप्त करने और १८०६ ई० के बैलूर विद्रोह का दमन करने के बाद दक्षिण में अंग्रेजों ने अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया था। सन् १७५७ की प्लासी की लड़ाई में विजयी होने के बाद बंगाल में भी उनके पैर दृढ़ता के साथ जम गये। सन् १८१८ की किरकी लड़ाई में मराठा साम्राज्य का अन्त करके दक्षिण में उन्होंने अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना लिया था। उत्तरी भारत में सन् १८५७ की महान् राज्य-क्रांति की विफलता के परिणाम स्वरूप वे सारे भारत के एकच्छत्र स्वामी बन गये और समस्त भारत में राष्ट्रीयता का गला घोंट दिया गया। इस घोर निराशापूर्ण स्थिति में जो सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई, उसको मुख्यतः ब्राह्म-समाज, सत्यशोधक समाज, व प्रार्थना समाज और आर्य समाज के नाम से व्यक्त किया जा सकता है। वैसे तो इनके आस-पास अन्य अनेक सामाजिक संस्थाओं का भी जन्म हुआ, परन्तु उनमें इनका मुख्य स्थान है। ऐतिहासिक घटनाक्रम की दृष्टि से प्लासी (१७५७) की पराजय की प्रतिक्रिया ब्राह्म-समाज (स्थापना १८२८), किरकी (१८१८) के पराजय की प्रतिक्रिया सत्यशोधक समाज (स्थापना १८७२), बाद में प्रार्थना समाज और १८५७ की घोर पराजय की प्रतिक्रिया आर्यसमाज (स्थापना १८७५) को कहा जा सकता है। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इन सब में आर्य समाज का रूप कहीं अधिक उग्र था। वैसा होना स्वाभाविक भी था; क्योंकि १८५७ ई० की पराजय भी कुछ कम भयानक नहीं थी। इस सामाजिक चेतना के इतिहास के विस्तार में न जा कर केवल इतना ही कहना पर्याप्त होना चाहिये कि यह चेतना घोर निराशा पूर्ण स्थिति में आशा की किरण के रूप में प्रकट हुई। उसी का यह परिणाम है कि हमारा देश ईसाई पादरियों और कूटनीतिज्ञ अंग्रेज राजनीतिज्ञों के भीषण षड्यन्त्र के मायाजाल से बाल-बाल बच गया, जिसका लक्ष्य हमारे देश को भी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, इंडोनेशिया आदि के समान पश्चिमी साम्राज्यवादियों का केवल एक उपनिवेश बना देना था। यदि कहीं उनके मनोरथ सफल होते तो हमारे देश का धर्म, संस्कृति, साहित्य, इतिहास, भाषा, कला तथा विज्ञान आदि का सर्वथा अन्त हो गया होता और हमारे महान् राष्ट्र को भी गडरियों और जंगलियों का असभ्य व अशिक्षित

देश बना दिया गया होता। इस सामाजिक चेतना ने स्वामी दयानन्द और विवेकानन्द सरीखों को जन्म दिया, जिन्होंने ईसाई पादरियों और अंग्रेजी राजनीतिज्ञों को सीधी चुनौती दी। उसका वे कुछ उत्तर नहीं दे सके और उनके मनोरथों का ऊंचा महल ताश के पत्तों के घर की तरह एकाएक बिखर गया। स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द सरीखों की इस महान् राष्ट्रीय देन से कभी भी इन्कार नहीं किया जा सकता। उन्होंने भारतीयों में उस स्वाभिमान तथा स्वदेशाभिमान को पुनर्जीवित किया, जिसका अन्त करके भारतीयों को सर्वथा दीन-हीन एवं पराधीन स्थिति में डाल देने का देशव्यापी संगठित प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया गया था। यह था हमारी राष्ट्रीय भावना के जागृत होने का पहला उपक्रम।

कांग्रेस का प्रारम्भ

सन् १८८५ में कांग्रेस अथवा राष्ट्रीय महासभा का शुभारम्भ जिन महापुरुषों ने किया था, उनकी देश-भक्ति में संदेह करने का कोई कारण नहीं है। परन्तु उनमें ऐसे लोग भी कुछ कम नहीं थ, जो अंग्रेजी राज्य के प्रति भारतीयों में पैदा होने वाले रोष व असन्तोष को कुछ उग्र रूप धारण न करने देकर कांग्रेस से इङ्गलैण्ड और भारत को जोड़ने वाले पुल का काम लेना चाहते थे। उनमें देशभक्ति की अपेक्षा राजभक्ति की भावना अधिक प्रबल थी। वे भारत के लिये अंग्रेजी राज्य को ईश्वर की देन मानते थे और किसी प्रकार इस देश में अंग्रेजी राज्य बने रहने की हार्दिक कामनाएं किया करते थे। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में पहला प्रस्ताव गवर्नर की उपस्थिति में राजभक्ति का स्वीकृत किया जाता था। उस पर कांग्रेस के श्रेष्ठतम नेता तथा वक्ता बड़ी लच्छेदार भाषा में भाषण दिया करते थे। उन्हीं दिनों में "जगदीश्वरोवा लन्दनेश्वरो वा" शब्द कांग्रेस के मञ्च पर से प्रतिध्वनित हुआ करते थे।

पहला विद्रोह

इस घोर राजभक्तिपूर्ण स्थिति के विरुद्ध पहला खुला विद्रोह सन् १९०६ में कलकत्ता में और १९०७ ई० में सूरत में हुआ। इस विद्रोह को वाणी प्रदान की थी देश के भीष्मपितामह दादाभाई नौरोजी ने जिन्होंने १९०६ को कलकत्ता कांग्रेस में अध्यक्ष पद से दिये गये अपने भाषण में पहली वार अपने देश के लिए स्वराज्य की मांग की थी। लोकमान्य तिलक ने इस विद्रोह को प्रकट रूप दिया, जब कि उन्होंने उसी कांग्रेस में राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी, बहिष्कार और स्वराज्य का चतुर्मुखी कार्यक्रम उपस्थित करके स्वदेशवासियों से स्वावलम्बन के मार्ग को अपनाने की अपील की थी। इसी कारण राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से उनको 'नये युग का मसीहा' कहा गया है। निस्सन्देह वे उग्र दल के अगुआ थे और सूरत में उन्हीं के नेतृत्व में उग्र दल ने कांग्रेस को राज-भक्ति से सर्वथा मुक्त करने के लिये हथियाने का प्रयत्न किया था। सूरत का वह अधिवेशन बीच में ही भंग हो गया। उग्रदलीय नेता जेलों में ठूंस दिये गये और कांग्रेस नर्म दल के हाथों में बनी

रही। फिर भी राजनीतिक क्षेत्र में बाल पाल लाल' के नाम से उग्र राष्ट्रीयता की दिव्य किरणें चारों ओर फैल गईं। कांग्रेस के जीवन में उत्कृष्ट राष्ट्रीय दृष्टिकोण से यह पहली हलचल पैदा हुई थी। श्री विपिनचन्द्रपाल ब्राह्मसमाज के रूप में बंगाल में, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय, उत्तर भारत में आर्यसमाज के रूप में और लोकमान्य बालगंगाधर तिलक महाराष्ट्र में सत्य शोधक समाज तथा प्रार्थना समाज के रूप में पैदा हुए, सामाजिक चेतना की देन थे। उन सरीखे महापुरुषों को ही उस सामाजिक चेतना को राष्ट्रीय चेतना में परिणत करने का श्रेय प्राप्त है।

क्रान्तिकारी लहर

इस प्रसंग में पूना में प्लेग के दिनों में गोवे अधिकारियों द्वारा की गई ज्यादतियों की प्रतिक्रिया के रूप में और बंगाल में समस्त जनता के विरोध पर भी किये गये बंग-भंग की प्रतिक्रिया के रूप में जिस आतंकवादी क्रान्तिकारी राजनीति का सूत्रपात हुआ, उसका उल्लेख करना भी आवश्यक है। चापेकर बन्धुओं और खुदीराम बोस के नाम इस दृष्टि से अमर हो गये हैं। सन् १९०७ में १८५७ की क्रान्ति की जो अर्ध शताब्दी मनाई गई, उससे इन क्रांतिकारी प्रवृत्तियों को विशेष प्रेरणा मिली। १८५७ की राज्य-क्रान्ति के विफल होने के बाद दमन व आतंक की जिस दुर्नीति से काम लिया गया, उसका पता इतने से ही लग जाता है कि उसके महान् स्वरूप को देशवासी प्रायः बिल्कुल ही भूल गये थे। उसके बाद सामाजिक चेतना को उद्दीप्त करने वाले महापुरुषों में किसी के भी किसी लेख, भाषण अथवा ग्रन्थ में उसका उल्लेख नहीं मिलता। उस महान् ऐतिहासिक घटना को जीवित करने का श्रेय है स्वातन्त्र्य वीर सावरकर जी को जिन्होंने अपने को जोखिम में डाल कर भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के नाम से अंग्रेजी में उसका विवरण उपस्थित किया था और उसका अभिनव भारत समाज की ओर से उसकी अर्द्ध शताब्दी मनाने का उपक्रम किया था। कांग्रेस के समानान्तर इसका प्रवाह भी निरन्तर फौज के रूप में जो महान् अनुष्ठान किया, उसका उल्लेख हमारे देश की राष्ट्रीय चेतना के विकास के इतिहास में सदा ही स्वर्णाक्षरों में किया जायेगा। आतंकवाद के लम्बे इतिहास की ओर यहां केवल इस प्रकार संकेत ही किया जा सकता है।

स्वराज्य के महामंत्र की दीक्षा

कांग्रेस की दृष्टि से १९०७ के बाद १९१६ का उल्लेख किया जाना चाहिए। तब लखनऊ में एक बार फिर नरम दल के साथ उग्र दल कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुआ और सहसा ही लोकमान्य का अप्रतिम व्यक्तित्व एवं प्रभाव सारी कांग्रेस पर छा गया। यद्यपि महाराष्ट्र में तिलक-युग का सूत्रपात १९ वीं सदी के अन्तिम वर्षों में हो गया था और देश के राष्ट्रीय जीवन पर भी उनके व्यक्तित्व की छाप १९०६ ई० में ही लग गई थी, फिर भी कांग्रेस के मंच पर वे एकच्छत्र राष्ट्रीय नेता के रूप में लखनऊ में प्रकट हुए। वहां उन्होंने स्वराज्य के

महामन्त्र की दीक्षा में समस्त देशवासियों को दीक्षित करके अद्भुत राष्ट्रीय चेतना का संचार किया था। उसके बाद १९२० तक देश के राजनीतिक गगनमण्डल में वे सूर्य की तरह अप्रतिम तेज के साथ चमकते रहे। होमरूल के देशव्यापी आंदोलन द्वारा उन्होंने देश को राजद्रोह के किनारे पर पहुंचा दिया था। पहले महायुद्ध में उन्होंने जिस प्रतियोगी सहयोग की नीति को अपनाया वह भी राष्ट्रीय चेतना को प्रबल बनाने में बड़ी सहायक सिद्ध हुई। महायुद्ध में अंग्रेजों का साथ न देने अथवा सशर्त साथ देने की नीति का अवलम्बन किया जाना साधारण बात न थी। होमरूल सम्बन्धी भाषणों पर राजद्रोह के मुकद्दमों का चलाया जाना और उच्च न्यायालय से बेदाग छूट जाना भी एक उल्लेखनीय घटना है, क्योंकि वह पहला अवसर था, जब कि स्वराज्य आन्दोलन के अधिकार को अदालत द्वारा कानूनी मान्यता प्रदान की गई थी। उत्तर भारत के अनेक प्रदेशों में लोकमान्य का प्रवेश निषिद्ध होने पर भी उसका व्यक्तित्व और नेतृत्व सारे देश पर छा गया था।

गान्धी युग

सन् १९२० की पहली अगस्त को भारत के राजनीतिक गगन मण्डल में अपने पूर्ण तेज के साथ चमकने वाला सूर्य अस्त हो गया और सहसा ही उसका स्थान सोलह कलाओं से पूर्ण पूर्णिमा के चांद ने ले लिया। यह घटना कुछ इस ढंग से घटी जैसे कि एक महान् सेनापति ने अवसर प्राप्त करते हुए स्वतः अपनी सेनाओं की बागडोर अपने उत्तराधिकारी सुयोग्य सेनापति के हाथों में सौंप दी हो। यहीं से हमारे इतिहास के अत्यन्त उज्ज्वल व गौरवशाली अध्याय गान्धी-युग का सूत्रपात होता है। गान्धी-युग की कहानी एक खुली पुस्तक के समान है। राजनीति में सत्य और अहिंसा के नये सफल प्रयोग को सारे मानव समाज ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा। संसार के सबसे अधिक शक्ति-सम्पन्न साम्राज्य की पराधीनता में दीन, हीन जीवन बिताने वाली जनता 'भिक्षां देहि' की वृत्ति का परित्याग कर स्वराज्य के जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त करने के लिए कृत-संकल्प होकर खड़ी हो गई। उसकी सत्याग्रह और असहयोग की अद्भुत रण-चातुरी पर सारा संसार विस्मित रहा।

लगभग चौथाई सदी का यह लम्बा संग्राम अनेक अनहोनी घटनाओं से ओत-प्रोत है। राष्ट्रीय चेतना के विकास की दृष्टि से सन् १९२० की नागपुर कांग्रेस की वह घटना उल्लेखनीय है, जब कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य-प्राप्ति निश्चित किया गया। फिर १९२९ में लाहौर कांग्रेस में स्वराज्य के स्थान में पूर्ण स्वतन्त्रता का समावेश किया जाना भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। युवराज के स्वागत के बहिष्कार पर १९२०—२१ में की गई देशव्यापी गिरफ्तारियों से आत्म विश्वास की नई लहर सारे देश में दौड़ गई, जो राष्ट्रीय चेतना के लिए परम सहायक सिद्ध हुई। सायमन कमीशन का बहिष्कार, नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आन्दोलन, गान्धी ईर्विन समझौता, गोलमेज

सम्मेलन के लिए गान्धी जी की लन्दन यात्रा, लन्दन से लौटते ही फिर देशव्यापी गिरफ्तारियां, १९३४ में सब नेताओं की रिहाई, कांग्रेस पार्लियामेंट्री बोर्ड की स्थापना, १९३६ के चुनाव में कांग्रेस की देश-व्यापी सफलता, प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का गठन आदि राष्ट्रीय चेतना को अत्यन्त प्रबल करने वाली घटनाएं सिनेमा के चित्रपट की तरह घट गईं। दूसरे महायुद्ध के शुरू होने के बाद घटनाचक्र और भी अधिक तेजी से घूमा। व्यक्तिगत सत्याग्रह और १९४२ की अगस्त क्रांति के रूप में राष्ट्रीय चेतना ने विराट रूप धारण किया। उसके परिणाम स्वरूप सन् १९४७ में देश को दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन के साथ जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, वे कल की ही घटनाएं हैं।

राष्ट्रीय नव-निर्माण

स्वतंत्रता प्राप्ति की चिर अभिलाषा के पूर्ण हो जाने के बाद अब हम अपने राष्ट्र के नव-निर्माण के महान् प्रयत्नों में संलग्न हैं। पहली पञ्चवर्षीय योजना के बाद दूसरी को पूरा किया जा रहा है। सारा ही विश्व इन दिनों अत्यन्त विषम परिस्थितियों में से गुजर रहा है। उनके दुष्परिणाम हमको भी भोगने पड़ रहे हैं। फिर भी अपने लोकप्रिय महान् नेता श्री नेहरू के नेतृत्व में हम अपने ध्येय की ओर एक साधक के रूप में निरन्तर अग्रसर हैं। जो साधना हमने तिलक और गांधी के नेतृत्व में की थी, उससे श्री नेहरू के नेतृत्व में की जाने वाली यह साधना कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है।

उच्च आदर्श

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सद्भावना की स्थापना, संघर्ष के समस्त कारणों को दूर करना, समस्याओं के समाधान के लिए हिंसा का परित्याग करना, ये आदर्श बहुत ऊंचे आदर्श हैं। परन्तु इसके साथ ही ये आदर्श इतने अपरिहार्य हैं कि यदि मानवता को जीना है तो इनके सिवाय अन्य कोई चारा भी नहीं है। इस लिए इन आदर्शों के लिये किसी भी प्रयास को चाहे छोटा हो या बड़ा, प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

—राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद

आत्म-विश्वास भावना

शान्तिप्रिय गान्धी जी ने अनवरत प्रयत्न से भारत को अहिंसक राष्ट्र बनाया और उस की आधारभूत बात यह थी कि वे लोगों में आत्मविश्वास की भावना जागृत कर देते थे। वे ग्रामीणों को आत्मविश्वास एवं आत्म निर्भर बनता देखना चाहते थे। आवाज बुलन्द करने से किसी की शक्ति का परिचय नहीं मिलता, केवल उसकी कमजोरी की अनुभूति होती है। मैं प्रत्येक भारतीय का मुख आत्मविश्वास से देदीप्यमान देखना चाहता हूं।

—प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू

वैदिक-धर्म गीत

वैदिक धर्म हमारा अनुपम, वैदिक धर्म हमारा ।
यह है जिसने कोटि जनों को, है इस जग में तारा ।।

एकेश्वर पूजा सिखलाता, भेदभाव को दूर भगाता ।
प्राणिमात्र से प्रेम बढ़ाता, प्राणों से बढ़ करके प्यारा ।।

ज्ञान कर्म शुभ भक्ति मिलाता, श्रद्धा मेधा मेल कराता ।
अन्धकार को दूर हटाता, है यह हृदय उजारा ।।

बुद्धि विरुद्ध नहीं कुछ इसमें, व्यष्टि-समष्टि मेल है इसमें ।
त्याग भोग मिल जाते इसमें, मतपन्थों से न्यारा ।।

सब हैं ईश्वर पुत्र समान, कल्पित ऊंच-नीच नहिं जान ।
करो देव का गुण गणगान, वह भवसागर तारन हारा ।।

जो करता है वह भरता है, अटल नियम यह नित रहता है ।
आत्मा नित्य नहीं मरता है, सिखला निर्भय करने हारा ।।

यज्ञ धर्म है श्रेष्ठ महान्, करता है सबका कल्याण ।
इसके बिना नहीं उत्थान, यह है शुभ उन्नति का द्वारा ।।

समझो सबको मित्र समान, गुण कर्मों के कारण मान ।
कर लो वेदामृत का पान, जो सन्ताप विनाशन हारा ।।

आओ आर्य बनें हम सारे, कर्तव्यों का पालन हारे ।
प्रभु विश्वासी कभी न हारे, जिसने सबका दुःख निवारा ।।

बनें आर्य जग आर्य बनावें, न्याय सत्य अनुराग बढ़ावें ।
सच्चे ईश्वर पुत्र कहावें, 'सत्य धर्म की जय' हो नारा ।।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

शिक्षा-पद्धति में सुधार के सुझाव

श्री शम्सुद्दीन जी, एम. ए. बी. टी. एम. ई. डी. रायपुर, मध्यप्रदेश

यदि हम भारत के गौरवपूर्ण इतिहास के पृष्ठों को पलटें तो हमें नालंदा विश्वविद्यालय व इसी प्रकार अनेक प्रसिद्ध शिक्षण संस्थाओं पर गर्व होगा। ये प्राचीन शिक्षा के केन्द्र भारत की वास्तविक संस्कृति और सभ्यता के प्रतीक थे। भारत में जो आधुनिक शिक्षा की प्रणाली प्रचलित है वह विदेश से लाई गई और उनकी पृष्ठ-भूमि भी बिल्कुल भिन्न है।

भारत में अंग्रेजी राज्य के विस्तार के बाद उन्होंने यहां शिक्षण-पद्धति की रूप-रेखा निश्चित की। आज भारत के विद्यालयों और शालाओं में हम जो कुछ भी देखते और सुनते हैं, वह हमारी शिक्षा पर पाश्चात्य प्रभाव का प्रत्यक्ष परिणाम है। विदेशियों ने प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयीय शिक्षा तक संपूर्ण व्यवस्था व पद्धति ही अपने सांचे में ढाल ली। अंग्रेज प्रारम्भ से ही इस सत्य से भली-भांति परिचित थे कि बिना भारतीयों के पूर्ण सहयोग, विश्वास और भक्ति के भारत में अंग्रेजी राज्य की जड़ें जमाना कठिन ही नहीं असम्भव भी होगा। अतः अपने इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये उन्होंने यहां की शिक्षा-पद्धति का निर्माण इस ढंग से किया जिससे भारतीयों में स्वतन्त्रता, स्वाभिमान आदि की भावना नष्ट हो जाय। दूसरे शब्दों में सम्पूर्ण शिक्षण-व्यवस्था भारतीयों को दासता और बौद्धिक पतन के सिवाय और किसी मार्ग पर अग्रसर ही नहीं करती थी। चूंकि आज स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी हम उसी व्यवस्था के दास हैं, हमें इस प्रणाली में आमूल परिवर्तन व सुधार करना नितान्त आवश्यक है।

वर्तमान समय के छात्रों में शैक्षणिक महत्वाकांक्षा और आदर्शों की कमी पाई जाती है। वे शिक्षा ग्रहण करते हैं—ज्ञान के प्रति प्रेम के कारण नहीं, वरन् एक ऐसा साधन प्राप्त करने के लिये जिसके द्वारा भौतिक लाभ प्राप्त किया जा सके। आज के युग में विश्वविद्यालय की डिग्री या सनद किसी प्रकार प्राप्त करना ही छात्रों का ध्येय रहता है क्योंकि आज के नौकरियों के बाजार में यही एकमात्र साधन है जिससे जीविका प्राप्ति का उद्देश्य पूरा किया जा सकता है। इस प्रकार डिग्रियां नौकरियों के क्षेत्र में 'पासपोर्ट'का काम करती हैं। किन्तु आज देखने में आ रहा है कि ये कीमती और महंगी डिग्रियां किसी तरह प्राप्त कर लेने के बाद भी उनके सामने जीवन की समस्या मुंह फाड़े खड़ी रहती है। ऐसे समय वे स्वयं असमंजस और कठिनाई में पड़ जाते हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में भी जब बेकारी दिखाई देती है तो क्षण भर के लिये छात्र सोच में पड़ जाते हैं कि क्या किया जाए? बारीकी से देखने पर हमें मालूम होता है कि इसमें छात्रों का भी उतना दोष नहीं जितना हमारी शिक्षा-प्रणाली का है। विद्यालयों की कला और साहित्य से परिपूर्ण शिक्षा ही ऐसी है जो छात्रों को नौकरी के अतिरिक्त और किसी काम के योग्य ही नहीं

बनाती । चूंकि नौकरियां कम और सीमित रहती हैं, बेकारी ही अधिकांश के पल्ले पड़ती है ।

आज छात्रों में एक बहुत बड़ा दोष यह रहता है कि वे उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा तो रखते हैं किन्तु अपने भविष्य की कोई रूप-रेखा पहले से निश्चित नहीं करते और न ही उसके अनुसार शिक्षा ग्रहण करते हैं। यहां तक कि माता-पिता भी उन्हें इस दिशा में मार्गदर्शन नहीं करते । अभी तक शालाओं में भी पाठ्यक्रम इतना दोषपूर्ण था कि उसमें छात्रों की विभिन्न प्रवृत्तियों व योग्यताओं के अनुसार विषयों के चुनाव की कोई गुंजाइश ही नहीं थी । अभी अभी शासन ने माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली में सुधार और पुनर्निर्माण की योजना तैयार की है, जिसके अनुसार माध्यमिक शालाओं में बहूद्देशीय विषयों का समावेश किया गया है । इसके अनुसार अब छात्र विभिन्न धन्धों, व्यवसायों, हस्त-कलाकौशल के कार्यों में निपुणता प्राप्त कर सकेंगे । इस प्रकार अधिकांश विद्यार्थी, जीवन के लिये उपयोगी किसी न किसी व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त करेंगे । यह योजना अधिक उपयोगी और प्रभावशाली तभी हो सकेगी, जब कि कुछ मनोवैज्ञानिकों और विद्वान् सलाहकारों की एक समिति प्रत्येक शाला में नियुक्त की जायगी जो छात्रों की प्रवृत्तियों और योग्यताओं का निर्धारण कर उन्हें योग्य सलाह दे । इसी से शिक्षा का उचित मूल्यांकन हो सकेगा । इस प्रकार छात्रों पर लगाये गये एक बहुत बड़े दोष का निवारण होगा और जीवन की समस्या भी हल हो सकेगी ।

आज छात्रों के भविष्य की जिम्मेदारी लेने को कोई तैयार नहीं । बल्कि शालाओं और विद्यालयों में छात्रों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए विद्वानों का मत है कि उच्च विद्यालयों की संख्या कम की जाय, जिससे शिक्षित बेकारी कम हो सके । भारत सरीखे प्रजातन्त्रीय देश के लिये यह न केवल निराशा व खेद की बात होगी, वरन् महान् लज्जा का विषय होगा । उच्च शिक्षा को अधिक खर्चीली और कीमती रखना ही इस बात का द्योतक है कि यह कुछ थोड़े से धनी और उच्च वर्ग के लोगों का एकाधिकार है और भारत के औसत निर्धन व्यक्ति इस तक पहुंच नहीं सकते । इस सम्बन्ध से यही कहा जा सकता है कि प्रत्येक स्वतन्त्र और प्रजातन्त्रीय राष्ट्र का यह ध्येय होना चाहिये कि उसका प्रत्येक नागरिक अपनी सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये शिक्षा और भावी जीवन की सुरक्षा के हेतु कार्य प्राप्त करने योग्य हो सके । यथार्थ में शासन को उसकी जीविका को निश्चितता की जिम्मेदारी लेनी चाहिये । इससे आज छात्रों में फैली हुई गहन निराशा, चिन्ता और उदासीनता का अन्त हो सकेगा ।

शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण पहलू छात्र-शिक्षक सम्बन्ध भी है । आज के युग में बढ़ती हुई छात्रों की अनुशासनहीनता इसी पहलू की अवहेलना के परिणामस्वरूप है । नवयुवक छात्र और छात्राओं का रक्त गर्म और जोशीला होता है । साथ ही उनमें अधीरता और भावु-

कता की प्रधानता रहती है। उन्हें जोर जबर्दस्ती और दबाव से काबू में नहीं लाया जा सकता। इस अवस्था में उनके साथ वर्ताव करते समय यह ध्यान रखा जाय कि उन्हें हमेशा भला बुरा न कहा जाय। बल्कि उनके व्यक्तित्व की योग्यता और जिम्मेदारी की भावना को प्रोत्साहन देते हुए उन्हें राष्ट्र के उपयोगी और उत्तरदायित्व पूर्ण नागरिक ही कहना चाहिये। यथार्थ में प्रत्येक नवयुवक में अथाह शक्ति, उत्साह और योग्यता का सागर छलकता रहता है। यदि उसकी इस असीम शक्ति का सदुपयोग न हुआ तो उसका ग़लत रास्ते में अपव्यय होने लगता है। इसी प्रकार यदि इस समय उन्हें अपने अच्छे काम की दाद न मिले और लोग उनकी अपेक्षा करने लगें तो उस शक्ति का क्षय भी होने लगता है और कुछ समय पश्चात् छात्र अयोग्य व कायर हो जाते हैं।

कक्षा के बाहर शिक्षकों को छात्रों के साथ मिलकर उन्हें समझने व उनकी समस्याओं को हल करने में सहायक सिद्ध होना चाहिये। साथ ही कक्षा के कमरे के बाहर ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन होते रहना चाहिये जिनमें छात्रों को अपनी विभिन्न योग्यताओं के प्रदर्शन का अवसर प्राप्त हो सके। समय समय पर सामाजिक कार्यक्रम व स्वस्थ गोष्ठियों के आयोजन द्वारा शिक्षक-छात्रों का संसर्ग व उनके विचारों का आदान-प्रदान एक अत्यन्त आवश्यक बात है। इसी के साथ-साथ शिक्षकों का जीवन-स्तर भी एक ऐसा अङ्ग है, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। शिक्षकों की आर्थिक सुरक्षा और जीवन-स्तर की वृद्धि की ओर भी सरकार को पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिये, तभी शिक्षक-छात्र सम्बन्ध अच्छे और दृढ़ हो सकेंगे। उनकी आय या वेतन इतनी हो कि जिसमें वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति सहज ही कर सकें और जीवन का शेष समय ज्ञानअर्जन व उसके दान में व्यतीत कर सकें।

आज के शिक्षा-क्षेत्र की एक ज्वलंत समस्या आधुनिक शिक्षा-पद्धति भी है। वर्तमान शिक्षण संस्थाएं परीक्षा को आवश्यकता से अधिक महत्व देती हैं। छात्र की योग्यता का मूल्यांकन करने के लिये परीक्षा केवल साधन है किन्तु आधुनिक समय में उसे ही साध्य मान लेने की ग़लती की जा रही है। परिणाम स्वरूप छात्र रट कर या किसी भी तरीके से परीक्षा पास करने का प्रयत्न करते हैं और प्रमाणपत्र प्राप्त कर लेते हैं।

स्पष्ट है कि कुछ समय पश्चात्, बिना समझे प्राप्त किया गया वह ज्ञान विस्मरण हो जाता है और वह शिक्षा व्यक्ति के किसी काम की नहीं रहती। यह तो केवल उसकी स्मरण शक्ति तीव्र करने या रट कर सुन्दर ढंग से प्रकट करने की योग्यता में ही वृद्धि करती है। इस प्रकार परीक्षा की अत्यधिक महत्ता को कम करके अच्छे स्वस्थ व भयहीन वातावरण में उसकी वास्तविक व्यवहारिक योग्यता की वृद्धि का प्रयास होना चाहिये।

हर्ष ही नहीं वरन् गौरव का विषय है कि हमारी वर्तमान राष्ट्रीय सरकार शिक्षा के क्षेत्र

में सुधार व उन्नति करने के लिये विशेष प्रयत्नशील है। कई बोर्ड और कमीशन नियुक्त हुए हैं जिन्होंने अनेक सुधारों के प्रस्ताव रखे हैं। प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा के क्षेत्रों में कई नवीन प्रयोगात्मक योजनायें कार्य रूप में परिणत की जा रही हैं। आशा है निकट भविष्य में भारत की आधुनिक शिक्षा-पद्धति का रूप ही बिल्कुल बदल जावेगा। यथार्थ में शिक्षा का ध्येय बौद्धिक विकास के साथ-साथ नागरिकों में स्वाभिमान और उत्तरदायित्व की भावना की वृद्धि करना है। सभ्यता के समान अनुशासन भी अच्छी शिक्षा का ही परिणाम है। अच्छी शिक्षा की नींव पर ही स्वस्थ, शक्तिशाली राष्ट्र का नव-निर्माण होता है। राष्ट्र की सुख शान्ति और समृद्धि के लिए शिक्षण संस्थायें उन टकसालों के समान हैं जहां देश के उत्तम नागरिकों और भावी नेताओं के सिक्के ढाले जाते हैं।

गुरुकुल पत्रिका का सुयोग्य विद्वानों द्वारा अयाचित अभिनन्दन

सामवेद के संस्कृत भाष्यकार महाविद्वान् श्री स्वामी भगवदाचार्य जी ने अहमदाबाद से सम्पादक जी को संस्कृत पत्र में लिखा 'श्रीमद्भिः प्रेषिता गुरुकुल पत्रिकाधिगता जाताचानन्ददायिनी।' अर्थात् आपकी भेजी गुरुकुल पत्रिका प्राप्त हुई और पढ़ कर अत्यन्त आनन्द आया।

श्री पं० जनमेजय जी विद्यालङ्कार शास्त्री एम. ए. उपाध्याय डी. ए. वी. कालेज कानपुर ने सम्पादक प० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड को पत्र में लिखा है—

गुरुकुल पत्रिका का स्तर अब बहुत अच्छा होता जा रहा है। यह मैं केवल औपचारिक तौर पर नहीं कह रहा हूं। सम्पादकीय वक्तव्य तथा सम्पादकीय टिप्पणियां, अति श्रेष्ठ, संयत, सत्य, निर्भीक, न्यायानुकूल होती हैं। मैं सबसे पहिले सम्पादकीय लेखों तथा सम्पादकीय टिप्पणियों को ही पढ़ता हूं। बहुत आनन्द आता है। पुनः पुनः आपको इस उत्तम पत्र सम्पादन कार्य के लिये बहुत बहुत बधाई देता हूं।

ऐसे ही अभिनन्दनात्मक पत्र अन्य विद्वानों से प्राप्त होते रहते हैं। पाठक महानुभावों को ग्राहक संख्या बढ़ाने में सहयोग देना चाहिये जिससे अधिक संख्या में लोग इससे लाभ उठा सकें।

—कृष्णराव विद्यालंकार, प्रबन्धकर्ता 'गुरुकुल पत्रिका'

धूम्रपान और मदिरापान का तपेदिक पर प्रभाव

डा० पी० वी० बेंजामिन

"सिगरेट पीने से कैंसर होता है", इस विषय पर इधर काफी कुछ कहा जा चुका है। विभिन्न राज्यों की विधानसभाओं में जो मद्य निषेध के विधेयक आए और पास हुए, उनका भी हमने अध्ययन किया है। लोगों की और खासकर तपेदिक रोगियों की स्वास्थ्य वृद्धि से सम्बन्ध रखने के नाते हमारे मन में यह प्रश्न कई बार उठा है कि तपेदिक रोग से सिगरेट अथवा मदिरा पीने का क्या सम्बन्ध है ? लगता है इस विषय पर भारत में कोई अनुसन्धान अथवा अध्ययन नहीं किया गया है लेकिन अन्य देशों में जो अध्ययन हुआ है, उससे इस विषय पर कुछ दिलचस्प आंकड़े मिलते हैं।

धूम्रपान और तपेदिक

यह बात तो सभी जानते हैं कि धूम्रपान से फेफड़ों का कैंसर हो सकता है, क्योंकि सिगरेट पीने से गला खराब हो जाता है, अतः इससे खांसी भी हो सकती है। खांसी से फेफड़ों के तपेदिक के उपचार में बाधा होती है। यही नहीं, इससे ठीक हुआ तपेदिक भी फिर से उभर सकता है।

एक बार बरमिंघम के डा० सी० आर० जा० ने अपने शहर के १२०० तपेदिक रोगियों का मुआयना किया। इससे उन्हें पता चला कि तपेदिक रोगियों में सिगरेट पीने वालों का अनुपात अन्य व्यक्तियों से कहीं अधिक था। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि तपेदिक रोगियों में लम्बे उपचार और मानसिक अशांति के कारण सिगरेट पीने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। अतः उन रोगियों को सिगरेट पीने की हिदायत देते रहना जरूरी है।

मदिरापान और तपेदिक

इल्लीनायस के डा० ओटो एल. बेटटाग ने एक बार आजमायशी तौर पर अध्ययन किया। उन्हें पता चला कि इल्लीनायस में १ लाख पियक्कड़ों में से २३०० को तपेदिक हो जाता है, जब १ लाख गैर पियक्कड़ों में से ६४ व्यक्तियों को ही होता है।

क्लेवलेण्ड सिटी हास्पिटल के तपेदिक विभाग के एक सर्वे से पता चला कि कम से कम २६ प्रतिशत तपेदिक रोगी शराब पीने के आदी होते हैं। इन दोनों अध्ययनों से यह बात साफ़ है कि तपेदिक रोगियों में शराब पीने वालों की संख्या अधिक होती है।

मदिरापान के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि बहुत से पियक्कड़ थूकने में सावधानी नहीं बरतते और वे सफ़ाई के नियम भूल जाते हैं। इस प्रकार इन तीनों की बीमारी अन्य व्यक्तियों को आसानी से लग सकती है। और फिर, यह भी देखा गया कि साधारणतया लोग मिल कर मदिरापान करने बैठते हैं। जो लोग शराब के आदी हैं वे सिगरेट भी जरूर पीते हैं, अगर नहीं तो शराब पीते समय तो जरूर सिगरेट लगा लेते हैं अर्थात् इकट्ठे बैठ कर सिगरेट और शराब पीने से भी एक का रोग दूसरों को लग सकता है।

पौष्टिक आहार की समस्या

मदिरा और सिगरेट पीने वालों में आम शिकायत यह रहती है कि उनका हाज्मा ठीक नहीं रहता। इससे वे न तो पौष्टिक आहार खा सकते हैं, और अगर खाते हैं तो वह पचता नहीं। अर्थात् अधिक सिगरेट और मदिरा पीने वालों के शरीर को पौष्टिक तत्व नहीं मिल पाते और इस कारण उनमें रोग, खासकर तपेदिक सहारने की क्षमता नहीं रहती।

अगर किसी शराबी में तपेदिक के कीटाणु आ जाएं तो और शराब पीते रहने से रोग बढ़ जाता है। इससे उपचार और कठिन हो जाता है।

(धूम्रपान और मदिरापान न केवल क्षय रोगियों अपितु सभी के लिये हानिकारक है, अतः इन दुर्व्यसनों का सर्वथा परित्याग करना ही कल्याणकारक है। यह बड़े दुःख की बात है कि अनेक शिक्षासंस्थाओं के अध्यापक और उपाध्याय धूम्रपान (बीड़ी सिगरेट) का सेवन करते हैं और उनके अनुकरण में विद्यार्थी भी इस व्यसन में फंस जाते हैं। यह बात नितान्त निन्दनीय है। —सम्पादक)

हम पर सुख बरसाओ

विश्व प्रकाशक, हे जग व्यापक, अब न अधिक तरसाओ।
हे सब के आनन्द विधायक ! ईश्वर हे ऐश्वर्य प्रदायक !
मनवांछित आनन्द सहायक, करुणा स्रोत बहावो।।
पूर्णानन्द प्राप्ति के द्वारा, तृप्त करो दो अमृत-धारा।
करो करो कल्याण हमारा, रस निमग्न कर जावो।।
ऊपर नीचे दायें बायें, अमृत-स्रवित हों सकल दिशायें।
हे आनन्द कंद करुणाघन ! मंगल जल बरसावो।।
सुख आचमन कराओ।।

—श्री रामनिवास एम. ए., फ़ज़लपुर

श्री दलाईलामा से भेंट

श्री पं० रघुवीरसिंह जी शास्त्री मन्त्री, सार्वदेशिक सभा, नई देहली

मैंने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री के रूप में श्री दलाईलामा को जून मास में पत्र लिखा कि आर्यसमाज का एक शिष्ट मण्डल आपको आर्यसमाज तथा वैदिक-धर्म के विषय में बताने एवं तत्सम्बन्धी साहित्य भेंट करने के लिये आप से मिलना चाहता है। ७ जुलाई के सायंकाल सहसा मुझे उनके निजी सचिव का पत्र मिला जिसमें लिखा था कि आपकी मुलाकात का समय ९ जुलाई को प्रातः १०बजे नियत किया गया है। मैंने तुरन्त आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड को मसूरी पहुंचने के लिये तार दिया। भेंट करने वाले शिष्ट मण्डल में मेरे अतिरिक्त ६ विद्वान् थे—श्री पं० धर्मदेव जी, स्वामी ब्रह्ममुनि जी, स्वामी विज्ञानानन्द जी, डा० स्वामी आनन्ददेव जी तथा कविराज हरनामदास जी बी. ए.।

श्री दलाईलामा अंग्रेजी भी अधिक नहीं जानते,एक सिक्कमवासी नवयुवक बीच में दुभाषिया का काम कर रहा था। हम उसे अंग्रेजी में कहते और वह तिब्बती भाषा में दलाईलामा को कहता था।

हम ने आरम्भ में ही कहा कि हम आर्य समाजियों का विश्वास है कि मानव-सृष्टि का मूल स्थान तिब्बत है और वहीं से आर्य लोग सारे संसार में फैले हैं अतः तिब्बत का एक ऐतिहासिक विशेष महत्व है।

इसके पश्चात् हम ने कहा कि 'आर्य' शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ, सदाचारी व्यक्ति। महात्मा बुद्ध ने इसी कारण इस शब्द को अपनाते हुए 'आर्य सत्य' 'आर्य अष्टांगिक मार्ग' आदि शब्दों का प्रयोग किया। हमारा विचार है कि वे एक आर्य सुधारक थे जिन्होंने प्राचीन आर्य धर्म के ऊपर अज्ञानवश आये आवरण को दूर करके विशुद्ध वैदिक सदाचार की स्थापना का कार्य किया, विशेष रूप से जाति भेद तथा यज्ञों में पशुबलि आदि की जो अवैदिक प्रथाएं प्रचलित हो गई थीं, उनका उन्होंने प्रबल विरोध किया। वैदिक धर्म की शिक्षा प्राणिमात्र को मित्र की दृष्टि से देखने की है अतः आर्यसमाज जातिभेद तथा अस्पृश्यता आदि का कट्टर विरोधी है। दलितोद्धार, स्त्री शिक्षा, शिक्षा प्रसार तथा स्वतन्त्रता की भावना आदि आंदोलनों का प्रारम्भ आर्यसमाज ने ही किया जिनको पीछे अन्य नेताओं तथा संस्थाओं ने अपना लिया। संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है। उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस देश में आर्यसमाज तथा उसकी बहुविध संस्थाओं का जाल बिछा है। विदेशों में भी आर्यसमाज की अनेक शाखाएं तथा संस्थाएं हैं।

मन्तव्यों का परिचय देते हुए उन्हें बताया गया कि आर्यसमाज एक ईश्वर का उपासक है, जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तथा सर्वव्यापक है। ईश्वर की सत्ता सम्बन्धी यही विश्वास मनुष्य को निष्पाप बनाता है। संसार में शान्ति तथा बन्धुता की स्थापना में भी यही विश्वास विशेष

रूप से सहायक हो सकता है। हम सब एक परमेश्वर के पुत्र हैं और परस्पर भ्रातृवत् प्रेम मय व्यवहार हमें करना चाहिये। वेद के विषय में उन्हें बताया गया कि जिस प्रकार माता-पिता बच्चों के कल्याण के लिए उन्हें अच्छी शिक्षाएं देते हैं ठीक उसी प्रकार मंगलमय भगवान् ने सृष्टि के आरम्भ में वेदों के द्वारा उपदेश दिया जो कि सार्वभौम है। मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है कि वेद मानव पुस्तकालय में प्राचीनतम ग्रन्थ हैं और उनके महत्व को भी अब पाश्चात्य विद्वान् धीरे-धीरे स्वीकार करने लगे हैं। वेदों की शिक्षाएं युक्ति युक्त और सार्वभौम हैं।

बुद्ध मत तथा मांस-भक्षण

अन्त में हमारी ओर से प्रश्न किया गया कि महात्मा बुद्ध ने अहिंसा को परम धर्म बताया है और उनका सारा मत अहिंसा पर ही खड़ा है तो फिर उनके अनुयायी मांस भक्षण करें, यह कहां तक संगत एवं उचित है ?

उन्होंने कहा कि सिद्धान्त रूपेण यह बात ठीक है और तिब्बत में भी पशुरक्षा सम्बन्धी कानून बने हैं और जङ्गलों तक में पशुओं का मारना वर्जित है। इसी अहिंसा सिद्धान्त को मान कर बहुत से लोग मांस नहीं खाते। उन्होंने यह भी कहा कि इस विषय में हीनयान तथा महायान सम्प्रदायों में मतभेद है। महायान वाले मांस खाना बुरा नहीं मानते। इस पर उन्हें महायान के प्रामाणिक ग्रन्थ 'लंकावतार सूत्र' के मांस भोजन परीवर्त नामक प्रकरण से संस्कृत के के अनेक उद्धरण अंग्रेजी अनुवाद सहित पढ़कर सुनाए गये जिनमें मांसाहार का प्रबल विरोध किया गया है। उन्होंने एक युक्ति यह दी कि हम स्वयं मारके नहीं खाते अतः हिंसा के पाप से बच जाते हैं। इस पर भी उन्हें इसी ग्रन्थ के अन्य उद्धरण दिखाए गए जिनमें स्पष्ट लिखा है कि न केवल पशुओं की हिंसा करना ही पाप है, अपितु उनका मांस खाना भी पाप है क्योंकि हिंसा मांस खाने वालों के लिये ही की जाती है।

उन्होंने कहा कि लोग प्रेम से भेंट करते हैं तो हम खा लेते हैं। इस पर हमारी ओर से कहा गया कि जब लोगों को यह पता होगा कि भगवान् बुद्ध की आज्ञारूप अहिंसा धर्म के विरुद्ध होने के कारण आप मांस नहीं खाते तो लोग इस प्रकार की भेंट न देंगे। मांस खाना तो हिंसा को प्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहित करता है।

उन्हें यह भी कहा गया कि आप के सम्बन्ध में यह विचार फैलाया जाता है कि बुद्ध का आत्मा आप में निवास करता है और आप उस के प्रतिनिधि हैं। बताइये कि यदि आप के स्थान पर स्वयं भगवान् बुद्ध होते तो क्या वे मांस खाते ? आप उनके आसन पर विराज-मान हैं तो आपको भी वही आदर्श जनता के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिये। न स्वयं आपको मांस खाना चाहिए और यदि आपके अनुयायियों में से कोई खाए तो उसको उपदेश देकर रोकना चाहिये। उन्हें बताया गया कि भारत के लोगों के लिये तो यह बात आश्चर्यजनक है कि बौद्ध मत के प्रमुख मांस खाते हैं।

अन्त में उन्होंने इन सब बातों पर गम्भीरता

पूर्वक विचार करने का आश्वासन दिया और हमने उन्हें 'सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, महात्मा बुद्ध एक आर्य रिफार्मर Mahatma Buddha An-Arya Reformer' आदि संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी के अनेक ग्रन्थ भेंट किए।

यह चर्चा लगभग सवा घंटे तक बहुत ही मधुर वातावरण में चली जो कि विशुद्ध धार्मिक थी। श्री दलाईलामा बहुत प्रसन्न मुद्रा में थे और उनका व्यवहार अतीव शिष्ट था। कहा जा सकता है कि उन पर शिष्ट मण्डल की बातों की विशेष छाप पड़ी।

[सार्वदेशिक सभा नई देहली के मान्य मन्त्री श्री रघुवीर सिंह जी शास्त्री द्वारा प्रेषित श्री दलाईलामा से भेंट का वृत्तान्त जिसे हम ने उनके साथ मिलकर मसूरी में ही भेंट के ठीक बाद तैयार किया था हम सहर्ष प्रकाशित कर रहे हैं। उस शिष्टमण्डल के सदस्यों के निश्चयानुसार प्रमुख वक्ता के रूप में कार्य हमें ही करना पड़ा था यद्यपि मान्य शास्त्री जी तथा शिष्ट मण्डल के अन्य सदस्य भी बीच-बीच में इस संवाद में सम्मिलित होते रहे। लंकावतार सूत्र आदि के जिन वाक्यों के हमने उद्धरण इस संवाद में दिये थे उन में से दो श्लोकों का, अत्यधिक महत्वपूर्ण और स्पष्ट होने के कारण हम यहां उल्लेख कर देते हैं जिनको सुन कर श्री दलाई लामा अत्यधिक गम्भीर हो गये ऐसा हमने अनुभव किया। शेष का उल्लेख अगले अंक में किया जाएगा क्योंकि उनके बिना यह वृत्तान्त अपूर्ण रहेगा। वे दो श्लोक निम्न हैं—

योऽतिक्रम्य मुनेर्वाक्यं, मांसं भक्षति दुर्मतिः।
लोकद्वयविनाशार्थं, दीक्षित. शाक्यशासने॥
लाभार्थं हन्यते प्राणी, मांसार्थं दीयतेधनम्।
उभौ तौ पापकर्माणौ, पच्येते रौरवादिषु॥
लंकावतार सूत्र अ० ८।

इन श्लोकों में स्पष्ट कहा गया है कि जो दुर्बुद्धि बुद्ध की आज्ञा का उलंघन करके मांस खाता है वह इस तथा परलोक दोनों का नाश करता है। प्राणियों की हत्या लाभ के लिये की जाती है क्योंकि मांस के लिये धन दिया जाता है। इस लिये पशुहिंसा करने और उसके मांस का भक्षण करने वाले दोनों नरक की अग्नि में पकाये जाते हैं। इस प्रकरण के अन्य वचनों को हम फिर उद्धृत करेंगे।

धर्मदेव वि० मा० सम्पादक गुरुकुल पत्रिका]

सौभाग्यवान् देश

जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या, वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है, वही सौभाग्यवान् देश होता है।

—महर्षि दयानन्द।

महामना मालवीय जी की दया भावना

श्री रमेशकुमार जी किंग्सवे कैम्प देहली

महात्मा लोगों के हृदय बचपन से ही दयामय होते हैं। एक गली के किनारे बालकों का एक दल कबड्डी खेल रहा था। जब अंधेरा हो गया तो सब ऊंचे-ऊंचे स्वर से अपने-अपने खेल को बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करते हुए लौट रहे थे। उनमें से एक बालक जो दूसरों की अपेक्षा गंभीर था, नाली के किनारे पड़े हुए एक कुत्ते को देख कर खड़ा हो गया। कुत्ते के पिछले भाग की दाहिनी ओर घाव था, आस-पास का मांस छिल गया था और उस पर मक्खियां भिनभिना रहीं थीं। कुछ छोटे बच्चे अपने घर के द्वार से उसे पत्थर मार रहे थे। उस बालक ने उन्हें रोका और अपने घर के सामने की डाक्टर की दुकान में घुस गया। डाक्टर उसके पिता का मित्र था, अतः उसे आया देख, घर वालों का हाल पूछने लगा। 'नहीं चाचा जी मैं तो घाव पर दवा लगाने आया हूं। एक कुत्ते को लगानी है।' चाचा ने टालने की कोशिश तो की किन्तु बाल हठ के आगे एक न चली। खैर, घाव साफ़ करने और दवा लगाने की सब वस्तुएं दे दीं।

बालक को मानो कोई उपहार मिल गया, तुरन्त कुत्ते के पास जाकर उसकी सेवा में लग गया। घायल कुत्ता पागल कुत्ते से कम नहीं होता। वह बालक को बार बार पीछे मुड़ कर काटने की कोशिश करता और भौंकता। पर बालक अपने कार्य में रत रहा। घाव को धोकर दवाई लगा दी। कुत्ते को भी शान्ति हुई। इसी प्रकार कुछ दिन सेवा करने पर कुत्ता बिल्कुल चंगा हो गया। और बालक घृणा से मुंह सिकोड़ चले गये, किन्तु इस प्रकार कुत्ते पर दया करने वाले थे—महामना श्री मदन-मोहन मालवीय जी।

स्वतन्त्रता की जय

उत्क्रामातपुरुषः मावपत्थाः॥ अथर्व० ८. १. ४

स्वतन्त्रता की विजय हमको है मनानी॥
जब तलक रवि-शशि गगन में हैं खड़े
जनशक्ति जीवन के चरण आगे बढ़े,
जीवन-मरण के मध्य की वर वर्तिका।
प्राण प्रण है हमें निश्चय मनानी॥
हमने नियति को जीतकर हिंसा भगादी
प्रेम की मृदु चांदनी हँस-हँस खिलादी,
विषम सम गति में तिमिर घनजलधि से।
जिन्दगी की नाव है खेकर जगानी॥
क्षितिज के उस पार से स्वाधीनता
मुस्करा लाये हैं हम शुभ प्राणदा,
विश्व ने देखा नयन भर आज के दिन।
पलट दी हमने सहज कल की कहानी॥

—श्री कमल साहित्यालङ्कार, बाराबंकी

दार्शनिक अरविन्द की साहित्यिक देन

श्री सुमित्रानन्दन पंत

श्री अरविन्द के योग और दर्शन ने संसार का ध्यान इतना अधिक आकर्षित कर लिया है कि उनकी महान् काव्य प्रतिभा की ओर ध्यान देने का अभी मनीषियों को अवसर ही नहीं मिल सका है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने श्री अरविन्द के कवि-रूप पर आकाशवाणी दिल्ली से भाषण किया था, जो यहां प्रस्तुत है।

दार्शनिक, द्रष्टा योगी और उच्चकोटि के कवि श्री अरविन्द एक में अनेक और अनेक में एक हैं। सम्भवतः उन्होंने कहीं कहा है कि वह दार्शनिक और योगी से प्रथम कवि और राजनीतिज्ञ हैं। कवि वे राजनीतिज्ञ से भी पहले रहे हैं। जब वह लंदन में विद्याध्ययन करते थे और तब से अन्त तक कविमनीषी बने रहे।

श्री अरविंद मुख्यतः अंतश्चैतन्य के कवि हैं। उनके साहित्य का स्तर अत्यन्त उच्च, गंभीर और व्यापक है। उन्हें सदैव और सर्वत्र सरलतापूर्वक समझ लेना संभव नहीं, जब तक कि उनके चैतन्य के आलोक से आप परिचित न हों अथवा वह आपकी सहायता न करे। उन्होंने अपनी गूढ़, अरूप, यौगिक अनुभूतियों को अपनी सूक्ष्म काव्य-प्रतिभा से अनेक प्रकार की रचनाओं में मूर्त किया है। उनके प्रगीत, सानेट, तथा सावित्री के समान बड़ी रचनाएं भी मुख्यतः भावपरक, प्रतीकात्मक तथा आत्म-कथापूर्ण हैं, जिनमें उच्चतम मानसिक आधिमानसिक स्तरों की प्रेरणाएं पूर्ण छंद लय ध्वनियों में ढाल दी गई हैं। उनकी आत्मकथा निःसंदेह उनकी उच्च रहस्यपूर्ण यौगिक अनुभूतियों एवं उपलब्धियों की ही कथा है। श्री अरविन्द ने अपनी रचनाओं में निराकार प्रकाश के देवों को जैसे वाणी का परिधान पहना साकार कर दिया है। आप उनके साथ अनेक चैतन्यों के लोकों में विचरण कर शांति, सौंदर्य, आनन्द और प्रकाश के सागर में डूबे जाते हैं।

श्री अरविन्द का काव्य

श्री अरविंद ने प्रेम और प्रकृति सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त मुख्यतः अन्तर्जगत् के उच्च मानसिक स्तरों तथा आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी कविताएं की हैं। कला शिल्प में उन की गहरी अन्तर्दृष्टि रही है। संस्कृत, ग्रीक और लेटिन के प्राचीन-अर्वाचीन साहित्य के गहन अध्ययन एवं ज्ञान ने उनकी सौंदर्य, रुचि, कल्पना तथा कलादृष्टि को अत्यन्त मार्जित कर दिया था। उनका अपना आंतरिक संस्कार भी इस दिशा में अत्यन्त विकसित था। उन्होंने संस्कृत और बंगला में सम्भवतः थोड़ा-बहुत लिखा हो, पर उनकी आत्माभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम अंग्रेजी ही रही है और अंग्रेजी भाषा को उनकी उच्चतम प्रकाश और चैतन्य की रचनाएं अमर और अनूठी देन हैं। उनकी इङ्गलैंड में लिखी गई छात्रावस्था की रचनाओं में भी भाषा के निखार के साथ कवित्व एवं कला के प्रचुर उपकरण मिलते हैं, किन्तु कलात्मक पूर्णता ही उनके काव्य का ध्येय नहीं कहा जा सकता। कलात्मक पूर्णता

के भीतर जो एक और समग्र पूर्णता—जिसे आत्मिक पूर्णता का ऐश्वर्य कह सकते हैं-जो उन्हें अपनी योगदृष्टि तथा साधना से प्राप्त हुआ—उसी को हम वास्तव में श्री अरविन्द का काव्य सौंदर्य अथवा प्रकाश वैभव कह सकते हैं।

प्रकृति विश्वविधायिनी शक्ति

श्री अरविन्द के प्रेम काव्य में सौंदर्य का पवित्र निखार, भावना की गहराई, सच्चाई और स्वाभाविकता मिलती है, उनमें प्राणों की ऊर्ध्वमुखी उजली आग का स्पर्श मिलता है, उनकी प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में प्रकृति के मातृ-रूप के दर्शन होते हैं—करुणा, ममता, स्नेहमयी भूतों की जननी, जिसे पाशविक क्रूरता छू तक नहीं गई है। बाह्य प्रकृति के स्निग्ध मधुर रूप-रंग, श्री सुषमा एवं गंधध्वनियों के मार्मिक वैचित्र्य का भी उन्होंने चित्रण किया है, पर वे बाह्य निसर्ग को अन्तर्विश्व से पृथक् केवल छाया प्रकाश की चंचल सृष्टि के रूप में न देख कर उसे कवि के मनश्चक्षु से विश्वविधायिनी शक्ति के रूप में अपनी समग्रता में ही अधिक देखते हैं। उच्च अधिमानसिक तथा आध्यात्मिक स्तरों की रचनाएं तो उनकी प्रतिभा का सर्वाधिक प्रतिनिधि कृतित्व हैं हीं। ऊंची से ऊंची अलंघ्य आध्यात्मिक उड़ान भरते हुए भी श्री अरविन्द के पैर पृथिवी से नहीं उखड़ते हैं। वे आध्यात्मिकता के शून्य आकाश में खो जाने में विश्वास नहीं करते थे प्रत्युत उच्च शिखरों की प्रकाशमान अनुभूतियों को नीचे उतार कर उन्हें पृथ्वी की चेतना का अङ्ग बना कर मानव जीवन को सम्पूर्ण, समृद्ध तथा सुन्दर बनाना चाहते थे।

मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त श्री अरविंद ने श्री भर्तृहरि के नीतिशतक तथा कालीदास के विक्रमोर्वशीय का भी अंग्रेजी भाषानुवाद प्रस्तुत किया है, जिनमें मौलिक सौंदर्य तथा रस अक्षुण्ण रखा गया है। श्री चित्तरंजनदास के सागर संगीत का भावपूर्ण अंग्रेजी रूपांतर भी उनके 'कलेक्टेड् पोएम्स ऐण्ड प्लेज़'में मिलता है। यह संकलन उनके पाण्डिचेरी आश्रम से दो बड़े-बड़े भागों में सन् १९४२ में प्रकाशित हुआ है, जिसमें उनकी 'उर्वशी', 'अहम्' जैसी अनेक मार्मिक कविताएं हैं। इनके अतिरिक्त भी 'पोएम्स ऑफ द पास्ट ऐंड प्रेजेंट' इत्यादि उनके अनेक काव्य-संग्रह तब से प्रकाशित हो चुके हैं और अनेक कविताएं अभी पुस्तक रूप में प्रकाशित नहीं हो सकी हैं।

सावित्री महाकाव्य

श्री अरविन्द के योग तथा दर्शन ने संसार का ध्यान इतना आकर्षित कर लिया है कि उनकी महान् काव्य-प्रतिभा की ओर ध्यान देने का अभी मनीषियों को अवसर ही नहीं मिल सका है। श्री अरविन्द दार्शनिक रूप में तो कवि हैं ही, उच्च कवि के रूप में भी ऋषि दार्शनिक हैं। उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति उनका 'सावित्री' नाम का महाकाव्य है, जिसमें उन्होंने अपने समस्त दर्शन के योगामृत को प्रकाश और सौंदर्य के कलश में भर कर विश्व को अमर भेंट के रूप में प्रदान किया है। 'सावित्री' श्री अरविन्द के अन्तश्चैतन्य की स्फटिक शुभ्र वाणी का भागवत प्रासाद अथवा

मंदिर है। वह ज्ञान शक्ति तथा चैतन्य का ग्रानन्द-सिन्धु है, निश्चेतन से ग्रतिचेतन तक छहरा हुग्रा, विश्व सत्य को आरपार व्यापी गहनतम ग्रनुभूतियों का अनिर्वचनीय ग्रपार्थिव इन्द्र-धनुषी सौंदर्य सेतु है—जिसके सम्बन्ध में इस छोटी सी वार्ता में कहना असम्भव है।

ग्रन्त में उनकी रचनाग्रों के कुछ अंशों का अनुवाद प्रस्तुत कर इस वार्ता को समाप्त कर रहा हूं—

पहला अंश है उनके (ब्लूबर्ड) 'नील विहग' से—

मैं प्रभु के नभ का नील विहग
मैं गाता सत्य मधुर के स्वर
मैं मृत्यु लोक से ज्वाला सा
मैं पीड़ित मर्त्य धरा रज पर
दिव्योच्च विपुलता में जो स्थित
देवों के स्वर्दूतों के हित
उठता अनन्त में शोक रहित
बरसाता अग्नि बीज हर्षित

दूसरा अंश है (ब्राइड ग्राफ फायर) 'ग्रग्नि-वधू' का—

ए अग्नि वधू, मुझको कस ले
झर गये फूल के पार्थिव रंग
आभा शोभे आवृत कर ले
मैं तृष्णा त्यागी शोक मुक्त
निःसीम नाद, मेरे उर में जग,
ग्रंकित कर उसमें चिर प्रकाश
बाहों में अग्नि वधू उदार
मैंने ममता को दिया मार
आभा शोभे मेरा जीवन
कर सकता तेरा हर्ष वहन
ए केवल के आमन्त्रण
जो मिटे न फिर जीवित पूषन्

अन्त में 'सावित्री' के तृतीय पर्व के द्वितीय सर्ग 'भगवती माता की वंदना' का एक छोटा सा ग्रंश सुनिये—

संपूर्ण विश्व प्रकृति मूक भाव से उसी को पुकारती है
कि वह अपने पदों से जीवन की दुखती हुई धड़कन का उपचार करे
और मनुष्य की धुंधली आत्मा पर मुद्रित चिह्नों को तोड़े
तथा पदार्थों के रुद्ध हृदय में अपनी आग सुलगाए
एक दिन यहां सब कुछ उसकी मधुरिमा का धाम बन जाएगा
समस्त विरोध उसके सामंजस्य की तैयारी करते हैं
हमारा ज्ञान उसी की ओर आरोहण करता है
हमारी कामना उसी को अन्धकार में खोजती है
उसके अलौकिक आनन्दाधिक्य में हमारा अधिवास होगा
उसका परिरम्भ हमारे दुःख को परमानन्द में बदल देगा
हमारी आत्मा उसके द्वारा सबकी आत्मा से एक हो जाएगी

उसमें रूपान्तरित हो जाने के कारण उसी में प्रतिष्ठित होकर
हमारा जीवन अपने पूर्ण काम उत्तर में
ऊपर, निःसीम मौन अपवर्गों को पाएगा
नीचे दैवी परिरंभ का विस्मय

—आकाश वाणी के सौजन्य से प्राप्त

महापुरुषों के कुछ वचन

कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इनके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।

जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें।

—महर्षि दयानन्द 'सत्यार्थ प्रकाश' में

० ० ०

स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

—लोकमान्य तिलक

० ० ०

निर्भयता और प्रभुता में सिंह बनो, धैर्य और उपयोगिता में ऊंचे बनो, अचंचलता, सहनशीलता और मातृ सुलभ वदान्यता में गाय बनो। भगवान् के दिये सभी सुखों पर टूट पड़ो, जैसे सिंह अपने शिकार पर टूट पड़ता है। परन्तु आनन्द विलास के उस अनन्त क्षेत्र में लोट पोट होने एवं चरने के लिये समस्त मनुष्य जाति को भी साथ ले जाओ।

—श्री अरविन्द ('भारती' से)

० ० ०

संस्कृत, भाषाओं के लिये गङ्गानदी है। यदि वह सूख जाए तो ये सारी भाषाएं निर्माल्यवत् हो जाएंगी ऐसा मुझे लगता है। मैं समझता हूं कि संस्कृत का सामान्य ज्ञान प्रत्येक भारतीय के लिए आवश्यक है। —महात्मा गान्धी

शान्ति "एकांकी नाटक"

श्री कर्णवीर जी वेटपालेम, आन्ध्र प्रदेश

(शान्ति दूत के प्रवेश करते ही ग्यारह बज गये) उनका चिन्तन है कि देश की जनता के कष्ट हर कर शान्ति-संस्थापनार्थं मुख्य मार्ग क्या है ? उनका प्रबल विश्वास है कि भारत-माता की अनुकंपा से ही जनता की व्यथा टल सकती है। स्नानानन्तर निवेदन में प्रजा-परिस्थिति भारतमाता को व्यक्त कर देते हैं।

शान्ति दूत—(हाथ जोड़कर अत्यन्त भक्ति से) देवि ! नमश्शत !! तुम्हारी संतान की व्यथा तो मैं सुनकर आया। कितने प्रकार की विज्ञप्तियां माता ! हृदय कंपित हो गया। जनता में बहुत से लोग तीन वार भोजन न मिलने वाले ही हैं। भारतीय हैं। अहो इस मधुर शब्द का अर्थ क्या हुआ है ? आंखें गढ़े में लग कर कलंकविहीन बने हुए हजारों लोग 'अन्न,अन्न', 'ऐ राम चन्द्र' ! कहते कहते कष्ट उठाते समय गांधी जी के सिद्धान्तों के प्रति अपना सर्वस्व अर्पित करने में शपथ-प्रपूर्ण-वीराधिवीर कोई भी नजर में आते ही नहीं हैं ! अलग बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि अनेक गांधी टोपी धारी महानुभावों के षड्यन्त्र हृदय विदारक हैं। जाति-भेद, धर्म-भेद, शाखा-भेद, राम ! राम !! क्या कहूं माता ! पहले से स्वराज्यानन्तर कितना ही अधःपतन है। स्वराज्य प्राप्ति तक हमारी भाषाएं,हमारी भाषाएं कह कर अद्यावधि आंग्लभाषा का व्यामोह न छोड़ने वाले इन कांग्रेस-भक्तों की क्रियाओं के प्रति क्या कहना है, सूझता ही नहीं। उसके पहले के सभी पक्षों की निन्दा करके मातृभाषाभिमान विरहित कह कर, जातीय भाषा के निन्दक मानकर संस्कृत के संहारक बता कर प्रलपने वाले सभी नायक मौन रहते, अब देश का विषय किन्हें पसन्द लगता है ? उससे उनको जो कष्ट नहीं, इन्हें तो वे प्राप्त हो गये। छोटे से कर-पत्र के लिए भी अंग्रेजी ही शरण्य है। 'मैकाले' महानुभाव ! तुम्हारी नव्य-सृष्टि अत्यन्त प्रशंसनीय है। अहो राज-नीति में सिद्ध-हस्त भारतीय पण्डित-प्रकांड तुम्हारे कपट को नहीं जान सके ! (विकल होकर) जननि ! भारत माता !! मेरा मन अव्यवस्थित हो गया। मैं पागल सा बन गया। मुझे अपने सन्दर्शन देकर कृत-कृत्य बना दो, नहीं तो मैं तुमको नहीं मिल सकता ! मां तुम जैसी प्रेममयी को मैंने कहीं नहीं देखा। लोकेश्वरि ! तुम्हारी प्रपूत शपथ क्या हो गई है। 'इत्थं यदा यदा बाधा, दानवोत्था भविष्यति ! तदा तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यपिसंक्षयम्'। कितना पवित्र प्रवचन जननि ! कितनी ही दया भरी हृदय वाली हो माता ! राक्षस राज्य को स्वीकार नहीं करती। मेरा ध्येय है कि संतान की कुशल ही तुम्हारी कुशल है। संतान का उद्धार कर पवित्र

भारत माता का शब्दार्थ सार्थक करो, जननि ! (व्याकुलता के साथ-साथ लेटते हैं । नींद नहीं आती । इधर-उधर करवट बदलते-बदलते कुछ गुनगुनाते हैं, इतने में पार्श्व में कोई ध्वनि कान में पड़ती है)

शान्ति दूत—(सहसा उठकर) कौन आ रही है । भ्रांति है ! नहीं, नहीं आंखें चकाचौंध कर रही हैं । कोई नहीं है; कोई नहीं है, संस्कृति-रक्षिणी भारतजननी है ।(आनन्द) 'वन्दे जननीम्, वन्दे भारतजननीम्, वन्दे भारत जननीम् ।' (पाओं पर गिरते हैं)

भारत माता—कुमार ! शान्ति, शान्ति! सत्संकल्पसिद्धिर्भवतु ।

शान्ति दूत—धन्योऽस्मि भारत मातः । धन्योऽस्मि भारत मातः ।

भारत माता—तुम्हारी व्याकुलता सम्यक् जान ली । शीघ्रातिशीघ्र तुम्हारो आशय-सिद्ध होगी । डरो मत ।

शान्ति दूत—भारत देश सुस्थिर-शान्ति का मूल निज संस्कृति ही है । निज-संस्कृति के जाने बिना पर-संस्कृति का ग्रहण कैसे ?

भारत माता—कुमार ! तुम्हारा आशय मुझे ज्ञात ही है निज संस्कृति में अपरिचित देश का गौरव शून्य है ।

शान्ति दूत—जननि ! मेरा सदाशय यही है । अन्य संस्कृति की तिरस्कृति मुझे पसन्द नहीं है । हमारी संस्कृति से जिस विशिष्ट संस्कृति का अभाव है उसे दूसरों के यहां से ग्रहण करने में सहमत हूं । स्वसंस्कृति का विनाश स्वप्न में भी सहन नहीं कर सकता ।

भारत माता—प्रिय पुत्र ! विजयाभ्युदयार्थ उत्तम पथ सोचा । तुम्हारे आशय की सिद्धि होने वाली ही है । निश्चिन्त सो जाओ ।

शान्ति दूत—(विनय पूर्वक) मेरी दीक्षा तुमको सुविदित ही है निद्रा सफलता के अनन्तर ही आएगी, बीच में नहीं ।

भारत माता—(वात्सल्य से) पुत्र रत्न ! अपना हठ छोड़ दो । अभी मैं प्रधानमन्त्री को सारा विषय स्पष्टतया स्वप्न में समझाऊंगी । उसके द्वारा मंत्रियों को, प्रमुख अधिकारी-वर्ग को आज्ञा पत्र भिजवाने का प्रबन्ध किया जाएगा ! प्रभात में ही सारा भारत हरित तोरणों से, विजय-पताकाओं से सुशोभित हो सकता है, मेरी प्रतिज्ञा ज्ञात है !

शान्ति दूत—(भक्ति से) 'कृतकृत्योस्म्यहं भारत जननि ! तुम्हारे आदेश की कौन सी रुकावट । लोक जननि ! शीघ्रातिशीघ्रं गच्छ पूज्य मातः । वन्दनं भारत मातः । वन्दनं भारत मातः ।' (भारत माता का निष्क्रमण)

शान्ति दूत—(आनन्द के साथ) आज तो मेरा परम आशय फलीभूत होने की कला साक्षात्कार हो रही है । सदुद्यम सत्फल देकर ही रह जाता है । (दाभों की साथनी पर लेटते हैं) । —क्रमशः

—ത—

ओ३म् ध्वज

कविरत्न प्रकाशचन्द्र जी अजमेर

फहराय विश्वभर में, प्रिय ओ३म् ध्वज हमारा ॥

हर प्रान्त में नगर में, बस्ती में और घर में।
वन में विकट समर में, फहराय विश्वभर में
प्रिय ओ३म् ध्वज हमारा ॥

यह ईश ज्ञान वाला, वैदिक विधान वाला।
गौरव गुमान वाला, यह आन बान वाला।
प्रिय ओ३म् ध्वज हमारा ॥

आंखों का यही तारा, प्राणों का यही प्यारा।
दिल का यही सहारा, दुनियां में सबसे न्यारा।
प्रिय ओ३म् ध्वज हमारा ॥

खंजर कोई चलाये, घर द्वार भी जलाये।
ये सर 'प्रकाश' जाये, लेकिन न झुकने पाये।
प्रिय ओ३म् ध्वज हमारा ॥

फहराय विश्वभर में, प्रिय ओ३म् ध्वज हमारा ॥

भारत के भावी विद्वान्

जिनको बाल समझ कर माता,
दूध पिलाती सुधा समान।
जिनको पाल हुई है जगती-
तल में वह आनन्द निधान ॥

जिनको लाल-लाल कह उसने,
भुला दिया सुख-दुख का ध्यान।
जानो उन्हें राष्ट्र की सम्पत,
भारत के भावी विद्वान् ॥

आओ, इनकी शिक्षा के हित,
उथल-पुथल कर दें संसार।
इन्हें बनावें कला-कुशल, नय-
निपुण, वीर, धीमान, उदार ॥

डरें न, प्रण पर मरें, करें
कर्तव्य बनावें दृढ़ संतान।
भारतीय हैं वही, बनावें
भारत के भावी विद्वान् ॥

जिनको होगा जन्म-भूमि के,
कष्टों का पूरा अनुमान।
भाषा, भाव, भेष, भोजन में,
भारतीयता का अभिमान ॥

कौन हमारा दुःख हरेंगे,
हमें करेंगे गौरववान ?
यह सुन सच्चे हृदय कहेंगे—
भारत के भावी विद्वान् ॥

—श्री नरेन्द्र शर्मा

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक को दो प्रतियां पत्रिका कार्यालय में आनी चाहियें।)

वेदों का यथार्थ स्वरूप

लेखक—पं. धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित, मिलने का पता (१) पुस्तक भण्डार गुरुकुल काँगड़ी, उ. प्र. (२) पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा कार्यालय जालन्धर, पृष्ठ बृहदाकार ५३० मूल्य ६.५० ।

श्री पं. धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड ने बड़े परिश्रम से भारतीय विद्याभवन बम्बई द्वारा प्रकाशित 'वैदिक एज्' आदि का अध्ययन कर के 'वेदों का यथार्थ स्वरूप' इस नाम के ग्रन्थ का निर्माण किया है, जिस में न केवल 'वैदिक एज्' के आक्षेपों के मुंह तोड़ उत्तर दिये गये हैं, प्रत्युत वेद का स्वाध्याय करने वालों के लिये भी मार्ग प्रदर्शन किया गया है। पं. धर्मदेव जी बहुत वर्षों तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के स. मन्त्री और 'सार्वदेशिक' पत्र के सम्पादक रहे और अब कई वर्षों से वे गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में वेद के उपाध्याय और 'गुरुकुल पत्रिका' के सम्पादक हैं। वे वेद तथा वैदिक साहित्य के धुरन्धर विद्वान् हैं। मैंने उनके इस ग्रन्थ को बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ा। मेरी सम्मति में 'वैदिक-एज्' के आक्षेपों और आलोचनाओं का पूरा २ उत्तर इस ग्रन्थ में आ गया है। उसको 'वैदिक-एज्' के सब लेखक चाहे न स्वीकार करें पर तटस्थ विद्वान् अवश्य स्वीकार करेंगे। श्री आचार्य अविनाशचन्द्र जी बोस एम. ए, पी. एच. डी. ने जो एक सुयोग्य लेखक हैं इस ग्रन्थ के लिये भूमिका लिख कर उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है और इस में वैदिक साहित्य का जो पाण्डित्य प्रदर्शित किया गया है उस के लिये ग्रन्थ-कर्त्ता को बधाई दी है। वास्तव में 'वैदिक एज्' के सिवाय वेदों के विषय में पाश्चात्य विद्वानों की वैदिक ऋषि, देवता, पशु हिंसात्मक यज्ञ, मांसभक्षणादि विषयक जो भी भ्रान्तियां हैं, उन सबका उत्तर इस ग्रन्थ में आ गया है। इस के अतिरिक्त वेदों का स्वाध्याय तथा अनुसन्धान करने वालों के लिये भी इसमें पुष्कल सामग्री है। आशा है शिक्षित जनता इस का मान करेगी।

गङ्गाप्रसाद एम. ए.
(भू. पू. प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा रिटायर्ड चीफ़ जस्टिस टिहरी—गढ़वाल)
जयपुर

संस्कृतम्—(चतुर्थशतकम्)

रचयिता—श्री पण्डित कर्णवीर नागेश्वरराव जी साहित्यालङ्कार, विद्यावागीश, वेटपालेम् आन्ध्र प्रदेश, मूल्य .५० नये पैसे

पण्डित प्रवीण कर्मवीर जी से हमारे पाठक भली-भांति परिचित हो चुके हैं। वे आन्ध्र प्रदेश के निवासी हैं और उनकी मातृ भाषा तेलुगु है तथापि हिन्दी, संस्कृत में न केवल उन्होंने विशेष परिश्रम किया है अपितु अनेक उत्तम पुस्तकों का उन्होंने निर्माण किया है। 'संस्कृतम्' के तीन भाग पहले प्रकाशित हो चुके हैं। यह चतुर्थ-शतक हमारे सन्मुख है जिस में मान्य राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद जी, श्री युत कन्हैयालाल जी मुन्शी, श्रीमती लीलावती जी मुन्शी, श्रीयुत

जयन्तकृष्ण, श्री वेंकटेश दीक्षित, डा. कैलाशनाथ काटजू इत्यादि संस्कृत के विशेष प्रेमी और उस के प्रचार में उत्साही महानुभावों और विद्वानों का अति सरल संस्कृत में नामोल्लेख किया गया है। इस प्रसङ्ग में उन्होंने स्नेहपूर्वक मेरे और पं. वंशीधर जी विद्यामार्तण्ड आदि का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार अन्य विद्वानों का मानकर के पं. कर्णवीर जी ने अपनी ही गुणग्राहकता और निरभिमानता का परिचय दिया है। श्री राहुलसांकृत्यायन जी संस्कृत के अच्छे विद्वान् होते हुए भी दुर्भाग्यवश अनीश्वरवाद के प्रबल प्रचारक हैं। उन के लिये 'सर्वज्ञ' शब्द का प्रयोग जैसे कि २७ वें श्लोक में किया है हमें नितान्त अनुचित प्रतीत हुआ है। आशा है ऐसे अत्युक्ति पूर्ण स्थानों का पं. कर्णवीर जी संशोधन कर लेंगे। पं. कर्णवीर जी का संस्कृत विषयक यह उत्साह अभिनन्दनीय और अनुकरणीय है।

धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

मेहरस्वाध्याय सार

लेखक और प्रकाशक श्री मेहरसिंह जो, ऑडीटर स्थान—१०० सीतीमारपुर, देहली ८ पृष्ठ ९६ मूल्य दैनिक न्यून से न्यून १०१ गायत्री जप।

श्री मेहरसिंह जी लगभग ७७ वर्ष के स्वाध्यायशील उत्साही आर्य सज्जन हैं जिन्होंने अपने जीवन के अनुभवों से अन्यों को लाभान्वित करने के लिये यह पुस्तक लिखी और धर्मार्थ वितरण के लिये प्रकाशित कराई है। धर्म, वैदिक-संन्ध्या, जगत् गुरू स्वामी दयानन्द जी, ओ३म् की व्याख्या, सुखी परिवार, भजन कीर्तन, आत्मविवेचन, कर्त्तव्य, महापुरुष बनने का नुसखा, पञ्चमहायज्ञ, मृत्यु, फल सब्जी, फुटकल बातें, चरित्र निर्माण, राष्ट्रीय गीत इन विषयों पर इस पुस्तक में अनुभवी लेखक ने अपनी दृष्टि से प्रकाश डाला है। बीच-बीच में मन्त्र, श्लोक आदि भी उद्धृत किये गये हैं, किन्तु हमें यह देख कर अत्यन्त दुःख हुआ कि वे बहुत ही अधिक अशुद्ध छपे हैं। उदाहरणार्थ पृष्ठ ८७ पर 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाध्नत' इसके स्थान में 'ब्रह्मचर्येनि तपसा देवः मृत्यूमुपाध्नताः' छपा है। ऐसी ही भयङ्कर दुर्गति अन्य प्रायः सभी मन्त्रों और श्लोकों की हुई है। इन में से कुछ तो छापे की भूलें होंगी (जो कम्पोज़ीटरों के बहुत कम शिक्षित होने के कारण ध्यान से शोधने पर भी रह जाती हैं) पर बहुत सी लेखक महोदय के हिन्दी के कम अभ्यास के कारण भी 'प्रन्तु, आचर्ण, हानी, रुची, प्रा अप्रा (परा अपरा के स्थान में) अनुकरणिय, आवश्यक्ता, वायू' इत्यादि सैंकड़ों की संख्या में हैं। अच्छा होता अनुभवी उत्साही लेखक महोदय छपने से पूर्व इसे किसी विद्वान् से शुद्ध करवा लेते। आशा है अगले संस्करण से ऐसी अशुद्धियों को ठीक करवा दिया जाएगा जिस से यह सब के लिये अधिक उपयोगी बन जाए। श्री मेहरसिंह जी की भावना अत्यन्त पवित्र है यद्यपि उन की कई अपनी कल्पनाओं से उदाहरणार्थ यजु. ४०।१७ 'कृतंस्मर' के स्थान में यह कल्पना कि 'असली वेदवाणी में कर्तव्यंस्मर होगा' आदि से हम सहमत नहीं।

धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

शेष ४२६ पृष्ठ पर देखिये

गुरुकुल-समाचार

ऋतुरङ्ग

तीव्र उत्तापपूर्ण जून मास के बीत जाने पर बड़ी प्रतीक्षा के पश्चात् ५ जुलाई से मेघराज की कृपा इस प्रदेश पर अवतीर्ण हुई है। तृषित धरती अन्तरिक्ष का जल प्राप्त करते ही उल्लसित हो उठी है। गुरुकुल नगरी के समस्त खेतों, मैदानों, उद्यानों एवं वन-उपवनों में आनन्द और उल्लास छा गया है। लता, पल्लव प्रसूनों में नवजीवन का संचार हो गया है। ताल तलैयां और नदी-नाले मचल उठे हैं। धान की बुआई प्रारम्भ हो चुकी है। किन्तु कभी-कभी वर्षा न होने पर ग्रीष्म का प्रकोप हो जाता है। मच्छरों का उपद्रव शनैः-शनै बढ़ रहा है। प्रायः सब कुलवासी स्वस्थ एवं प्रसन्न हैं।

नवीन सत्र

दीर्घावकाश समाप्त होते ही पावस आगमन के साथ ही अध्ययन-अध्यापन का नवीन सत्र १३ जुलाई से प्रारम्भ हो चुका है। समस्त छात्र और गुरुजन अवकाश से लौट आए हैं।

नवीन उपाध्याय

१. गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री प्रो. सुरेश जी विद्यालङ्कार की वेद महाविद्यालय में 'हिन्दी के उपाध्याय' के रूप में नियुक्त हो गई है। आप गुरुकुल के स्नातक पंजाब शास्त्री, इलाहाबाद से साहित्यरत्न, एवं दिल्ली विश्वविद्यालय से हिन्दी एम. ए. हैं। २. इसी प्रकार विज्ञान महाविद्यालय में भी गणितोपाध्याय के रूप में श्री प्रो. राजेन्द्रकुमार जी एम. एस. सी. की नियुक्ति हुई है।

नवीन छात्र

इस वर्ष विद्यालय एवं महाविद्यालय विभाग में लगभग १४५ विद्यार्थियों ने प्रवेश लिया है।

मान्य अभ्यागत

गत मास गुरुकुल में पधारे हुए अतिथि महानुभावों में से निम्न महानुभावों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

१ तिथि १७।७।५६ को महाराजा कॉलेज जोधपुर के भूतपूर्व उपाध्याय श्री प्रो. जे. कृष्ण मूर्ति गुरुकुल पधारे। आपने गुरुकुल के समस्त विभागों का परिभ्रमण कर के परितोष प्रकट किया।

२. तिथि ६।७।५६ को गुरुकुल के पुराने स्नातक एवं गुरुकुल विद्यासभा के वर्तमान सदस्य श्री पं. सत्यदेव जी विद्यालङ्कार गुरुकुल पधारे।

३. गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री पं. यशपाल जी वेदालङ्कार जो वर्तमान में 'दैनिक हिन्दुस्तान' के सम्पादकीय मण्डल के एक महत्त्वपूर्ण सदस्य हैं स्वास्थ्य लाभार्थ गुरुकुल पधारे हुए हैं। आप २८।७।५६ को दिल्ली लौटेंगे।

६०००.०० रुपये का विपुल दान—पाठकों को यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि गुरुकुल के अनन्य भक्त एवं सुप्रसिद्ध दानवीर श्री पं. विश्वनाथ जी (वाराणसी) ने गुरुकुल को ६०००.०० रुपये का विपुल दान वेद महाविद्यालय में छात्रवृत्त्यर्थ प्रदान किया है। आप गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रबल समर्थक हैं और आपकी समस्त सन्तानों की शिक्षा-दीक्षा

गुरुकुल में ही हुई है। समस्त कुलवासी आपका हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

१००) रुपये का दान—तारागढ़ (गुरुदासपुर) निवासी श्री पं काशीराम जी ने छात्रों के भोजनार्थ १००) रुपये का दान प्रदान किया है। गुरुकुल आपका भी धन्यवाद करता है।

शोक समाचार

१. पाठकों को सूचित करते हुए हमें अत्यन्त दुःख होता है कि गुरुकुल के अनन्य दानी एवं वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज के प्रबल पोषक प्रसारक श्री भाई टेकचन्द जी नागिया का गत मास १ जुलाई को दिल्ली में अपने निवास स्थान पर देहावसान हो गया है। आप डेरागाजीखां के निवासी और अत्यन्त सादे आर्य सज्जन थे युवावस्था में ही आपकी धर्म पत्नी का देहावसान हो जाने के पश्चात् आपने आमरण अत्यन्त संयम एवं नियमन से अपना जीवन व्यतीत किया। आपने गुरुकुल विश्वविद्यालय के महाविद्यालय आश्रम निर्माणार्थ २५०००) रुपये का विपुल दान प्रदान किया था। जिससे आपके नाम पर 'श्री टेकचन्द नागिया आश्रम' नामक गुरुकुल का प्रधान आश्रम बनाया गया। इसके अतिरिक्त आपने निर्धन बालकों की छात्रवृत्ति के लिये भी गुरुकुल विश्वविद्यालय को २५०००) रुपये का विपुल दान प्रदान किया है।

आपने कन्यागुरुकुल, कनखल तथा ज्वालापुर महाविद्यालय आदि अनेकों आर्य संस्थाओं को दान प्रदान किया है। दिल्ली में एक नागिया पार्क, नागिया होस्पिटल तथा डेरागाजीखां में एक अपाहिज आश्रम भी खुलवाया, इसके अतिरिक्त आपने धर्मा कार्यार्थ ३ लाख रुपए का ट्रस्ट बनाया है। आपकी उदारता की जितनी प्रशंसा करें उतनी कम है। हम इनके समस्त परिवार से हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं एवं भगवान् से इन की सद्गति के लिए प्रार्थना करते हैं।

२. पाठकों को यह जानकर भी दुःख होगा कि गुरुकुल के भूतपूर्व अध्यापक एवं वयोवृद्ध वीतराग सन्यासी श्री स्वामी देवानन्द जी का गत मास ११ जु. की रात ८१ वर्ष की उमर में यकायक देहावसान हो गया है। आप अत्यन्त स्वाध्यायशील एवं तपस्वी पुरुष थे। आपको गुरुकुल से इतना अधिक प्रेम था कि आपके पास गुरुकुल स्थापना से लेकर आजतक गुरुकुल में पढ़े समस्त विद्यार्थियों एवं स्नातकों के नाम एवं संख्या की यथावत् सूची थी। समस्त कुलवासी आपकी सद्गति के लिए भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

—ब्र. दिलीपकुमार १४ वीं

आंखों का दोष

एक पिंजड़े में चारों ओर शीशे जड़े थे। अन्दर एक सुन्दर गुलाब का फूल था। पिंजड़े की मैना फूल की तस्वीर देख कर उसे पकड़ने की कोशिश करती पर शीशे से टकरा कर रह जाती। कुछ देर के बाद वह घबरा कर नीचे गिर पड़ी। मुंह मोड़ कर उसने नीचे देखा तो गुलाब का फूल वहीं रखा हुआ था। संसार भी पिंजड़े की तरह है। जिस सुख को हम बाहर ढूंढते हैं वह हमारे अन्दर है, केवल हमारी आंखों का दोष है।

—स्वामी रामतीर्थ एम. ए.

परोपकार विषयक कुछ सुभाषित

जिन्हें स्वर्गीय श्री टेकचन्द जी ने आदर्श बनाया था

दानवीर भाई टेकचन्द्र जी

धनानि जीवितं चैव,
परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
तन्निमित्तो वरं त्यागो
विनाशे नियते सति ॥ १ ॥

बुद्धिमान् अपने धन और जीवन को दूसरों के लिये लगा दे। परोपकार के लिये ऐसा त्याग ही उत्तम है, जब कि धन और जीवन का नाश तो निश्चित ही है।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः,
परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः,
परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥ २ ॥

वृक्ष परोपकार के लिये ही फल देते हैं, नदियां परोपकार के लिये ही बहती हैं। गौवें परोपकार के लिये दूध देती हैं। यह शरीर परोपकार के लिये मिला है।

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कंकणेन।
विभाति कायः खलु सज्जनानां, परोपकारेण न चन्दनेन ॥ ३ ॥

कान की शोभा वेदशास्त्रादि श्रवण से होती है कुण्डल से नहीं। हाथ की शोभा दान से होती है कंकण (कड़ा) पहनने से नहीं। निश्चय से सज्जनों का शरीर परोपकार से शोभित होता है चन्दन से नहीं।

—भर्तृहरि

पृष्ठ ४२२ का शेष—

गरुड़ पुराण की समालोचना

लेखक श्री पं. गङ्गाप्रसाद जी एम. ए. रिटायर्ड चीफ़जस्टिस टिहरी गढ़वाल राज्य, प्रकाशक—आर्य साहित्य मण्डल अजमेर, पृष्ठ ३२ मूल्य .५० ।

श्री पं. गङ्गाप्रसाद जी एम. ए. भूतपूर्व प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा जिनकी आयु इस समय लगभग ८८ वर्ष की है आर्य जगत् की एक विभूति हैं। इस अति वृद्ध आयु में भी उनका उत्तम साहित्य निर्माण कार्य चल रहा है यह प्रसन्नता की बात है। गरुड़ पुराण उन १८ पुराणों में से एक है जिसकी कथा किसी सम्बन्धी की मृत्यु के पश्चात् विशेष रूप से पौराणिक परिवारों में सुनाई जाती है। मान्य पण्डित जी ने उस पुराण के दो पृथक् २ संस्करणों का अनुशोलन कर के उसके विषयों का इस पुस्तिका में परिचय देते हुए उन के अनेक असङ्गत बुद्धि विरुद्ध अंशों की युक्ति-युक्त आलोचना की है। इन दो संस्करणों में से लखनऊ के नवल किशोर प्रेस में छपे एक संस्करण में १५ अध्याय और लगभग १००० श्लोक थे, और श्री पंचानन तर्क-रत्न द्वारा सम्पादित कलकत्ता के संस्करण में ३८८ अध्याय थे। इस अन्तर से भी पुराणों की अप्रामाणिकता पर प्रकाश पड़ता है। इस पुराण की गप्पों का भी मान्य लेखक ने स्थान-स्थान पर निर्देश किया है। यथा यमराज के मुख्य कार्य कर्ता चित्रगुप्त का घर २५ योजन अर्थात् लगभग १०० कोस का है। वैतरणी नदी शतयोजन अर्थात् ४०० कोस चौड़ी है। शालमली वृक्ष का विस्तार २० योजन अर्थात् ८० कोस है। नरक की यातना को पापी लाग 'तत्र भुंजन्ति कल्पान्त तासाँ नरकयातना:' के अनुसार ४ अरब ३२ करोड़ वर्षों तक भोगते हैं। इत्यादि

गरुड़ पुराण की बातों की कठोपनिषत् के साथ तुलना करते हुए उन के अन्तर का पुस्तक में भली-भाति निर्देश किया गया है। एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात जो सुयोग्य लेखक ने गरुड़ पुराण के दशम अध्याय के 'ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ता:, स्वरूपानुभवेन हि। अतस्ते पुत्रदत्तानां, पिण्डानां नैवकाँक्षिण:' इस श्लोक के अनुसार बताई है। वह यह है कि पुराण के अनुसार भी ज्ञानियों को पुत्रों द्वारा दिये पिण्ड—श्राद्धादि की आवश्यकता नहीं होती। वह तो केवल पापियों के लिये है। इससे पौराणिक भाइयों को भी अपनी भूल समझ लेनी चाहिये। सती प्रथा का भी इस पुराण में प्रबल समर्थन है जो अत्यन्त घोर अमानुषिक प्रथा थी। इस प्रकार यह आलोचना अत्युत्तम है। इस का अध्ययन करके सब को इस तथा अन्य पुराणों की गप्पों का ज्ञान हो जाएगा। मूल्य कुछ अधिक है। प्रचारार्थ कम रखने से अधिक लाभ होता। —धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

सम्पादकीय

मुस्लिम परिवार में पुनर्जन्म का स्पष्ट उदाहरण

पुनर्जन्म की स्मृति के अनेक स्पष्ट उदाहरण इस समय तक लोगों के सामने आ चुके हैं, जिनमें से देहली की शान्ति देवी (जिस का पिछले जन्म का सम्बन्ध मथुरा के एक चौबे से था) और देहरादून की शान्ति देवी शास्त्रिणी जी की पुत्री मृदुला (पूर्व जन्म में सेठानी सत्यवती जी की पुत्री) के उदाहरण बहुत पत्रों में प्रकाशित हुए और शान्ति देवी का वृत्तान्त तो सार्वदेशिक सभा की ओर से अंग्रेजी में भी छपवा दिया गया। किन्तु हमारे मुसलमान भाई इस सिद्धान्त की सत्यता से प्राय: इन्कार करते हैं और उनके पं.लेखराम जी पं० रामचन्द्र जी देहलवी आदि आर्य विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ अधिकतर इस विषय पर होते रहे हैं। अभी हाल में बरेली के एक मुस्लिम परिवार में पूर्व जन्म की स्मृति का अद्भुत उदाहरण २६-६-५९ के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है जो इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बरेली के एक मुस्लिम अध्यापक श्री हश्मतउल्ला अंसारी के पंचवर्षीय करीम-उल्ला ने अपने पूर्व जन्म की अनेक घटनाएं बता कर लोगों को आश्चर्य चकित कर दिया है और मौलवियों को चक्कर में डाल दिया है। इस लड़के के (जिसका नाम करीम उल्ला है) पिता हश्मत उल्ला अंसारी जनाब इकरामअली के यहाँ बच्चों को पढ़ाते थे। एक दिन ईद पर मास्टर साहेब अपने लड़के के साथ जब वहां गये तो लड़का हाथ छुड़ा कर एक दम शीघ्रता से मकान के अन्दर चला गया। अन्दर चारपाई पर श्री इकरामअली की विधवा पुत्रवधू फ़ाति-मा बेगम बैठी हुई पान लगा रही थी। लड़के ने उन्हें देखते ही कहा—फ़ातिमा! एक पान हम भी लेंगे। अपरिचित लड़के के मुख से अपना नाम सुन फ़ातिमा बेगम को चक्कर आ गया। दो क्षण के पश्चात् उन्होंने आंखें खोल कर देखा तो लड़का तीन दरवाज़ों को पार कर एक कमरे का द्वार खोलनेका प्रयत्न कर रहा था। यह कमरा फ़ातिमा बेगम का था। फ़ातिमा ने लड़के को गोद में लेना चाहा किन्तु उसने कहा— तुम मेरी बीबी हो फ़ातिमा। मैं अपनी कुर्सी पर बैठूंगा।

ज्ञात हुआ कि फ़ातिमा बेगम के पति मुह-म्मद फ़ारूख की मृत्यु लगभग ६ वर्ष पूर्व हुई थी। बच्चे की बात सुनते ही फ़ातिमाबेगम मूर्छित हो गिर पड़ी। घर के अन्य लोग बाहर से मास्टर साहेब और जनाब इकराम अली को ले आए। दोनों ने देखा कि लड़का फ़ातिमा बेगम के कमरे के नीचे लगी हुई चटखनी हटा कर अन्दर एक कुर्सी पर बैठा है। थोड़ी देर बाद होश आने पर फ़ातिमा बेगम ने घबराते हुए सारी बातें जनाब इकराम अली को सुनाईं। पहले तो उन्हों ने इस बात को हंसी में उड़ाते हुए मन का वहम बताया किन्तु जब लड़के ने उन से कहा कि 'अब्बामियां सलाम। आप मुझे नहीं पहचानते मैं फ़ारूख हूं।' तो इकरामअली भी चक्कर खाकर गिर पड़े। लड़के ने घर वालों को बताया कि मेरा बैंक में ३००० रुपया जमा है। उस ने यह भी

बताया कि मैंने अपने बड़े भाई उमरआदिल के पास ५०००) रुपये पाकिस्तान भेजे हैं।

ध्यान रहे कि उमरआदिल आज-कल लाहौर में हैं और जूतों का व्यापार करते हैं। मृत मुहम्मद फ़ारूख का इरादा पाकिस्तान जाकर व्यापार करने का था। जनाब इकराम अली ने कहा कि 'पुनर्जन्म मे मैं विश्वास नहीं करता किंतु मेरी आंखों के सामने जो प्रत्यक्ष प्रमाण हैं उन्हें मैं झुठलाना नहीं चाहता।' आप ने बताया कि उस लड़के ने मेरी पुत्रवधू फ़ातिमा की वे तमाम बातें बताई हैं जो मेरे मरहूम (मृत) पुत्र मुहम्मद फ़ारूख़ के अलावा (अतिरिक्त) किसी को भी मालूम न थीं। लड़के ने यह भी बताया कि उस के ससुर के यहां एक बन्दूक थी जिसे किसी ने चुरा लिया था। इत्यादि

(नव भारत टाइम्स २७-६-५६)

इस के विषय में किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। हम ने भी अपने बरेली निवासी कुछ मित्रों को इसकी अधिक जांच के लिये कहा है और यदि कोई और उल्लेख योग्य बातें पता लगीं तो उन्हें हम पाठकों के सम्मुख रखेंगे। इस वृत्तान्त को पढ़ कर हमें वही सुप्रसिद्ध कहावत याद आई 'जादू वह जो सर पै चढ़ के बोले।' मुस्लिम परिवार के एक बालक का इस प्रकार पूर्व जन्म की बातें बताना इस सिद्धान्त की सत्यता का प्रबल प्रमाण है, इस बात को सब निष्पक्षपात विचारकों को माना ही पड़ेगा।

संस्कृत के महत्त्व पर श्री दिवाकर जी का महत्त्वपूर्ण वक्तव्य

श्री रङ्गनाथ रामचन्द्र दिवाकर भूतपूर्व राज्यपाल विहार ने पिछले दिनों एक लेख में कहा है कि 'संस्कृत हमारे जीवन मरण के समान है। उस के बिना हमारा सांस्कृतिक जीवन नष्ट हो सकता है। बिना संस्कृत प्रसार और प्रचार के भारतीय भाषाएं पंगु हो जाएंगी। संस्कृत भाषा के प्रसार के लिये आसेतु हिमाचल समस्त भारतीयों में प्रेम और उत्साह उत्पन्न करना चाहिये। सस्कृत के महत्त्व और सौन्दर्य के और उस के स्थैर्य या वैज्ञानिकता के सम्बन्ध में भी प्रचार किया जाना चाहिये। संस्कृत भाषा के सम्बन्ध में जनता को मन से उसकी कठिनता का भय दूर कर देना चाहिये और संस्कृत भाषा के प्रचार के सम्बन्ध में वे साधन जुटाने चाहियें जो जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं के प्रचार के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं या किये जा रहे हैं। संस्कृत साहित्य में ज्ञान देने वाले अनेक स्रोत विद्यमान हैं। इस लिये हमें कोई ऐसा मार्ग निकालना चाहिये जिस से संस्कृत की प्रगति हो सके और उसके वास्तविक गौरव को लोग समझ सकें।' (मध्यप्रदेशसंदेश १८ जुलाई १९५९) हम श्री दिवाकर जी के संस्कृत प्रसार विषयक इन विचारों से सम्पूर्णतया सहमत हैं। यह खेद की बात है कि कुछ पुरानी पद्धति के लोगों ने संस्कृत के विषय में एक भय लोगों के मन में उत्पन्न कर रखा है कि यह अत्यधिक कठिन भाषा है। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। संस्कृत का सामान्य ज्ञान ५, ६ महीनों में प्राप्त

किया जा सकता है यदि संवादशैली पर अधिक बल दिया जाए। संस्कृत के अध्यापन प्रकार को सरल बना कर इसे अधिक लोक प्रिय बनाने के लिये समस्त साधनों को काम में लाना चाहिये क्योंकि यह सब भाषाओं की जननी ही नहीं, मानव संस्कृति का मूल आधार है।

नवीन विश्वैक्यसङ्घ का सन्तोषप्रद अभिनन्दन

गुरुकुल पत्रिका के फाल्गुन २०१५ वि. के अङ्क में हमने नवीन विश्वैक्यसङ्घ आन्दोलन की चर्चा की थी जिसका उद्देश्य आध्यात्मिक आधार पर विश्वशान्ति को स्थापित करना है। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि इस शुभ आन्दोलन का सब देश विदेश के उत्तम विचारकों द्वारा स्वागत किया जा रहा है। अभी पिछले दिनों जब इस आन्दोलन के संयुक्त संयोजक श्री अनिलकुमार जी मुखोपाध्याय और डा. जे. स्मिथ माननीय राष्ट्रपति देशरत्न डा. राजेन्द्रप्रसाद जी से राष्ट्रपति भवन नई देहली में मिले तो उन्होंने इस आन्दोलन पर हर्ष प्रकट करते हुए यहां तक कहने की कृपा की कि मैं इस के लिये आपकी सेवार्थ सदा प्रस्तुत हूं। मैं आज के अशान्ति के युग में इस प्रकार के आन्दोलन को नितान्त अभिनन्दनीय समझता हूं। गुलमर्ग में जब आचार्य विनोबा जी से इन सज्जनों की भेंट हुई तो उन्होंने भी इस आन्दोलन को अत्यन्त सामयिक और उपयोगी मानते हुए इसे लोकप्रिय बनाने के लिये अनेक बहुमूल्य निर्देश दिये। नवीन विश्वैक्यसङ्घ की कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में हमारा 'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय, शृण्वन्तु विश्वे-अमृतस्य पुत्राः।' इत्यादि उदार वैदिक भावनाओं पर आश्रित इस आध्यात्मिक आन्दोलन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। हम इस में पूर्ण सफलता के लिये सर्व शक्तिमान् भगवान् से प्रार्थना करते और जनता का सहयोग चाहते हैं।

मांस आदि सेवन की निन्दनीय प्रवृत्ति बढ़ रही है

हमें यह देख कर अत्यन्त दुःख होता है कि यद्यपि हमारा देश स्वतन्त्र हो चुका है और उस के अधिकतर शासक अपने को महात्मा गान्धी जी द्वारा प्रचारित अहिंसा के विश्वासी बतलाते हैं और सब से अधिक प्रबल राजनैतिक दल कांग्रेस का ही है तो भी माँस अण्डादि सेवन की प्रवृत्ति लोगों में बढ़ती चली जा रही है। १५।७।५६ के 'हिन्दुस्तान' नई देहली में 'यह मांसाहारी दिल्ली' इस शीर्षक से जो लेख प्रकाशित हुआ है उसे पढ़ कर हमें अत्यन्त लज्जा आई कि अहिंसा को परम धर्म मानने वाले देश में यह शोचनीय अवस्था है। उस में भारत की राजधानी दिल्ली के विषय में बताया गया है कि 'इसमें प्रतिदिन १४०००० अण्डे और ७०० मुर्गी की खपत है। इसमें बकरे तथा अन्य प्रकार के मांस की खपत शामिल नहीं है। बताया जाता है कि राजधानी की मांग इससे भी अधिक है और इस मांग को पूरा करने के लिये कुछ ठोस कदम उठाये गये हैं जिसके अन्तर्गत इस वर्ष मुर्गी पालन केन्द्रों में १८६००० ४६० अण्डों का उत्पादन किया गया और निजी मुर्गी पालन केन्द्रों में जिन की संख्या ५०

के लगभग है १३०००० अण्डे उत्पादन किये गये। शेष की पूर्ति के लिये ३७८०० अण्डे बाहर बाज़ार से खरीदने पड़े। विगत वर्ष १४७३३ अण्डों को बाहर अन्य राज्यों से मंगवाया गया परन्तु इस वर्ष केवल ७४०८ अण्डे ही मंगवाये गये। इस योजना पर ४७५००० रुपये खर्च करने का अनुमान है और इस के सफल हो जाने पर १९६०-६१ ई. में राजधानी में प्रतिदिन एक लाख से ऊपर अण्डे और ५०० मुर्गों की सप्लाई की जायेगी इत्यादि। हम मांस और अण्डों के सेवन की इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति को नितान्त निन्दनीय समझते हैं। यह दुःख की बात है कि जहां विदेशों के लोग निरामिष भोजन को अधिक मात्रा में अपना रहे हैं जैसे कि अखिल विश्वशाकाहारि सम्मेलन के भाषणों से हमें ज्ञात हुआ था वहां अहिंसा को परम धर्म मानने वाले इस देश में मांस और अण्डों के खाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है जिस पर हमने देखा था कि विदेशों के निरामिष भोजियों ने भी अत्यन्त आश्चर्य और खेद प्रकट किया था। हम इस के लिये अपने अनेक उच्च कोटि के श्री जवाहरलाल जी नेहरू जैसे नेताओं को भी दोषी और उत्तरदायी समझते हैं। पिछले दिनों केरल के भू. पू. मुख्य मन्त्री श्री नम्बूदरीपाद जब शिमला में श्री नेहरू जी के अतिथि बने तो उन्होंने पत्रकारों के यह पूछने पर कि कश्मीर के ब्राह्मण ने केरल के ब्राह्मण को क्या दक्षिणा दी? बताया कि उन्होंने मछली और अनेक प्रकार का मांस खिलाया जिस से संकेत मिलता है कि श्री प्रधान मन्त्री जी स्वयं भी इन अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करते हैं। हम चाहते हैं कि हमारे मान्य प्रधान मन्त्री जी जो अहिंसा को श्रेष्ठ मानते हुए इसका पञ्चशील आदि के नाम से अन्य देशों में भी प्रचार चाहते और महात्मा गान्धी जैसे निरामिष भोजी प्रचारक के नाम की बात-बात में दुहाई देते हुए नहीं थकते, माँसाहार का सर्वथा परित्याग कर एक उत्तम और अनुकरणीय उदाहरण जनता के सम्मुख प्रस्तुत करें। आर्यसमाज और जीव दया प्रचारक मण्डलादि संस्थाओं को अपने निरामिष भोजन विषयक प्रचार को प्रबल बना कर इस निन्दनीय प्रवृत्ति को दूर करने का निरन्तर यत्न करना चाहिये। सब से अधिक निन्दनीय बात तो यह है कि कई अंशों में हमारी सरकार के कई अधिकारी स्वयं मांस भोजन को प्रोत्साहित करते हैं। ऐसा करना नितान्त अनुचित है।

सत्यार्थ प्रकाश जलाने की मूर्खता पूर्ण धमकी

वीर अर्जुन के १-७-५९ तथा अन्य समाचार पत्रों में यह समाचार पढ़कर हमें अत्यन्त आश्चर्य और दुःख हुआ कि सिखराज्य सम्मेलन में जो ३० जून को बैरिस्टर करतारसिंह जी की अध्यक्षता में अमृतसर में हुआ एक प्रस्ताव स्वीकृत किया गया जिस में सत्यार्थ प्रकाश को जब्त करने की मांग करते हुए यह धमकी दी गई कि यदि आर्यसमाज ने गुरुमुखी का विरोध जारी रखा तो 'सत्यार्थ प्रकाश' की प्रतियों को जला दिया जाएगा।

यदि यह समाचार सत्य है जिस में सन्देह

का कारण प्रतीत नहीं होता तो हम इस माँग और धमकी को नितान्त मूर्खता और अविवेक पूर्ण समझते हुए इस का घोर प्रतिवाद करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। यदि आर्यसमाज गुरुमुखी को जबर्दस्ती आर्यों पर लादने का विरोध करता है तो इससे सत्यार्थ प्रकाश के जलाने की बात उठाना कितना उपहासास्पद है ! एक का दूसरे के साथ सम्बन्ध ही क्या है ? सत्यार्थ प्रकाश में जहां महर्षि दयानन्द ने शुद्ध सत्य प्रचार की भावना से प्रेरित होकर मतमतान्तरों की अनुचित असङ्गत बातों की समालोचना की है उसमें यदि सिखमत की भी कुछ बातों की आलोचना की गई है तो उसका उन्हें युक्तियुक्त उत्तर देना चाहिये। वे भी यदि मुसलमानों जैसी मतान्धता और असहिष्णुता का प्रदर्शन करते हुए उस के तर्क के उत्तर देने का सामर्थ्य न रखते हुए सत्यार्थ प्रकाश की जप्ती की मांग करेंगे तो स्पष्टतया अपनी अयोग्यता और असमर्थता को ही प्रकट करेंगे और कुछ नहीं। सत्यार्थ प्रकाश को जलाने की धमकी तो इतनी अधिक मूर्खतापूर्ण है कि उसके विषय में कुछ लिखना भी अपना समय नष्ट करना है। हम बुद्धिमान् सिक्ख नेताओं से यह आशा करते हैं कि वे अपने अनुयायियों को ऐसी अविवेकपूर्ण उपहासास्पद मांगें प्रस्तुत करने और धमकियां देने से रोकेंगे। ऐसी असङ्गत मांग प्रस्तुत करना और धमकियाँ देना किसी अच्छे वर्ग को शोभा नहीं देता।

दहेज प्रथा का घोर अभिशाप

बम्बई के राज्यपाल श्रीयुत श्री प्रकाश जी द्वारा संस्थापित वाराणसी के 'मेल मिलाप' नामक साप्ताहिक पत्र के २० जुलाई १९५९ के अङ्क में प्रकाशित निम्न समाचार को पढ़कर किस को दुःख न हुआ होगा जिसका शीर्षक है 'दहेज की कमी से मार डाला'। समाचार यह है कि फ़िरोज़ाबाद के एक रईस ने १६ हज़ार के बजाय कन्यापक्ष से १० हजार दहेज पाने पर पतोहू (पुत्र वधू) को घर ला कर मार डाला और अब वे पुलिस की पकड़ में आ गये हैं। दहेज की कुप्रथा के घोर अभिशाप का यह अकेला उदाहरण नहीं है, सैकड़ों ऐसे उदाहरण हो चुके हैं और अब भी हो रहे हैं जो समाचार पत्रों में प्रकाशित नहीं होते किन्तु जिन्होंने हज़ारों घरों को नरक धाम बना रखा है। २८-७-५९ के 'दैनिक हिन्दुस्तान' में एक समाचार छपा है जो उपर्युक्त समाचार से अद्भुत मेल खाता है और वैसा ही हृदय विदारक है। उसका शीर्षक 'पैसे के लालच में पत्नी का गला घोंट दिया' यह है। वह हृदय विदारक भाषण समाचार जो उस युवक पति की हृदय हीनता को सूचित करता है निम्न है—

संगरूर २७ जुलाई। संगरूर से १२ मील दूर सुनाम ग्राम में एक लोभी पति ने अपनी नौजवान और सुन्दर पत्नी को विवाह के २ वर्ष बाद गला घोंट कर मार दिया क्योंकि उसने पिता के घर से १० हज़ार रुपया लाकर दिया था और अधिक लाने में असमर्थता प्रकट की थी जब कि उससे माँग १५ हज़ार की जा रही थी। शव को मंजिल से नीचे फैंक दिया गया ताकि यह आत्महत्या का मामला समझा

जाए। इस प्रकार के भीषण समाचार दहेज प्रथा के घोर अभिशाप के सूचक हैं जिस पर विधि (कानून) द्वारा प्रतिबन्ध लगाना भी हमें सर्वथा उचित प्रतीत होता है। हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई है कि केन्द्रीय शासन द्वारा दहेज प्रतिबन्धक एक विधेयक (बिल) संसत् के आगामी अधिवेशन में जो ३ अगस्त से प्रारम्भ होगा प्रस्तुत किया जा रहा है। अनेक सुशिक्षित युवकों में भी यह दहेज मांगने की निर्लज्जता और लोभ सूचक प्रवृत्ति बढ़ रही है, यह अत्यन्त खेद जनक बात है जिस की रोक-थाम वर्तमान परिस्थिति में अत्यावश्यक हो गई है। माता पिता की अपनी शक्त्यानुसार कन्या के हित के लिये कुछ देने की बात अलग है, इस प्रकार निर्लज्जता पूर्वक मांगें प्रस्तुत करना और वे पूरी न होने पर नव वधू के जीवन को सङ्कटमय बना देना घोर निन्दनीय कार्य है। हम आशा करते हैं कि केन्द्रीय शासन द्वारा प्रस्तुत यह विधेयक अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो सकेगा क्यों कि ऐसे कानूनों से बचाव का प्रभावशाली धनी लोग कुछ न कुछ उपाय निकाल लेते हैं। कानून के साथ-साथ इस विषय में प्रेम पूर्वक प्रचार द्वारा जनमत को जागृत करना और इस प्रकार निर्लज्जता पूर्वक दहेज की मांग करने वालों को सामाजिक बहिष्कारादि साधनों द्वारा सीधे रास्ते पर लाना भी आवश्यक है। ऐसे विषयों में केवल विधान प्रायः पर्याप्त नहीं होता।

मान्य उपराष्ट्रपति जी का जर्मनी में उचित मान

हमें यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि जर्मनी के फ्रैंकफर्ट नगर में हमारे माननीय सुयोग्य उपराष्ट्रपति डा राधाकृष्णन जी को जुलाई मास में गेटे पदक प्रदान किया जो ऐसे व्यक्ति को दिया जाता है जिसने आध्यात्मिक तथा साँस्कृतिक क्षेत्र में असाधारण प्रतिभा दिखाई हो। जर्मनी के चोटी के विद्वान् और समाज सेवकों की समिति इस पुरस्कार के योग्य व्यक्तियों का चुनाव करती है। किसी भारतीय को यह सम्मान पहली बार दिया जा रहा है। हम माननीय उपराष्ट्रपति जी का इस सन्मान की प्राप्ति पर जिस के वे सर्वथा योग्य हैं हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि वे आध्यात्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में अपनी असाधारण प्रतिभा का सर्वदा उपयोग करते रहेंगे। जिस आध्यात्मिकता, प्रेम, अहिंसा और विश्व शान्ति के सन्देश को वे देश विदेशों में देते रहते हैं उसकी सर्वत्र बड़ी भारी आवश्यकता है इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

स्वाध्याय के लिये चुनी हुई पुस्तकें

वेद का राष्ट्रीय गीत

श्री पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति

इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने अथर्ववेद के प्रसिद्ध सूक्त की एक एक ऋचा का अन्वय पूर्वक अर्थ किया है। मूल सूक्त की भव्य कविता वाचक को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। इसमें मातृभूमि की गुण गरिमा का गान किया गया है जिसे पढ़ कर मातृभूमि के प्रति श्रद्धा से नत हो जाना पड़ता है। पुस्तक सभी प्रकार से संग्रह करनी चाहिये।

मूल्य केवल पांच रुपये, डाक व्यय अलग।

ईशोपनिषद् भाष्य

श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत पुस्तक में लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् लेखक ने 'ईशोपनिषद्' का बहुत सुन्दर हिन्दी भाष्य लिखा है। इसमें आधुनिक युग के अनुसार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। इस भाष्य का मनन करने से वैयक्तिक, सामाजिक तथा जागतिक तीनों प्रकार की शान्ति सुलभ हो सकती है। ज्ञान पिपासुओं के लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है।

मूल्य केवल दो रुपये, डाक व्यय अलग।

हमारा चुना हुआ साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ईशोपनिषद् भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२.००
वेद का राष्ट्रीय गीत	श्री प्रियव्रत	५.००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	,, ,,	५.००
वरुण की नौका, २ भाग	,, ,,	६.००
वैदिक विनय ३ भाग, श्री अभय	हर एक	२.००
वैदिक सूक्तियां	श्री रामनाथ	१.७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त	१.५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२.००
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२.००
ब्राह्मण की गौ	,,	.७५
वेदगीतांजलि	श्री वेदव्रत	२.००
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, ३ भाग		३.७५
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२.००
वैदिक पशुयज्ञमीमांसा	श्री विश्वनाथ	१.००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१.२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२.००
लहसुन : प्याज	श्री रामेश बेदी	२.५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	,,	३.००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	,,	३.२५
वेदों का यथार्थ स्वरूप	श्री धर्मदेव वि० मा०	६.५०
वैदिक कर्तव्य शास्त्र	,,	१.५०

पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाइये। धार्मिक संस्थाओं के लिये विशेष रियायत का भी नियम है।

पुस्तक भण्डार, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (जि० सहारनपुर)।

मुद्रक : रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक : धर्मपाल विद्यालंकार, स०मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

सम्पादक : श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

गुरुकुल पत्रिका

सम्पादक — श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष ११ आषाढ़ २०१६ अङ्क ११

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क १३१

जून १९५९

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय हरिद्वार

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

शिक्षा-पद्धति में सुधार के सुझाव — श्री शम्सुद्दीन जी एम. ए. बी. टी. एम. ईडी.

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक | **मूल्य एक प्रति** | **वर्ष ११** | **आषाढ़**

विदेश में ६) वार्षिक | **३७ नये पैसे (छः आने)** | **अंक ११** | **२०१६**

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेदामृत गीत

ओं प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥

अथर्व. १९। ६२। १।

मंत्र का छायानुवाद

प्रभु तुम मुझ को ऐसा कर दो !

मैं कहूं ज्ञान की बात सदा
कुछ ऐसी शिष्ट करो वाणी,
बनूं द्विजों का मैं प्रिय जिससे
ऐसे गुण दो हे गुण दानी !

मैं भद्रशील बन जाऊं वर दो।
प्रभु तुम मुझको ऐसा कर दो॥

मेरे इन निर्बल हाथों में
प्रभु ऐसा बल दे दो जिससे,
बनूं शूर-वीरों का प्रिय मैं
निर्बल त्राण करूं औ' इनसे।

बन जाऊं अजेय, बल भर दो।
प्रभु तुम मुझको ऐसा कर दो॥

मैं खिले फूल की या सुन्दरता
बन जाऊं सब ही का प्यारा,
किन्तु पाप-कर्दम से फिर भी
रहूं कमल पत्र सम न्यारा।

हे ईश मुझे तुम सुन्दर कर दो।
प्रभु तुम मुझको ऐसा कर दो॥

खूब कमा करके मैं पैसा
वैश्यों का प्यारा बन जाऊं,
निर्मल मन से करके सेवा
शूद्रों का दिल भी हर लाऊं।

बनूं सभी का प्यारा ऐसे गुण भर दो।
प्रभु तुम मुझको ऐसा कर दो॥

—ब्र० सत्येन्द्र कुमार 'सरोज' १२ श्रेणी।

वेद का नित्यत्व और अपौरुषेयत्व

ऋषि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द के विचार

श्री भवानीलाल जी भारतीय, एम. ए., सिद्धान्त वाचस्पति, जोधपुर

हमारे देश की परम्परा शब्द प्रमाण को अत्यधिक महत्व देती आई है। दूसरे शब्दों में यदि हम यह कह दें कि हम शब्दप्रमाणवादी हैं, [1]तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी। दार्शनिक चिन्तन की वैदिक प्रणाली जिसके अन्तर्गत सांख्य,योग,न्याय, वैशेषिक, वेदान्त और मीमांसा आते हैं—एक स्वर से वेद को परम प्रमाण घोषित करते हैं। यह सम्भव है कि वेद विषयक विस्तार में इन दर्शनों में किंचित् भेद हो, परन्तु जहां तक प्रामाणिकता का सम्बन्ध है, वेद का नाम आते ही सब मौन और श्रद्धावनत हो जाते हैं।

ऋषि दयानन्द ने अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वैदिक दर्शनों की वेद विषयक धारणाओं को उद्धृत करते हुये वेद ज्ञान की नित्यता और प्रामाणिकता स्वीकार की है। 'अथ वेदानां नित्यत्वविचारः' शीर्षक के अन्तर्गत उन्होंने वेदों के नित्यत्व को पतञ्जलि कृत महाभाष्य के आधार पर सिद्ध करने के अनन्तर दर्शनकार ऋषियों की सम्मतियां उद्धृत की हैं। भूमिका के इस प्रकरण का भली भांति विचार कर लेने से स्पष्ट हो जाता है कि वेदों की नित्यता और प्रामाणिकता के विषय में दर्शनकार एक मत हैं और जो मत वैदिक दर्शनकार ऋषियों का है, वही स्वामी दयानन्द का है। इतना ही नहीं परन्तु यह कहना भी अनुचित न होगा कि शताब्दियों से विलुप्त वेद विषयक चर्चा को पुनरुज्जीवित करने का श्रेय भी दयानन्द को ही है। भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में दयानन्द के योगदान की चर्चा करते हुये श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने लिखा है—"अपनी भावुक अपील के लिये दयानन्द सरस्वती ने युगों की दृढ़ आधार शिला वेदों का आश्रय लिया। परन्तु वेदों के विषय में दयानन्द की अपील केवल भावुकतापूर्ण ही नहीं थी। उसके पीछे एक सुनिश्चित विचारधारा थी, एक निश्चित विश्वास था जो युक्ति और तर्क पर आधारित होने के कारण भारतवासियों को चट्टान के समान सुदृढ़ और दुर्लंघ्य लगता था।"

अब हम वेदों के विषय में ऋषि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द की विचारधाराओं का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हैं। वेदों की नित्यता के विषय में ऊपर ऋषि दयानन्द की सम्मति का उल्लेख किया गया है। स्वामी विवेकानन्द की भी वेदों के विषय में यही धारणा थी। अपने एक भाषण में उन्होंने कहा "वेद नामक शब्द राशि किसी पुरुष के मुंह से नहीं निकली है। उसके साल और तारीख का अभी निर्णय नहीं हुआ है और न आगे चल कर होगा ही। हम हिन्दुओं के मतानुसार वेद अनादि और अनन्त हैं। जगत् के अन्यान्य धर्म

---

१. शब्द प्रमाणका वयम्। यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्। महाभाष्य पस्पशान्हिक।

अपने शास्त्रों को यही कह कर प्रामाणिक सिद्ध करते हैं कि वे ईश्वर नामक व्यक्ति अथवा किसी दूत या पैगम्बर की वाणी हैं, पर हिन्दू कहते हैं, वेदों का कोई प्रमाण नहीं है ! वेद स्वतः प्रमाण हैं क्योंकि वेद अनादि और अनन्त हैं, वे ईश्वरीय ज्ञान राशि हैं। वेद कभी लिखे नहीं गये न कभी सृष्ट हुए। वे अनादि काल से वर्तमान हैं। जैसे सृष्टि अनादि और अनन्त है वैसे ही ईश्वर का ज्ञान भी। 'वेद' का अर्थ है यह ईश्वरीय ज्ञान की राशि। 'विद्' धातु का अर्थ है जानना।[1]'

विवेकानन्द वेदों को नित्य, अपौरुषेय ईश्वरीय ज्ञान का संग्रह मानते हैं। वह अनादि है और अनन्त है क्योंकि उस का परमात्मा भी अनादि और अनन्त है। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रचारित इस धारणा का कि वेदों की रचना भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के द्वारा हुई है, स्वामी विवेकानन्द ने बलपूर्वक खण्डन किया। उन्होंने अपने एक भाषण में कहा– "हिन्दू यह विश्वास करने को कभी तैयार नहीं हैं कि वेदों का कुछ अंश एक समय में और कुछ अन्य समय में लिखा गया है। इनका अब भी यह दृढ़ विश्वास है कि समग्र वेद एक ही समय में उत्पन्न हुए थे अथवा उनकी सृष्टि कभी नहीं हुई, वे चिरकाल से सृष्टिकर्ता के मन में विद्यमान थे।"[2]

स्वामी विवेकानन्द ने भी स्वनिर्मित ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वेद नित्यत्व विषय के अन्तर्गत लिखा—"ईश्वरस्य सकाशाद्वेदानामुत्पत्तौ सत्यां स्वतो नित्यत्वमेव भवति, तस्य सर्व सामर्थ्यस्य नित्यत्वात्।" और इसके भाषार्थ में लिखा—"वेद ईश्वर से उत्पन्न हुये हैं इससे वे स्वतः नित्य स्वरूप ही है क्योंकि ईश्वर का सब सामर्थ्य नित्य ही है।"[1] इस प्रकार हम यह देखते हैं कि कि वेदों के नित्यत्व के विषय में दोनों आचार्य प्राचीन प्रचलित परम्परा को स्वीकार करने के पक्ष में हैं।

वेदों के अपौरुषेयत्व के सिद्धान्त को भी दोनों आचार्यों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं यह वेद के अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य से भली भांति प्रमाणित है। परन्तु प्रायः यह शंका की जाती है कि वेदमंत्रों पर जिन जिन ऋषियों का नाम लिखा रहता है उन ऋषियों को ही तत् तत् मंत्र का कर्ता क्यों न मान लिया जाय ? पाश्चात्य विद्वानों के मत में तो ये ऋषि ही मंत्रों के रचयिता थे परन्तु भारतीय परम्परा इन ऋषियों को मंत्रकर्ता न मान कर मंत्रद्रष्टा मानती है,[2] जिन्होंने मंत्रों के रहस्य का दर्शन किया और मंत्रगत चरम सत्य का साक्षात्कार कर वेद वाणी का संसार में प्रचार किया। इन्हीं द्रष्टा ऋषियों की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिये अथवा उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापनार्थ उनका नाम वेद

१. भारत में विवेकानन्द पृष्ठ २५।
२. भारत में विवेकानन्द पृष्ठ १७५।

१. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृष्ठ ३६।
२. निरुक्तकार ने 'ऋषि' शब्द का विवेचन करते हुये लिखा–"ऋषिर्दर्शनात्" २।१।

मंत्रों के साथ लिखा रहता है। आचार्य दयानन्द ने अपनी भूमिका में इस विषय में उचित पूर्व-पक्ष की स्थापना करने के अनन्तर उसका उचित समाधान भी किया जो इस प्रकार है—"यो मन्त्रसूक्तानामृषिर्लेखितस्तेनैव तद्रचितमिति कुतो न स्यात्"? अर्थात्"जो सूक्त और मंत्रों के ऋषि लिखे जाते हैं उन्होंने ही वेद रचे हों ऐसा क्यों नहीं माना जाए ?"

उत्तर—"मैवं वादि। ब्रह्मादिभिरपि वेदानामध्ययनश्रवणयोः कृतत्वात्। यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै०' इति श्वेताश्वतरोपनिषदादि वचनस्य (अ० ६। १८) विद्यमानत्वात्। एवं यदर्षीणामुत्पत्तिरपि नासीत्तदा ब्रह्मादीनां समीपे वेदानां वर्तमानत्वात्।'[1] अर्थात् "ऐसा मत कहो, क्योंकि ब्रह्मादि ऋषियों ने भी वेदों का अध्ययन और श्रवण किया है। श्वेताश्वतर उपनिषद में लिखा है कि "जिसने ब्रह्मा को भी उत्पन्न किया और ब्रह्मादि को सृष्टि की आदि में अग्नि आदि के द्वारा वेदों का भी उपदेश किया।" इसी प्रकार ऋषियों ने भी वेदों को पढ़ा है। क्योंकि जब मरीच्यादि ऋषि और व्यासादि मुनियों का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय में भी ब्रह्मादि के समीप वेद विद्यमान थे।

१. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृ० २५।

स्वामी विवेकानन्द ने भी ऋषियों के मंत्र-द्रष्टा होने का ही समर्थन किया है। उन्होंने अपने एक व्याख्यान में कहा—"ऋषि शब्द का अर्थ है मंत्रद्रष्टा" यह ज्ञान तथा भाव उनके अपने विचार का फल नहीं था। जब कभी आप सुनें कि वेदों के अमुक अंश के ऋषि अमुक हैं, तब यह मत सोचिये कि उन्होंने उसे लिखा या अपनी बुद्धि से बनाया है, बल्कि पहले ही से विद्यमान भावराशि के वे द्रष्टा मात्र हैं—वे भाव अनादि काल से ही इस संसार में विद्यमान थे।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद के नित्यत्व और अपौरुषेयत्व के विषय में इन दोनों आचार्यों में मतैक्य सा ही दीख पड़ता है परन्तु वेद विषयक अन्य विस्तृत बातों में उनमें पर्याप्त मतभेद भी है, जिसका विचार कभी यथासमय किया जायगा।[2]

१. भारत में विवेकानन्द पृ० २५–२६।
२. लेखक की अप्रकाशित पुस्तक—ऋषि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द।

वेद सूर्य

जैसे माता-पिता अपनी सन्तानों पर कृपादृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार से छूट कर विद्या विज्ञानमय सूर्य को प्राप्त हो कर अत्यानन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जाएं।

—महर्षि दयानन्द 'सत्यार्थप्रकाश' में।

अणु अणु में बल

"अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं विष्यामि मायया" अ० १६।६८।१।

कुसुमों से चांद सा थाल भर,
नभ के वितान के नीचे शृङ्गार कर,
स्वयं प्रकृति रमा मनुहारी,
खिली केसर की सी क्यारी,
और यह दीर्घ काय हिमवन्त ?
हिमवन्त को हरित, शुभ्र, गौर यवनिका सजाती,
मेरु-मेखला, मेघमाला—
सुरसरि मंगल मुखी श्रुति गीत हैं गाती,
देने जग को दिव्य जीवन का सन्देश,
हुआ अणु अणु का जन्म विशेष,
अणु अणु से लाभान्वित हो यह महादेश,
कर्तव्य की चांदनी पर,
जग को आलोकित कर,
हे आनन्द कन्द
छन्दमय स्वच्छन्द
देह और भोग से परे है आत्मानन्द
ज्ञानी जानते भोग का अन्त
आत्मा और त्याग का आदर्श ज्ञान
उर नयन कर्म-धर्म से परिपूर्ण विहान
ज्ञानी के निकट नहीं रहता तिमिर
अन्यों के चिति केन्द्रों में भी उगता शौर्य बल मिहिर
हे अव्यय ! समष्टि व्यष्टि भेद को खोल दे तेरे बल
हमारी राष्ट्र कीर्ति हो धवल
जग-जीवन की दिशाओं में खिलें कमल।

—श्री कमल जी साहित्यालङ्कार।

मीटर प्रणाली और राष्ट्रीय एकता

श्री सेठ गोविन्ददास जी संसद सदस्य

मेरा जन्म देश के एक वैश्यकुल में हुआ। व्यापार भी मेरे परिवार में ऊंचे दर्जे का होता था। ऐसे व्यापारी परिवार में उत्पन्न होकर मुझे नाप-तोल के ढंग से केवल परिचित ही नहीं वरन् उसमें प्रवीण होना चाहिये था। परन्तु हुआ कुछ और ही। मेरी रुचि लक्ष्मी के बदले सरस्वती की उपासना की ओर झुक गई और इसका फल यह हुआ कि मैं व्यापारी न बनकर लेखक बन गया। ऐसी दशा में नाप-तोल के बाट और पैमानों के बारे में मैं एक ऐसे साधारण नागरिक के रूप में विचार करना उचित समझता हूं जिसका देश के जनजीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

मेरे जीवन में साहित्य के बाद जो दूसरी चीज आई वह थी देश-सेवा। कांग्रेस के संगठन से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा और स्वतन्त्रता के लिये चलाये गये सभी आन्दोलनों में मैंने आगे बढ़कर भाग लिया। परन्तु स्वतन्त्रता से पहले और बाद भी जनता के सुख-दुःख में भाग लेना, उसकी समस्याओं को समझना और उन्हें हल करने के लिये यथाशक्ति यत्न करना मुझे अत्यन्त प्रिय रहा है। स्वराज्य हो जाने के बाद तो इस कार्य को मैं और भी अधिक महत्व देने लगा हूं। जनजीवन को उन्नति की ओर अग्रसर करने का प्रश्न मेरे मन से कभी दूर नहीं होता। इसमें जिन उपायों से सहायता मिलती है, मैं उनका अधिक समर्थन करता हूं।

हमारा जीवन दीर्घकालीन पराधीनता के कारण सभी क्षेत्रों में अस्तव्यस्त हो गया है। तोलने और नापने की क्रियाएं भी जीवन के महत्वपूर्ण अंग हैं। इनसे हमारा कदम-कदम पर वास्ता पड़ता है। परन्तु दुःख की बात है कि ये भी बड़ी बुरी दशा में हैं। भिन्न-भिन्न प्रदेशों की बात जाने दीजिये एक प्रदेश में ही तरह-तरह के बाट और पैमाने प्रयोग में लाये जाते हैं। मेरे अपने मध्यप्रदेश की दशा भी इस दृष्टि से अच्छी नहीं है। एक जिले में यदि एक चीज तोल पर बिकती है तो दूसरे जिले में वही नापकर बिकती है। फिर इसी एक चीज को नापने और तोलने के पैमाने और बाट भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं।

खरीद बिक्री में सुविधा

इस तरह नापने और तोलने में कठिनाई तो होती ही है, समस्त देश में एकता की भावना भी उत्पन्न नहीं होने पाती। एक प्रकार का बाट काम में लाने वाला एक जिले का व्यक्ति दूसरे प्रकार के बाट इस्तेमाल करने वाले दूसरे जिले के व्यक्ति को पराया जैसा मानता है। फिर ऐसे दो जिलों के मध्य जब किसी वस्तु की खरीद बिक्री होती है तो हिसाब किताब में बड़ी झंझटें होती हैं और विनिमय की दरों का ठीक वैसे ही प्रयोग करना पड़ता है मानो भारत और अमेरिका अथवा चीन और इङ्गलैंड के बीच कोई खरीद हो रही हो। इस लिए जब संसद ने समस्त देश में एक सी प्रणाली के बाट और पैमाने चलाने का निश्चय किया तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरे विचार से इससे देश

में एकरूपता तो उत्पन्न होगी ही, साथ ही खरीद विक्री में भारी सुविधा भी हो जायगी।

पुराने बाटों को छोड़ने में लोगों के मन में विभिन्न भाव उठ सकते हैं। जो कामकाजी व्यक्ति हैं वे तो ऐसी नई चीज़ को तुरन्त अपना लेते हैं जिससे उनके कामकाज में सुविधा हो जाती है। ऐसे व्यक्तियों में हमारे अधिकांश व्यापारी आ जाएंगे। बाजार में किसी भी नई चीज के आते ही वे तुरन्त उसे अपनाने को दौड़ते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रगति की दौड़ में सदा आगे रहने का प्रयत्न करते हैं। मैं उनकी भावना की प्रशंसा करता हूं। ये लोग नये बाट और पैमानों को अपनाने के लिए उतावले हुए बैठे हैं। पर कुछ कामकाजी व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो आगापीछा देखकर आगे बढ़ते हैं। ये ऐसे व्यापारी होते हैं जो अपने सभी कार्यों में वशभर लाभ करने की चेष्टा करते हैं। ये अपने पुराने बाटों को तब तक काम में लाते रहेंगे जब तक नये बाटों का प्रयोग अनिवार्य नहीं हो जायगा। नये बाटों के खरीदने पर वे रुपये तभी खर्च करेंगे जब उनके पुराने बाट काम में लाए ही नहीं जा सकेंगे। ये व्यक्ति बड़े व्यवहार चतुर होते हैं। परन्तु मेरे विचार से इन्हें उस समय बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा जब पुराने बाट त्याग कर सहसा नये बाटों का प्रयोग करना होगा। नयी वस्तु से परिचित होने में कुछ समय लगेगा। इन व्यक्तियों को चाहिये कि वे लोभ न करें और नये बाटों को पहले से ही खरीद लें और न केवल स्वयं ही उनसे परिचित हो जायं वरन् अपने ग्राहकों को भी परिचित करा दें। वे चाहें तो कुछ दिनों तक नये तथा पुराने दोनों तरह के बाटों का साथ साथ प्रयोग करते रह सकते हैं। ऐसा करने से उनके पुराने बाट भी सहसा बेकार नहीं होंगे और नये बाटों का प्रयोग करने में भी प्रवीण हो जाएंगे।

आर्थिक और भावात्मक विरोध

व्यापारियों के लिये बाट और पैमाने यद्यपि अनिवार्य हैं तथापि जन-साधारण के लिये भी वे अत्यन्त आवश्यक हैं। शायद ही ऐसा घर होगा जिसमें कभी कोई वस्तु तोली न जाती हो। चतुर गृहिणियां इसलिए अपने घर में तराजू और बाट अवश्य रखती हैं। तोल में घट बढ़ हो जाना मामूली सी बात है। फेरी वाले प्रायः ही कम तोल कर चलते बनते हैं। जिस गृहिणी के पास तराजू होती है वे किसी सौदे की तोल पर सन्देह होते ही तत्काल अपनी तराजू से तोल कर सन्तोष कर लेती हैं और ठगे जाने से बच जाती हैं। इस प्रकार अनेक घरों में भी तराजू और बाट उनके अनिवार्य अंग होते हैं। नये बाट चलने पर सभी घरों में पुराने बाटो को हटा कर नये बाट खरीदने का प्रश्न उत्पन्न होगा। इसके साथ कोई आर्थिक कठिनाई अनुभव करेगा तो कोई भावात्मक कठिनाई। आर्थिक कठिनाई की अपेक्षा मैं भावात्मक कठिनाई को अधिक महत्व देता हूं। निर्जीव वस्तुओं के साथ भी बहुत दिनों तक सम्पर्क रहने पर हमारा हृदय उनके साथ बंध जाता है। पुराने बाटों का हम ज्ञात नहीं कितने दिनों से प्रयोग करते आ रहे हैं। इसलिए

वे हमारे हृदय में स्थान किये हुए हैं। अब नये बाट आने पर इन्हें त्यागने से हृदय में टीस होनी स्वाभाविक है। पर यथार्थता की ओर से भी हमें आंखें बन्द नहीं करनी होंगी। अतः देश और अपनी भावी प्रगति को ध्यान में रखते हुए हमें यह टीस भी सहनी होगी और ये बाट भी अपनाने होंगे।

संसद ने निश्चय किया है कि नये बाट मीटर प्रणाली के होंगे। कुछ क्षेत्रों का विचार है कि नये बाटों का प्रयोग करने में लोगों को बहुत कठिनाई होगी। ये उनके लिये एकदम नये होंगे। कोई भी नयी चीज जब प्रयोग में आती है तो कुछ न कुछ कठिनाई होती है। इसी लिये मैं यह नहीं कहता कि कठिनाई नहीं होगी। परन्तु मुझे अपने देश की जनता की बुद्धि और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर लेने की क्षमता पर अगाध विश्वास है। हमारे अपढ़ कारीगर पेचीदा मशीनों को चलाने में चटपट प्रवीण हो जाते हैं। यदि उनके आगे कोई कठिनाई आती है तो वे और भी अधिक साहस के साथ उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। इसी लिये नये बाट और पैमानों की कठिनाइयां भारतीय जनता के आगे कोई बाधा उपस्थित नहीं करेंगी। इनके चलते ही वह शीघ्र ही उनके प्रयोग सीख लेगी।

राष्ट्रीय बचत

मीटर प्रणाली के बाट और पैमानों से गणित में कितनी सुभीता हो जाएगी, विज्ञान के प्रशिक्षण में इससे कितनी सहायता मिलेगी आदि प्रश्नों पर मैं कुछ कहना उचित नहीं समझता। यह काम तो हमारे वैज्ञानिकों, गणितज्ञों तथा शिक्षा-शास्त्रियों का है। वे कहते हैं कि मीटर प्रणाली से बच्चों की मैट्रिक तक की शिक्षा में एक वर्ष की बचत हो जायेगी। यदि ऐसा हो सके तो इससे अच्छी बात और क्या होगी? हमारे कितने करोड़ बच्चों के कितने करोड़ वर्ष बचेंगे जो निश्चय ही एक बड़ी भारी राष्ट्रीय बचत होगी। इसके साथ और पैमानों के नये सुधार को मैं राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने तथा जनता के मैट्रिक स्तर को ऊंचा करने की दृष्टि से बहुत अधिक महत्व देता हूं। पंजाब, केरल, बम्बई, बंगाल, उत्तरप्रदेश, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, कन्नड़ आदि सभी प्रदेशों में नाप-तोल की एक सी प्रणाली हो जाने पर हम कहीं भी जाकर अपना कारोबार सुविधा के साथ चला सकेंगे और पारस्परिक व्यवहार की बहुत सी कठिनाइयां दूर हो जाएंगी। यह एक राष्ट्रीय हित होगा जिसे हम मीटर प्रणाली अपना कर प्राप्त करेंगे।
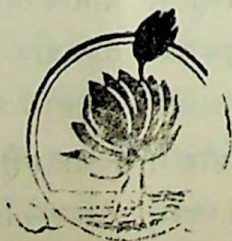
मध्य युग के अन्त में भारत

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

मैंने इससे पहले लेख में उर्दू संस्कृति की चर्चा की थी। जिस समय भारत की राजनीति में पट परिवर्तन हुआ, अर्थात् मुगल सम्राट् का प्रभुत्व नष्ट हुआ और अंग्रेजों की सत्ता कायम हुई, उस समय भारत के बड़े भाग में उर्दू संस्कृति की ही मुख्यता थी। यहां कुछ विस्तार से यह बतलाना आवश्यक है कि भाषा के अतिरिक्त वह उर्दू संस्कृति क्या और कैसी थी जिसकी ओर मैं निर्देश कर रहा हूं।

जैसे उर्दू भाषा हिन्दुओं और मुसलमानों के चिरकाल तक निरन्तर सम्पर्क से उत्पन्न हुई थी, उसी प्रकार उर्दू संस्कृति भी लगभग ६०० वर्षों तक हिन्दुओं और मुसलमानों के निकट वास के कारण होने वाली क्रिया प्रतिक्रिया का परिणाम थी। हम देख आये हैं कि संस्कृति समाज की सब प्रवृत्तियों और मनोवृत्तियों का नाम है। चिरकाल तक एक दूसरे के पड़ौसी बन कर रहने से दोनों कभी जान बूझकर और कभी अनजाने से प्रभावित होते रहे, जिसका फल यह हुआ कि अन्त में दोनों एक ऐसी संस्कृति के प्रभाव में आ गये जिसमें दोनों के अच्छे बुरे दोनों तरह के अंश विद्यमान थे। अठारहवीं सदी के आरम्भ में मुगल साम्राज्य का क्षय आरम्भ हो चुका था, और पश्चिम से आये हुए व्यापारी राजनीतिक क्षेत्र में अपना पांव बढ़ाने की तैयारी कर रहे थे। उस समय जो संस्कृति उत्तरीय तथा पूर्वीय भारत के समाज में प्रधान रूप से विद्यमान थी, वह हिन्दू संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति के निष्कर्ष का परिणाम थी।

मिश्रण का प्रभाव समाज के सभी अंशों पर पड़ा था। सबसे पहले समाज के धार्मिक पहलू पर दृष्टि डालिए। देखने में दोनों धर्म १८ वीं शताब्दी के मध्य से भी पृथक् थे, परन्तु उनमें प्रत्येक पर एक दूसरे का असर बिलकुल स्पष्ट दिखाई दे रहा था। हिन्दुओं के तत्कालीन धर्म गुरुओं के विचारों पर इस्लाम का प्रभाव असंदिग्ध रूप से दिखाई दे रहा है। कबीर दादू और वैसे ही दर्जनों भक्तों की वाणियां मिश्रित विचारधारा का परिणाम थीं। हिन्दुत्व की जो प्रतिक्रियाएं महाराष्ट्र तथा पंजाब में उत्पन्न हुईं, उन पर भी मिश्रण का पर्याप्त प्रभाव था। महाराष्ट्र की सांस्कृतिक जागृति और सिक्ख धर्म के अभ्युदय से हमें जो एक उग्रता और सुधारोन्मुखता मिलती है वह इस्लाम के सम्पर्क से उत्पन्न हुई थी।

उधर इस्लाम पर हिन्दू धर्म का असर भी नहीं पड़ा। मुसलमानों में ऐसे बहुत सी बातें आ गईं, जिनका कारण हिन्दू धर्म से सम्पर्क था। सूफीमत वेदान्त का रूपान्तर था। व्रजभाषा की कविता और भक्ति धर्म का मुसलमान कवियों और विचारकों पर जो प्रभाव पड़ा उसकी हम इससे पूर्व चर्चा कर आये हैं। बादशाह अकबर स्वयं व्रजभाषा में कविता किया करता था। रसखान आदि मुसलमान कवियों की भक्तिमयी कवितायें हिन्दी साहित्य

की शोभा को बढ़ाने वाली हैं। दारा शिकोह को संस्कृत वाङ्मय से गहरा प्रेम था। उसकी प्रेरणा से उपनिषदों के तथा हिन्दुओं के अन्य धर्म ग्रन्थों के अनुवाद हुए, और मुसलमानों में उनका प्रचार हुआ। जिस समय भारतवासियों के मानसिक दुर्ग पर पाश्चात्य विचारों का आक्रमण हुआ उस समय यहां के दुर्ग की दीवारों में हिन्दू संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति का गहरा मिश्रण हो चुका था।

धर्म और साहित्य के क्षेत्र से भी अधिक गहरा मिश्रण सामाजिक क्षेत्र में हुआ था। प्रारम्भ में बहुत तीव्र भिन्नता होते हुए भी ६०० वर्षों के निरन्तर संपर्क के कारण दोनों सम्प्रदायों में बहुत सी समानताएं उत्पन्न हो गई थीं। बहुत से हिन्दू नर और नारी हिन्दू साधुओं के साथ-साथ मुसलमान फकीरों का सम्मान करते और मजारों की पूजा करते थे। मुसलमानों ने भी बहुत से रीति-रिवाज हिन्दुओं से ले लिये थे। विशेषतः ग्रामों में भेद भाव बहुत कुछ नष्ट हो गया था। गांव में यह साधारण बात हो गई थी कि दोनों एक दूसरे के धार्मिक त्योहारों में, और ब्याह-शादियों में सम्मिलित हों और एक दूसरे के विधि विधान को मान्यता दें। अंग्रेजों के आने के कुछ समय पश्चात् हिन्दुओं और मुसलमानों में विरोध की जो उग्र भावना उत्पन्न हो गई थी, १८ वीं शताब्दी के आरम्भ में उसका अभाव सा ही था। उस समय हिन्दुओं और मुसलमानों ने यह मान सा लिया था कि दोनों पड़ौसी पड़ौसी हैं। फलतः उनके बीच की सामाजिक दीवार बहुत ही पतली हो गई थी। कहीं-कहीं तो सर्वथा नष्ट हो गई था। उस समय के वेष को देखिये। मुसलमान बादशाहों और उनसे लड़ने वाले हिन्दू राजाओं का वेषभूषा और दाढ़ी-मूछ के कट तक में समानता आ गई थी। शिवाजी के पिता शाह जी और किसी मुसलमान नवाब की तस्वीरों का मिलान करें तो रंग ढंग में अधिक भिन्नता नहीं दिखाई देती। मुसलमान लोग दाढ़ी कटाने लगे थे, और हिन्दू दाढ़ी रखने लगे थे। दोनों की पगड़ियों और अंगरखी का भेद भी बहुत कुछ नष्ट हो चला था। सारांश यह कि आन्तरिक परिवर्तनों की भांति बाह्य परिवर्तनों ने भी हिन्दुओं और मुसलमानों की भिन्नता को बहुत कुछ हल्का करके एक ही सांचे में ढाल दिया था, दोनों के बलाबल लगभग समान हो गये थे। दोनों की संस्कृति यदि सर्वथा एक नहीं हुई थी, तो एक दूसरे के समानान्तर तो हो ही गई थी।

धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में राजनीतिक भाषा मिश्रण की जो प्रक्रिया चल रही थी, उसका स्थूल रूप हम उर्दू भाषा के रूप में देख सकते हैं। उर्दू भाषा बाजार में घड़ी गई हो या किले में, थी वह हिन्दू मुस्लिम मिश्रण का ही परिणाम। भारत में मुसलमानी राज्य के आरम्भ के वर्षों में संभवतः दो-तीन सदियों तक दोनों भिन्न-भिन्न भाषायें बोलते रहे। शासन सम्बन्धी कार्य विजेताओं की भाषा में होते थे, और हिसाब किताब तथा साधारण दफ्तरी काम लोक भाषा में। कुछ ऐसे व्यक्ति तैयार हो गये होंगे, जो विजेताओं की भाषा पढ़कर दुभा-

षिये का काम करते हों। उनकी सहायता से सब काम चल जाते होंगे। धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे की भाषा को सीखने लगे। मुसलमानों में जो कुछ सुशिक्षित शासक हुए, उन्होंने अपने शासन कार्य में हिन्दुओं का न्यूनाधिक सहयोग लेना प्रारम्भ कर दिया। उससे दुभाषियों की संख्या निरन्तर बढ़ती गई। हिन्दुओं में कायस्थ श्रेणी उस समय से उत्पन्न हुई। प्रारम्भ में तो वह राज काज करने वाले दुभाषियों की एक श्रेणी बनी होगी, कालान्तर में उसे एक भिन्न जाति मान लिया गया, क्योंकि शासक श्रेणी के निरन्तर सम्पर्क के कारण उनके आचार व्यवहार में भी कुछ भेद आ गया था। पेशे को जाति का आधार मान कर भेद भाव को दृढ़ कर देना हमारे देश का पुराना रोग है। उसने न जाने, हमारे समाज रूपी शरीर में कितने नये नये रोग लगा दिये हैं।

धीरे-धीरे एक ऐसी श्रेणी उत्पन्न होने लगी जो फारसी और लोक भाषा दोनों को जानती और व्यवहार कर सकती थी, ऐसी दशा में यह स्वाभाविक हो जाता है कि दोनों भाषाओं में कुछ शब्द एक दूसरे से मिल कर घुल जायें। वे शब्द चुपके से आ कर भाषा का अङ्ग बन जाते हैं।

अकबर के उदार राज्यकाल में भाषाओं के मिश्रण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला। जहांगीर और शाहजहां की नीति संकलपपूर्वक उदार न होती हुई भी, अकबर की नीति का उत्तरार्द्ध होने के कारण भाषाओं के मिश्रण के अनुकूल थी। औरंगजेब की मतान्धता ने मिश्रण की प्रक्रिया को ठेस तो लगाई, परन्तु वह ठेस केवल ऊंचे स्तर तक रही, सर्वसाधारण में परस्पर सान्निध्य की जो प्रवृत्ति चल रही थी, उस पर उसका कोई असर नहीं हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण बात है कि यद्यपि औरंगजेब के राज्यकाल में शासन की ओर से हिन्दुओं पर पर्याप्त बलात्कार हुए, परन्तु हमें ग्रामों, नगरों में किन्हीं बड़े अन्तर्जातीय दंगों की चर्चा नहीं सुनाई पड़ती। शासक लोग लड़ते थे, परन्तु प्रजाजन एक दूसरे के साथ भाईचारे से बर्तते थे।

ऐसे वातावरण में एक सम्मिलित भाषा का उद्भव स्वाभाविक ही था, उर्दू भाषा सदियों तक दोनों जातियों के निरन्तर सम्पर्क का परिणाम और चिह्न थी।

१८ वीं शताब्दी के आरम्भ में, जब अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में विस्तार की ओर कदम बढ़ाया, तो उसे जिस भारतीय समाज से वास्ता पड़ा, वह थोड़े से स्थानीय भेदों के होते हुए भी लगभग एक से सामाजिक और मानसिक स्तर में था। दक्षिण और उत्तर की सांस्कृतिक दशाओं में जो भेद था, उसकी चर्चा मैं कर चुका हूं। यदि दक्षिण को अलग छोड़ दें तो हम कह सकते हैं कि भारत के लगभग तीन चौथाई भाग में एक ऐसी मिश्रित संस्कृति बन चुकी थी, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों का समान भाग हो गया था। उस मिश्रण की प्रक्रिया के चक्कर में आकर मुसलमान अपने चरित्र की कठोरता खो चुके थे, और हिन्दू अपने रहन-सहन की विशुद्धता से हिल चुके थे और हिन्दुओं में कठोर पर्दा पद्धति

जारी हो गई थी। उत्तर में मुगलकालीन उर्दू संस्कृति का उन्नततम रूप लखनऊ और दिल्ली में पाया जाता था। उस रूप में न तो हिन्दूकुश पर्वत को पार करके भारत को विजय करने वाले मुसलमान आक्रान्ताओं की कठोरता शेष थी, और न सत्य और धर्म को प्राणों से अधिक मानने वाले हिन्दुओं की धर्मनिष्ठा के चिह्न थे। दिखाने और शिष्टाचार में अत्यन्त परिष्कृत परन्तु अन्दर से अयथार्थतापूर्ण वह ऐसी संस्कृति थी, जिससे शायद दोनों ही धर्मों के उत्कृष्ट अंग निकल गये थे, और शेष रह गया था खोखला दिखावा, जिसके भरोसे पर कोई जाति चिरकाल तक खड़ी नहीं रह सकती।

भारतवासी ऐसी दोगली संस्कृति के प्रभाव में आ चुके थे, जब पश्चिम के सुशिक्षित, कठोर और सुचतुर आक्रान्ताओं से उनका वास्ता पड़ा। दोगली संस्कृति की निर्बल दीवार पाश्चात्य संस्कृति के जोरदार धक्कों को देर तक न सह सकी और एक एक करके भारत के सब प्रदेश पश्चिम की सेनाओं और विचारों के सामने तब तक झुकते गये, जब तक फिर से विशुद्ध भारतीय संस्कृति ने अपना सिर नहीं उठाया।

यह लेखमाला यहां समाप्त की जाती है। पश्चिम के आक्रमण को सुलभ सफलता क्यों प्राप्त हुई उसके सारे देश पर व्याप्त हो जाने के पश्चात् सांस्कृतिक प्रतिक्रिया कैसे उत्पन्न हुई, और अन्त में उसी प्रक्रिया ने किस प्रकार अंग्रेज़ों के आचन्द्रदिवाकर रहने की आशा रखने वाले साम्राज्य को उखाड़ कर फेंक दिया यह कहानी बहुत मनोरंजक है। उसे कालान्तर में सुनाएंगे।

साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो

यह हमारा दुर्भाग्य है कि स्वतन्त्रता के पश्चात् भी भारत में साम्प्रदायिकता का अन्त नहीं हुआ है। स्वतन्त्रता के १२ वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी भारत में विभिन्न सम्प्रदायों में परस्पर क्षोभ की भावना पाई जाती है जिसका परिणाम कई वार साम्प्रदायिक दङ्गों के रूप में प्रकट होता है। ऐसी स्थिति में यह परम आवश्यक है कि हम साम्प्रदायिकता से ऊपर उठ कर स्वयं को केवल भारतीय समझें, क्योंकि एकता के बिना कोई देश उन्नति नहीं कर सकता।

—उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्।

शान्ति "एकाङ्की"

श्री पंडितप्रवीण श्री कर्णराव जी वेटपाल्यम्, आन्ध्रप्रदेश

तृतीय दृश्य

ढिंढोरा

डौंडीवाला—ऐ पेबुओ ! आज शाम का तीन बजे "षांति चदन" में षांति दूत के सबा पतत्र में एक बड़ी सभा होने वाली है सभी शाखा वाले आ सकते हैं। अपनी अपनी तकलीफें बता सकते हैं। सब को आजिर होना है बाबुओ ! ऐसा वक्त फिर कबी नहीं आता।

(तीन बजे सभा का प्रारम्भ। "मधुर-वाणी" नाम की दस वर्ष की बालिका अत्यन्त मनोहर रूप से "राष्ट्रीय गीत" का गान करती है। "शांति-सदन" के संस्थापक "देशभक्त" श्री बाबूराम जी ही हैं। उनकी प्रार्थना अनुसार "शांति-दूत" जी अध्यक्ष पीठ पर सुशोभित होते हैं।)

शांतिदूत—शांति–तपोधनी भारतीय वीर-सोदर सोदरी मणियो ! आज बड़ा सुदिन है। पारस्परिक भावना-प्रकाशनार्थ आज देशभक्त जी ने जो सुअवसर प्रदान किया वह कभी विस्मृत होने का नहीं है। मैंने अभिभाषण त्याग दिये। मुख्यतः रचनात्मक कार्यक्रम के लिये ही प्रश्रय दे रहा हूं। (हर्ष-ध्वनियां) यदि प्रजा अपनी विपत्परंपराओं के प्रति विज्ञापन दे तो भारतमाता की आज्ञा शिरोधार्य कर अपनी शक्ति के अनुसार सेवा कर सकता हूं।

किसानों की तरफ से

कृषक-समुद्धरण-दीक्षा-दक्ष ! मैं कृषक-संघ का मंत्री हूं। हमें जिन चीजों की दरकार होती है वे ठीक दर पर मिलती ही नहीं हैं। ब्लैक-मार्कट (चोर बाजार) की बाधा कही नहीं जाती। हमारे आवश्यक वस्तु-समुदाय जब सस्ते दाम में प्राप्त होते तब तो हम सरकार की हुकूमत के मुताबिक अनाज सप्लाई कर सकते हैं। उत्पन्न करने पर भी वस्त्र तथा अन्न का अभाव ही है।

वस्त्रकारों के पक्ष से

स्वदेशी वस्त्र-कला-पोषक !

स्वराज्य के अनन्तर हमारे कष्ट बढ़ गये हैं। अन्न के अभाव से हम रो रहे हैं। सरकार पहले के सारे वायदे रद्द कर चुकी। ऊपर तो हाथ के बनाये कपड़े से स्पर्धा के रूप में विदेशी वस्त्र-व्यापार के लिये स्वयं कांग्रेस कार्यकर्ता ही लाइसेन्स लेकर अपनी इच्छा के अनुसार ब्लैक कर रहे हैं। हमारी व्यथा सुनने वाला कोई महानुभाव ही नहीं है। अभी और भी समाजों के चन्दे वसूल करके "कराहते हुए सियार पर ताड़ के फल के बराबर" वाली लोकोक्ति को याद दिला रहे हैं। इसे सूचित करने में हम अत्यन्त चिन्तित हैं कि कितने ही लोग अपने परिवारों के पोषण करने में अशक्त बन कर, रेलों के नीचे गिर कर, नदियों में कूद कर, फांसी लगा कर आत्महत्या कर चुके हैं।

हरिजनों की ओर से

हरिजनाभ्युदय—चिन्तामणि ! महात्मा

जी के रहते हुए शुभ अवसर पर जो सहायतायें हमें प्राप्त हैं उनका वर्णन करने में हम असमर्थ हैं। महात्मा जी के अस्तमान के साथ-साथ हमारी जाति का अस्तमान भी आसन्न है। हमारा हल्ला-गुल्ला सुनने वाले ही नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे राष्ट्रपिता महात्मा जी का कार्य-क्रम भंग हो गया है। हमारा भविष्य अन्धकारमय है। मार्ग अगोचर है।

ब्राह्मणेतरों की ओर से

कांग्रेस के नाम से हमें चिर-कलंक लगा रहे हैं। हमें भविष्य के प्रति डर लगता है कि सब को एक ही कहते हुए व्याख्यान वर्षा के अतिरिक्त नौकरी की बारी आते ही निज जातिवालों को प्रातिनिध्य देते हुए देखने से हमें भविष्य के प्रति भय लगता है। यदि कांग्रेस में नीति होती तो ४-५ वर्ष में ही दो-चार के बदलने की दुःस्थिति क्यों कर लगती ? ऊपर के परिवर्तन ही हमारे भावों को स्पष्ट कर रहे हैं। हमारी विनती है कि हमारे लिये सर्वस्व समर्पक 'सर नायर', 'सर त्यागराय', 'सर के० वी रेडी नायुडु' 'सर सी. आर. रेड्डी' आदि प्रमुख चिरस्मरणीय हैं।

ब्राह्मणों की दिशा से

ब्रह्म-तेजो-निधान ! हमारी विज्ञप्ति है कि हमारी संख्या भारत-देश में बिल्कुल कम है। अत्युक्ति नहीं है कि हमने विश्व का जो महान् उपकार किया है वह और किसी जाति से नहीं किया गया है। यह बात आप से अपरिचित नहीं है कि 'दयानन्द सरस्वती', 'राम मोहनराय', 'लोकमान्य बाल-गङ्गाधर तिलक', 'भारत-भूषण' 'पंडित मदनमोहन मालवीय' आदि देश-सेवा, धुरन्धर हमारी जाति के ही हैं।

राष्ट्रीय अध्यापकों की ओर से

"सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं विशिष्यते" विद्यादान से बढ़ कर अन्य दान कोई नहीं है। विदेशियों के आते ही विद्या को धन लेकर बेचने का आचार अमल में लाये हैं। उससे विद्या का समादर सूना हो गया है। यद्यपि महात्मा जी के सिद्धान्तों के अनुसार विद्या-विधान में कितने ही परिवर्तन आते हैं तथापि अधिकारी वर्ग मूकों की भांति देख रहे हैं। मातृ भाषा, राष्ट्र भाषा तथा संस्कृत भाषा को समुचित स्थान दिया गया नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि आंग्लभाषा के साथ-साथ कुछ लोगों के प्राण-पखेरू भी उड़ने वाले हैं। वाह वाह ! मातृ-भाषा में ठीक-ठीक बोलने की शक्ति नहीं है किन्तु अंग्रेजी में स्पेलिंग की त्रुटि को लिखावट ही घृणास्पद है। मातृ-भाषा के एक वाक्य में ही दो-चार त्रुटियां लिखने वाले बिल्कुल कम हैं। हमारी हार्दिक विज्ञप्ति है कि देश-भाषाओं को प्रमुख स्थान देकर विदेशी भाषाओं को वैकल्पिक स्थान प्रदान किया जाय।

स्त्रियों की तरफ से

स्त्री-विद्या जाति के लिए रीढ़ के समान है। आजकल की विद्या स्त्री के लिए विष है। भारतीय संस्कृति सम्पत्ति का कुठार-प्रहार है। स्त्री-विद्या जाति का जीवन है। मातृ-भाषा की श्री वृद्धि के लिये स्त्री-विद्या ही प्रमुख कारण है। स्त्री-समाज के अनुरूप विद्या ही

स्त्री का भूषण है। बच्चों को मातृ-भाषा में समीचीन उच्चारण के लिये स्त्री ही सरस्वती के समान है। सरस्वती के समान विद्याओं का ग्रहण कर स्त्री को विद्याधि-देवता होना चाहिये। बिनती है कि तभी देश-शांति हो सकती है। विद्या में जो जाति अलसता बतलाती है उस जाति को रौरव-नरक अनिवार्य है। अतएव प्रार्थना है कि स्त्री-जाति के प्रति जागृत भाव रखने चाहियें।

शांतिदूत—(समाधान)

विज्ञान-जिज्ञासु-सोदर-सोदरी मणियो !

आप लोगों की विज्ञप्तियों से आजकल की देश-स्थिति सम्यक् अवगत हुई है। मेरा उपसंहार आप लोगों के विज्ञापनों का संक्षिप्त समाधान मान लीजियेगा। "देश-भक्त" बिरुद विराजित 'श्री राम बाबू जी' का त्याग ही आप लोगों की हार्दिक कामनायें सफलीभूत कर सकता है।

सब में सहन-भावना की नितान्त आवश्यकता है। किसानों के कष्टों से मैं अपरिचित नहीं हूं। पहले से उनकी परिस्थिति अतीव उत्तम है। वस्त्रकारों की दुःस्थिति विपत्कर है। उन्हें स्वदेशी वस्त्र-निर्माणार्थ कष्ट न मान कर उद्योग करना चाहिये।

हरिजनों को किसी प्रकार का डर नहीं है। हमारे लिए "अन्त्य जातिर्द्विजातिश्च एक एव सहोदरः" वाली अमर सूक्ति है। अहम्मति तज कर काम किये बिना ऐसा भ्रम दूर नहीं होता। मनुष्य के बीच में मनुष्य को भेद-भाव कल्पित कर अधः पतित कर देना अविवेक है। जो अधः पतित कराना चाहता है वही अपने खोदे हुए गढ़े में आप ही गिर जाता है।

ब्राह्मणेतरों का भय निराधार है। ब्राह्मणेतर शब्द का इस युग में प्रयोग करने की आवश्यकता ही नहीं है। "जन्मना जायते शूद्रः" जन्म से हर एक शूद्र ही है। "ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः" ब्रह्मज्ञान से ही ब्राह्मण है। ब्रह्मज्ञान की व्युत्पत्ति न हो तो ब्राह्मण-नाम रखने से ब्राह्मण नहीं बन सकता। मद्रास प्रांत में ब्राह्मणेतर संघ की ओर से जो प्रचार हुआ है वह अतीव संस्तवनीय है।

ब्रह्मज्ञान-तेजो-बलशाली ही ब्राह्मण है। 'दयानन्द सरस्वती' ब्राह्मण शब्द से भी अतीत महाव्यक्ति हैं। ब्राह्मण-तत्व-महत्व जान कर उसकी महत्ता संसार में प्रगक्ति महात्मा गांधी जी का ब्राह्मण-तत्व ग्रहण करने के कारण ही श्री राजगोपालाचारी जी ने अपनी प्रिय पुत्री का महात्मा जी के प्रिय पुत्र देवदास गांधी से विवाह कर दिया है। ब्राह्मणत्व महिमान्वित है। यह बातों से प्रगट होने वाला नहीं है। अनुभूति से ही अनुभव करने योग्य है।

राष्ट्रीय अध्यापकों के नाम से मुझे बड़ा आनन्द है। 'यो दद्यात् ज्ञानमज्ञानां कुर्याद्वा धर्म दर्शनम्। स कृत्स्नां पृथिवीं दद्यात् तेन तुल्यं न तद्भवेत्।" अज्ञानों को ज्ञानोपदेश कर सत्फल पाने वाला व्यक्ति उस फल-संप्राप्ति के लिए समस्त पृथिवि को दान रूप में प्रदान करने पर भी नहीं प्राप्त कर सकता। राष्ट्रीय अध्यापक से बढ़ कर दूसरा कोई नहीं है। बृहस्पति अध्यापक नहीं है? सभी लोग अध्या-

पन-कार्य के लिये समर्थ नहीं हो सकते, जिन्हें उच्चारण ज्ञात नहीं वे बच्चों को पढ़ा कर भ्रष्ट बना देते हैं। विदेशी भाषा मोह के कारण हमारी भाषाओं को मातृ-भाषायें बनाना चाहते हैं। केवल अध्यापक नामधारी शब्द का उच्चारण जिस प्रकार करना है, या लिखना है न जानने वाले व्यक्ति अनेकों हैं। यह सब मैं जानता ही हूं। यह विप्लव-युग है। थोड़ा सा सहन-भाव होना चाहिये। मेरा उद्देश्य है कि हमारी भाषाओं का भविष्य महा उज्ज्वल है।

"वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपक्तये।
जगतः पितरौ वन्दे, पार्वती परमेश्वरौ॥"

"सतिकि ब्रियंबु सेय गिरिजापति यर्ध शरीर मिच्चे, श्री पति तन वक्षमंदुनि चे, ब्रह्म मुखंबुन दालचे, नट्टि च बितरुलु गुड नट्ले चेयुट मीड्रयमु गानि मेराक्क तिरुगा बतुलु जरिपन्याय मोको, भावमु नंदु दलंचि चूहुमा।"

गृह का अलंकार गृहिणी है गृहस्थ का अर्ध शरीर है गृहिणी। गृहस्थ तो विद्वान् तथा गृहिणी विद्या-विहीना है तो बाधा की पराकाष्ठा ही नहीं है। अपठित स्त्रियों को गृहणी रूप में ग्रहण कर कष्ट उठाने वाले पतिदेवों को हम देख ही रहे हैं। वास्तव में मातृभाषा की गौरव-प्रतिपत्ति सुस्थिर रूप से रखने वाली स्त्रियां ही हैं। लौकिक-ज्ञान रहिताओं से विवाह कर उनसे प्राप्त कष्ट-परम्पराओं को हम प्रत्यक्ष रूप में अनुभव कर ही रहे हैं। स्त्रियों की उत्तम विद्या के अभाव को भारतमाता सहन कर सकती है? शृंखलाओं से छूट पाने पर भी शृंखला-बद्धा मानना अज्ञान है।

वचनामृत

१. अनासक्त कार्य शक्तिप्रद है क्योंकि अनासक्त कार्य भगवान् की भक्ति है।
२. शुद्ध हृदय से निकला हुआ वचन कभी निष्फल नहीं होता।
३. जो मनुष्य अपने पर काबू नहीं रख सकता है वह दूसरे पर कभी सच्चा काबू नहीं कर सकता।
४. मनुष्य की शांति की कसौटी समाज से ही हो सकती है, हिमालय की चोटी पर नहीं।
५. जाति-भेद से हिन्दू धर्म को नुकसान पहुंचा है। उसमें पाई जाने वाली ऊंच-नीच की भावना धर्म की घातक है।

—महात्मा गांधी।

सफल जीवन

कविरत्न श्री प्रकाशचन्द्र जी, अजमेर

(१)

नेक कमाई कर कुछ जग में
जीवन सफल बनाओ रे।
उत्तम अवसर प्राप्त हुआ है,
वृथा न इसे गंवाओ रे।।

(२)

द्रुतगामी अति चंचल मन पर
निज आतङ्क जमाओ रे।
वशीभूत हो विषयों के मत,
दारुण दुःख उठाओ रे।।

(३)

पर सुख ही में निज सुख समझो
पर दुःख में दुःख उठाओ रे।
सपने में भी कभी किसी का,
मत तुम बुरा मनाओ रे।।

(४)

प्रेम प्रीति आपस में रखिये
वैर विवाद मिटाओ रे।
आश्रयहीन अनाथों के प्रति,
दया भाव दर्शाओ रे।।

(५)

करो सदा पुरुषार्थ असुर
आलस को मार भगाओ रे।
सत्य आचरण की नौका चढ़ि,
भवसागर तर जाओ रे।।

(६)

भूले भटके भ्रातृ गणों को
सन्मारग पर लाओ रे।
पावन वैदिक-धर्म पताका,
देश-देश फहराओ रे।।

(७)

सुमिरन कर लो हरि को भज लो
नहिं पीछे पछताओ रे।
है 'प्रकाश' मानुष तन दुर्लभ,
वार-वार नहीं पाओ रे।।

जीवन और दर्शन

अनुसन्धान विद्वान् आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री एम. ए. नासिक

एक फ़ारसी के कवि की दृष्टि में ब्रह्माण्ड एक पुराना हस्तलेख है जिसका प्रथम और अन्तिम पृष्ठ गायब है। यह कहना कठिन है कि किस प्रकार से पुस्तक का प्रारम्भ हुआ और न यही जाना जाता है कि किस प्रकार इस का अन्त हुआ है। मानव की चेतना के उन्मेष काल से मानव मस्तिष्क इन ग़ायब हुये पृष्ठों के खोजने का प्रयत्न कर रहा है। उस की इस खोज और इस के परिणाम का नाम ही दर्शन है। परन्तु जब हम संसार और जीवन की व्यापक दृष्टि से मीमांसा करते हैं तो पता चलता है कि जगत् वस्तुतः ऐसा नहीं है। जीवन को शाश्वत और विश्व को पूर्ण कृति एवं पूर्ण रचना मानने पर वह उस हस्तलेख के समान नहीं ठहरता जिसके दो पृष्ठ ग़ायब हैं। यह जगत् पूर्ण है, इसका कर्ता पूर्ण है और पूर्णता ही अन्त में भी रहती है—इस विचार धारा से इस तुलना का समन्वय भी नहीं खाता।

वास्तविक रूप में बात यह कही जा सकती है कि मानव की इस खोज का उद्देश्य जीवन और सत्ता के तात्पर्य को खोलना एवं प्रकट करना है। वह किसी उल्टी पुल्टी हुई या ग़ायब वस्तु को न मिलाता ही है और न इसकी शृंखला जोड़ता है। जीवन और सत्ता दोनों ही अपना शाश्वत अंचल रखते हैं। उनके रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए मानवी चेतना प्रयत्नशील है, रही और रहेगी। क्योंकि मानवी चेतना के समक्ष ये दो विकट प्रश्न सदा रहे हैं कि जीवन का अर्थ क्या है? और उस को दिखाई पड़ने वाला विश्व क्या है? इन दोनों प्रश्नों का समाधान ढूंढने में मानव-मस्तिष्क सदा व्यस्त रहा है। जहां उसने जीवन के अर्थ को खोलने में अपनी शाश्वत सत्ता को देखने का प्रयत्न किया है वहां विश्व के रहस्य को खोलने में उसने विश्वम्भर को भी ढूंढने का उद्योग किया है। मानव की चेतना न जीवन सत्ता को बनाती है या परिवर्त्तित करती है, न विश्व को ही रचती या स्थानान्तरित कर के देखती है और न विश्वम्भर का ही अपने प्रयत्न से निर्माण करती है। वह केवल इनकी खोज करती है। ये सत्तायें तो स्वयं अपने अस्तित्व के साथ हैं। मानव चेतना जहां अनादि शाश्वत है, वहां विश्वात्मा भी अनादि शाश्वत ही है। केवल जगत् या विश्व परिवर्तनशील है परन्तु सत्ता के रूप पर विचार करने पर वह भी अपने कारणरूप में विद्यमान रहता है। उसका यह कारण भी अनादि सत्ता वाला ही है। इस विश्व में कुछ ऐसे शाश्वत आन्तरिक नियम हैं कि जिनका सीधा सम्बन्ध इन तीनों सत्ताओं से किसी न किसी तरह अचल रूप में पाया जाता है। इन नियमों का अध्ययन इन सत्ताओं के रहस्य तक ले जाता है। संसार में जिसको 'सत्य' नाम दिया जाता है उसका अर्थ और स्वरूप इन तीनों शाश्वत सत्ताओं और शाश्वत नियमों की परिधि में ही घूमता है। यह महती परिधि पूर्ण है कि जिसकी ये बिन्दुभूत सत्तायें

बिन्दुस्थानी हैं। इन बिन्दुओं की बनी परिधि भी पूर्ण है और ये बिन्दु तो पूर्ण हैं ही। वस्तुतः इस सत्य की खोज ही दर्शन है। यही कारण है कि दर्शन सदा सत्यभूत सत्ता अथवा सत्ताओं की खोज में रहता है जो दृश्य की सीमा से बाहर या उनके अन्तः पट में कार्य कर रही हैं।

दर्शन का क्षेत्र विस्तृत होते हुए भी मोटे रूप में अथवा स्थूलतया उसे चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। वर्तमान में वे चार विभाग—नीतिविज्ञान, मनोविज्ञान, तर्कविज्ञान और तत्वविज्ञान या सत्ता-विज्ञान के रूप में माने जाते हैं। इनमें से नीतिविज्ञान की मीमांसा अथवा आचार या नैतिक व्यवहारों के विचार से सम्बन्ध रखता है। मानव की चेतना में ज्ञान, प्रयत्न और इच्छा सन्निहित हैं। उसके प्रयत्न में अथवा इच्छा की पूर्ति में जो प्रयत्न होता है उसे हुए मानव कर्म में किसके साथ 'चाहिए' लगाया जावे और किसके साथ 'न चाहिए' लगाया जावे तथा किसको 'अच्छा' और किसको 'बुरा' कहा जावे, क्या कर्तव्य और क्या अकर्तव्य है? इत्यादि बातों का विचार नीतिविज्ञान करता है। संसार में साधारण प्रवृत्ति के लोग यही कहते हैं कि जो भला हो वह करना चाहिए, बुरा नहीं करना चाहिए। परन्तु भला क्या होता है, इस पर वे कहते हैं जो 'अच्छा' हो। परन्तु दार्शनिक इस 'अच्छा' का भी तीन दृष्टियों से विचार करता है। उसके 'अच्छा' में सत्य, शिव और सुन्दर तीनों का सन्निवेश है। आंग्लभाषा में अच्छा के लिए बहुधा Good शब्द का प्रयोग होता है। परन्तु इसमें भी—Right, pleasant, beautiful तीनों ही अर्थ छिपे हैं। अच्छा वह है जो न्याय एवं उचित हो। अच्छा वह है जो सुखावह और सुन्दर हो। ऐसी परिस्थिति और इसका विचार कर्म-मीमांसा एवं नीतिविज्ञान से किया जाता है। परन्तु यह विचार मानव चेतना के द्वारा इच्छा-पूर्वक कर्मों से ही सम्बन्ध रखता है। पशुओं के कर्म अथवा अनिच्छापूर्वक क्रियाओं का इसमें विचार नहीं किया जाता।

मनोविज्ञान मन की क्रियाओं का विज्ञान है और उसमें सदा मन की विविध क्रियाओं पर विचार किया जाता है। मन किस प्रकार की क्रियायें किस समय करता है और उनका उद्गम कैसे होता है इत्यादि बातों का इसमें विवेचन होता है।

तीसरा विभाग तर्कविज्ञान का है। यह विचार के आवश्यक नियमों का विज्ञान है। या यों कहना चाहिए कि यह विशुद्ध विचारों का विज्ञान है। विचारों को परिमार्जित रूप में कैसे प्रकट किया जावे, यह इससे परिज्ञात होता है।

इस विज्ञान के जानने से मानव अपने विचारों के प्रकटीकरण में गलती करने से बच सकता है और दूसरों के विचारों की गलतियों को पकड़ सकता है। इसके नियम, संयम, भ्रम और आभास जन्य त्रुटियों से बचाते हैं और विचार को संक्षिप्त एवं परिमार्जित करते हैं। सत्य के निर्णय पर पहुंचने में यह एक महान् साधन है। विचार में संक्षेप इसका

महान् गुण है। बहस, वाद-विवाद में यह अत्यन्त सहायक है। यह विज्ञान मन की उन्हीं पूर्ण क्रियाओं से सम्बन्ध रखता है जो विचार का रूप धारण कर चुकी हैं। अन्य का नहीं। क्योंकि यह विचारों के नियम से सम्बद्ध है, मन की प्रत्येक क्रिया से नहीं।

चतुर्थ विभाग तत्व-विज्ञान का है। इसको सत्ता का विज्ञान अथवा सत्तात्मक तत्वों का विज्ञान कहा जाता है। ज्ञान सम्बन्धी विचार इसके विषय नहीं। ये ज्ञान विचार विज्ञान (Epistemology) के विषय हैं। इसका विषय केवल अस्तित्व या सत्ता है। इसे (Ontology) कहा जा सकता है। सत्ता का विचार करते समय सत्-असत्, भाव-अभाव, नित्य-अनित्य, आत्म-अनात्म, और युष्मद्-अस्मद् पर ही केन्द्रित होना पड़ता है। सत्ता भी आत्म या अनात्म रूप में ही हो सकती है। जगत् का मूल कारण, उसका कर्त्ता, तथा उसकी उत्पत्ति आदि का विचार हमें इस ज्ञान से ही मिलता है। साधारणतया लोग इस विज्ञान का अर्थ केवल आत्म-विज्ञान ही समझते हैं परन्तु वर्तमान में सत्ता सम्बन्धी सभी विषय चाहे वे आत्म हों या अनात्म हों इसकी सीमा में ही माने जाते हैं। ये विभाग पाश्चात्य दर्शन के दृष्टिकोण से किये जाते हैं। सौंदर्य विज्ञान को भी पर्याप्त महत्व दिया जाता है परन्तु वह बहुत सीमा तक अनुभूति से ही सम्बद्ध है और अनुभूति मनोविज्ञान आदि में समाविष्ट हो जाती है। ललित कलाओं का उद्गम और तत्सम्बन्धी विचार इसके क्षेत्र में आते हैं। परन्तु यह सौंदर्यानुभूति भी मानव को ही होती है, उसे अभिव्यक्त भी करना चाहती है। उसकी अनेक मनोवृत्तियों में अभिव्यंजना भी एक कृति है। यही कलाओं की सर्जनकर्त्री है।

इस प्रकार दर्शन का विषय परम सत्य की खोज है। परम सत्य को खोजने में ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ना होता है। तथा सबको सबसे ज्ञात सत्य अपना "स्व" या "अहं" है। इसके विषय में किसी को कोई सन्देह नहीं। सबके प्रत्येक अनुभव के साथ इसका अस्तित्व स्वयं सिद्ध के रूप में लगा हुआ है। यह कोई नहीं कहता कि मैं नहीं हूं। दर्शन और विज्ञान आदि के क्षेत्र में किसी वस्तु का विचार उठाया जावे परन्तु यह "मैं" सब में लगा रहता है। अन्य वस्तुओं को प्रमोणों की जरूरत पड़ती है इसे स्वयं के लिए नहीं। क्योंकि प्रमाण व्यवहार से पूर्व ही इस का अस्तित्व सिद्ध है। इस "मैं" को भी हम 'अहम्' और "माम्" में विभक्त कर देते हैं। शुद्ध अहम् में अस्मद् का भाव है क्योंकि वह कर्ता या सब्जेक्ट है। जब वह "माम्" के रूप में प्रयोग किया जाता है तब इसका अर्थ यह है कि हमारे कि हमारे विचारों का विषय हमारा "मैं" स्वयं बन जाता है। यद्यपि हम कर्त्ता (Subject) है परन्तु जब इस अपने "मैं" हम विचार करते हैं तब यह "मैं" "माम्" कर्म (Object) के रूप में आ जाता है। इस अवस्था में "माम्" के तोन भेद हो जाते हैं। वे हैं "भौतिक माम्" "सामाजिक माम्" और "आध्यात्मिक माम्"। प्रथम में शरीर वस्त्र आदि सम्मिलित हैं और द्वितीय

में पुत्र-कलत्र मित्र आदि हैं। तीसरे आध्यात्मिक में हमारी ज्ञान संतति का समूह और सब की शक्तियां और वृत्तियां पाई जाती हैं। परन्तु अपना शुद्ध "मैं" इन अवस्थाओं से मीमांसा की दृष्टि से कहीं अधिक सूक्ष्म है। सोचने वाला ज्ञाता "मैं" है जो प्रत्येक ज्ञान धार में अप्रतिहत है। यह विषयी है परन्तु जब "माम्" विचार की दृष्टि से होता है यह विषय बन जाता है। अस्तु जो भी हो यह "मैं" एक शाश्वत ज्ञानमयी सत्ता है, इसमें सन्देह नहीं। यहां यह भी समझना चाहिए कि इस "मैं" के विचार में मनोविज्ञान और अध्यात्मविज्ञान दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस आत्मा के द्वारा जब विश्व का निरीक्षण होता है तो इसका संसार से केवल ज्ञान का ही सम्बन्ध रहता है। परन्तु गंभीर विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि इसमें भी उसके स्पष्टतया भिन्न-भिन्न रूप हैं जिसमें वह अपने विषयों से सम्बद्ध है। उसकी यह वृत्ति ज्ञान, भोग, क्रिया तीनों से सम्बद्ध है। इस दृष्टि से उसकी विषय निरीक्षण सम्बन्धी वृत्तियां—ज्ञानवृत्ति, भोगवृत्ति और क्रियावृत्ति भेद से तीन प्रकार की हो जाती हैं। वह केवल जगत् के निरीक्षण में ज्ञान ही नहीं प्राप्त करता है बल्कि उससे प्रभावित भी होता है और उसमें उठने वाले प्रश्नों का उत्तर देना चाहता है। इसी लिये आत्मा को ज्ञाता, भोक्ता और कर्ता कहा जाता है।

मनोविज्ञान, तर्कविज्ञान और तत्वविज्ञान तीनों से जब इस "मैं" का विचार किया ज़ाता है तो पता चलता है कि यह वह शाश्वत तथ्य है जो सामाजिक प्राणी है, विचारवान् है और शाश्वत नित्य है। यही गुण इसके समाज का निर्माण करते है, विचारों से अनेक विज्ञानों का सर्जन करते हैं और अपने स्वरूप को सदा शाश्वत में रखते हैं। यह एक सत्य वस्तु हुई। इसके अतिरिक्त जगत् का कारण और उसका नियन्ता पृथक् शाश्वत तथ्य के रूप में प्रतीत होते हैं। जगत् के पीछे कारण रूप में ये तीनों महान् तत्व अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। इन तीनों के विचार से ही जगत् की पहेली का समाधान होता है। अन्ततो गत्वा परिणाम यही निकलता है कि दर्शन दृश्यादृश्य के ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। 'दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम्' इस व्युत्पत्ति से भी यही भाव निकलता है। दर्शन केवल बौद्धिक सन्तोष एवं मनोविलास के लिए नहीं है। इसके द्वारा जिन तथ्यों या सत्यों की खोज होती है उनको जीवन में प्रमाणित और अनुभूत किया जाना चाहिये। अगर जीवन में इसका कोई उद्देश्य न हो तो दर्शन रहेगा ही किस काम का? वस्तुतः बात तो यह है कि समस्त दार्शनिक तत्व जीवन पर आजमाये जाने चाहियें। जीवन में उनका घटाना ही सार्थकता का द्योतक है। दर्शन के भिन्न-भिन्न विभागों का सम्बन्ध ही जब मानव चेतना से है तो फिर दर्शन का जीवन से सम्बन्ध क्यों न हो? दर्शन का सम्बन्ध सदा धर्म से रहा है और धर्म मानव-आत्मा का साथी है। दर्शन की खोज से प्राप्त तथ्य जब जीवन माध्यम से प्रकट किये जाते हैं, तब वही धर्म है। जीवन की धारा शाश्वत है अतः उसको दार्शनिक सत्य का

माध्यम बना कर सतत चलाते रहना मानव का कर्तव्य है। समस्त ज्ञान-विज्ञान और दर्शन आदि इस चेतना के लिए हैं। यदि जीवन कोई वस्तु न हो तो फिर इनका भी कोई उपयोग नहीं परन्तु जीवन शाश्वत तथ्य है अतः इन की भी सार्थकता है।

श्रद्धा रूपी अमृत धारा

संसार की दीन दशा को देख कर उसका ज्ञान रखने वाले, उसी का नित्य दर्शन करने वाले तथा उसी में अपने-आपकी स्थिति समझने वाले ज्ञानियों के हृदय करुणारस की मूर्ति बन जाते हैं। तब वे अपने गिरे हुए भाइयों को उठाने के लिये ज्ञान की बाहु पसार देते हैं। भाइयों को उठाने की प्रबल इच्छा भी है, उसके लिये यत्न भी है किन्तु केवल ज्ञानरूपी बाहु अशक्त सिद्ध होती है। उठने के स्थान में वे गिरे हुए आत्मा, उस ज्ञानरूपी बाहु को खींचने लगते हैं। उस समय देवी सरस्वती का विकास होता है और उसकी प्रदान की हुई श्रद्धा रूपी अमृत धारा का स्रोत खुल जाता है।

मरते हुओं को आनन्द जीवन आ जाता है और वे अपने उठाने वाले ज्ञानी बड़े भाई को स्वयं उठने में सहायता देते हैं और तब भाई भाई के हाथ में हाथ दिये जीवन से भरपूर एक होकर कहते हैं—

श्रुतिमात्ररसाः सूक्ष्माः, प्रधानपुरुषेश्वराः।
श्रद्धामात्रेण गृह्यन्ते, न करेण न चक्षुषा॥
श्रद्धाविधि समायुक्तं, कर्म यत् क्रियते नृभिः।
संविशुद्धेन भावेन, तदानन्त्याय कल्पते॥

—स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज
'मुक्ति सोपान' में।

आयुर्वेदालंकारों से निवेदन

'पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, ६०–६१, अकाली मार्केट, अमृतसर' में प्रबन्धक के पद पर कार्य करने के लिए गुरुकुल कांगड़ी के एक आयुर्वेदालंकार स्नातक की आवश्यकता है। कार्य करने के इच्छुक उक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।

वीर और बलवान् बनो

कवि जोरावरसिंह जी, बरसाना

(१)

भारत को उच्च बनाना है, तो वीर और बलवान् बनो।
जो जग में नाम कमाना है, तो वीर और बलवान् बनो॥

(२)

निज देश-धर्म-हित धन तो क्या, निज जान तलक कुर्बान करो।
बन धर्म-वीर, बन देश-भक्त, निज देश-धर्म के प्राण बनो॥

(३)

तुम सन्मुख देख विरोधी को, कायर न बनो पीछे न हटो।
आगे ही बढ़ते हुए सदा, जीतो अथवा बलिदान बनो॥

(४)

प्रिय मातृ-भूमि की रक्षा हित, जिस समय पुकार तुम्हारी हो।
तो तुरत मोर्चे पर जा कर, नेताओं का अभिमान बनो॥

(५)

मच जाए उथल-पुथल हलचल, गूंजे धरती आकाश सकल
पीड़ित जनता के स्वर में स्वर, भर महाक्रान्ति के गान बनो॥

(६)

ऊंचे चरित्र के लोग सदा, देशों को उच्च बनाते हैं।
बन कर के वीर चरित्रवान्, तुम भारत का उत्थान बनो॥

(६)

कितने ही प्रबल विरोध जिन्हें, आसन से नहीं डिगा पावें।
तुम दयानन्द गान्धी सुभाष से, मानव और महान् बनो॥

(८)

जो रुकें नहीं जो झुके नहीं, जो थकें नहीं जो डरे नहीं।
बनना है तो ऐ नवयुवको, तुम ऐसे वीर जवान बनो॥

एक शिक्षाप्रद कथा—

विद्यार्थी चेत् त्यजेत्सुखम्+

श्री रमेशकुमार जी, देहली

आज से लगभग सत्तर वर्ष पहले की बात है कि लाहौर कालेज में एक विद्यार्थी था, नाम था—तीर्थराम। विद्यार्थी-जीवन में कुछ काल के लिए वह तीन पैसे व्यय कर वहां पढ़ता रहा। तीन पैसे और कालेज का विद्यार्थी! जी हां, प्रातः पास की एक दुकान में दो पैसे देकर एक रोटी और दाल लेकर खानी और ठंडा पानी पी डट जाना पढ़ाई पर, सहपाठियों के व्यंग भी सुनने पड़ते—"अरे इस किताबी कीड़े को देखो, अठारह घंटे से कम नहीं पढ़ता, अरे मान भी, सच, कभी-कभी सारी रात गुजार देता है।" सायं फिर दुकान पर जा एक पैसा दुकानदार के सामने धर देना। वह एक रोटी और साथ में दाल मुफ्त देता। पर यह भी चलता रहता तो बात भी थी। निर्धनता ने तो और भी उपहास करना था। एक दिन दुकानदार ने सुना ही तो दिया "नहीं जी, मैं एक पैसे की रोटी के साथ दाल नहीं देता। सवेरे की तरह दो पैसे ही दिया करें तो फिर दाल मिलेगी।" यह पराकाष्ठा थी। पर क्या उसने पढ़ाई छोड़ दी? पढ़ाई तो नहीं छोड़ी—हां सायंकालीन रोटी खानी छोड़ दी। वह दो पैसे मांगता था कहां से देता? यह तो हुई खाने की बात। पहनने के लिए उसके पास एक ही जोड़ा था खद्दर की कमीज और पाजामा, रात को धोता और सवेरे पहन लेता।

अभी एक चित्र और भी है दिखाने को—एक दिन शाम को किसी काम बाजार जाना था, चल पड़ा। भीड़ काफी थी। चहल पहल, चमक दमक, विलास और शृङ्गार बिखरा पड़ा था चारों ओर, पर वह तो मस्त था; तपस्वी। सहसा अंधेरे में एक स्थान पर पैर से चप्पल निकल गई, मोटर आ रही थी जरा हट गये, फिर बड़ा ही ढूंढ़ा पर चप्पल नहीं मिली, शायद नाली में गिर गई होगी। उसी एक चप्पल के साथ लौट आया। रात तो बीत गई पर अब जाना है कालेज। कोई बात नहीं, इधर-उधर देखने से एक जनानी जूती मिल गई। काम चल गया, और वह चल पड़ा कालेज की ओर।

पर क्या मन में खेद था? आत्महीनता की भावना थी? नहीं, मुख पर शाश्वत रहने वाली मुस्कान थी।

वह विद्या के तीर्थ में रमण करने वाला राम था जिसे हम 'स्वामी रामतीर्थ' के नाम से जानते हैं - "राम बादशाह"।

+ विद्यार्थी सुख छोड़ दें।
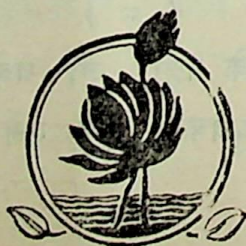
साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां पत्रिका कार्यालय में आनी चाहियें।)

मानव जीवन गाथा या जीवन गीत

महात्मा आनन्द स्वामी जी के ७ उपदेशों का संग्रह, अनुवादक—श्री जगदीशचन्द्र जी विद्यार्थी, प्रकाशक—श्री गोविन्दराम जी हासानन्द, आर्यसाहित्य भवन, नई सड़क, देहली मूल्य १.०० ।

महात्मा आनन्द स्वामी जी अपनी मधुर कथा तथा प्रवचनों के लिए प्रख्यात हैं। २४ अक्तूबर से ३० अक्तूबर १९५८ तक इर्विन रोड नई देहली में स्वामी जी की कथा होती रही जिसका शीर्षक उन्होंने 'मानव जीवन की गाथा' यह रखा था। उनके सुपुत्र श्री रणवीर ने उन प्रवचनों को 'जीवन गीत' के नाम से उर्दू में 'मिलाप' के लिये लेखबद्ध किया जो श्री जगदीशचन्द्र जी कृत अनुवाद के रूप में प्रस्तुत पुस्तक में दिया गया है। इन प्रवचनों में जीवन क्या है? संघर्ष, यात्रा, नौका, लेन-देन की मण्डी, चुनाव वा आकस्मिक दुर्घटना ? इस पर विचारते हुए स्वाध्याय, प्रेम, सुन्दरता, बुद्धि, शक्ति, धन, मानसिक शान्ति इन्हें मनुष्य जीवन के लिये आवश्यक बतलाया गया है तथा इनकी प्राप्ति के साधनों पर सरल रोचक रूप में प्रकाश डाला गया है। स्थान-स्थान पर वेद-मन्त्रों और श्लोकों की व्याख्या के साथ अनेक मनोरञ्जक कथाओं द्वारा विषय को सरस बनाया गया है। स्वास्थ्य की रक्षा के साधन बताते हुए मान्य स्वामी जी ने व्यायाम और शुद्ध आहार के साथ चित्त की प्रसन्नता पर बड़ा बल दिया है और गुण ग्राहकता के अभ्यास का उत्तम निर्देश किया है। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि०' तथा 'चरैवेति चरैवेति' (ऐतरेय) इत्यादि की व्याख्या करते हुये इन प्रवचनों में कर्मयोग का महत्व उत्तमता से बताया गया है। पञ्च महायज्ञों की भी प्रसङ्गवश प्रभावजनक व्याख्या की गई है। आत्मा और परमात्मा के चिन्तन तथा ईश्वर प्राप्ति के साधनों पर मुख्यतया 'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्' इस मुण्डकोपनिषत् के वचन के आधार पर अच्छा प्रकाश अनेक कथाओं सहित डाला गया है। मन्त्रों और श्लोकों के अतिरिक्त फ़ारसी के वचनों का भी इन प्रवचनों में पर्याप्त समावेश है। इस प्रकार जीवन गीत विषयक म० आनन्द स्वामी जी के ये ७ प्रवचन जीवन को संगीत और आनन्दमय बनाने में विशेष सहायक और उपयोगी हो सकते हैं। पृष्ठ ५० में 'नैति इति नर' यह अशुद्ध छपा है 'नयतीति नरः' होना चाहिये। पृष्ठ १६२ पर 'अन्तःकरण शुद्धेश' यह अशुद्ध पाठ है। ऐसे ही कुछ और उद्धरणों के पाठ में छापे की अशुद्धियां कहीं-कहीं रह गई हैं। उन्हें अगले संस्करण में आशा है ठीक कर लिया जाएगा। पुस्तक सब साधकों तथा धर्म-प्रेमियों के लिये उपयोगी है।

नभ के तारे

लेखक—श्री रमेशकुमार जी, आर्य कुमार सभा किंग्सवे कैम्प देहली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ ६४ मूल्य ३५ नये पैसे।

हमें यह देख कर अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि जिस आर्यकुमार सभा किंग्सवे कैम्प देहली के साथ हमारा ११ वर्ष देहली निवास के समय विशेष सम्बन्ध रहा वह उत्तम पुस्तकों के प्रकाशन आदि द्वारा समाज की उत्तम सेवा कर रही है। श्री रमेशकुमार जी की इस पुस्तक में महात्मा गान्धी, दुर्गादास, स्वामी रामतीर्थ, श्री गोपाल कृष्ण गोखले, महामना पं० मदनमोहन जी मालवीय, महर्षि दयानन्द जी, भीष्म पितामह, पं० लेखराम जी, नेता सुभाषचन्द्र जी, पुरुषोत्तम श्री राम इत्यादि से सम्बद्ध कथाओं को अत्यन्त रोचक तथा प्रभावोत्पादक रूप में परिष्कृत भाषा के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। ये कथाएं युवकों तथा युवतियों के चरित्र निर्माण में विशेष रूप से सहायिका हो सकती हैं। श्री स्वामी अभेदानन्द जी ने भूमिका में ठीक ही लिखा है 'इसमें सन्देह नहीं, इन कहानियों से उत्कट उमंग, कर्तव्यपरायणता और धीरता की ओर हृदय और मस्तिष्क दोनों झुक जाते हैं। वैदिक सूक्तियों के देने से पुस्तक की विशेषता अधिक हो गई है।' हम इस उत्तम भावोद्दीपक पुस्तक के लेखक युवक श्री रमेशचन्द्र जी को तथा इसकी प्रकाशिका आर्य कुमारसभा, किंग्सवे कैम्प को हार्दिक बधाई देते तथा इसका यथेष्ट प्रचार चाहते हैं। 'नभ के तारे' इस साहित्यिक काव्यमय नाम से यद्यपि पुस्तक के विषय का स्पष्ट परिचय नहीं मिलता तथापि पुस्तक की उत्तमता और उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं। यह सर्वथा उपादेय है। लेखक के नाम के आगे जातिसूचक 'लौ' शब्द का प्रयोग हमें अनुचित लगा।

दर्शनानन्द दर्शन

लेखक—श्री पं० श्री राम जी शर्मा, प्रस्तावना लेखक—स्व० स्वामी सर्वदानन्द जी सरस्वती, प्रकाशक–विनोदशील बन्धु, प्राची प्रभा-मण्डल, आगरा। पुस्तक मिलने का पता—प्रबन्धक प्राची-प्रभा-मण्डल आगरा तथा पं० देवेन्द्रनाथ जी शर्मा शास्त्री हरहर निवास पोद्दार स्ट्रीट्, सान्ता क्रूज बम्बई २३ पृष्ठ १६२ मूल्य २.०० ।

स्व० स्वामी दर्शनानन्द जी आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध दार्शनिक, शास्त्रार्थ महारथी तथा महाविद्यालय ज्वालापुर और गुरुकुल सिकन्दराबाद आदि अनेक संस्थाओं के संस्थापक संन्यासी थे जिनका पूर्वाश्रम का नाम पं. कृपाराम जी शर्मा था। प्रस्तावना में वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी ने स्वामी दर्शनानन्द जी के विषय में लिखा है कि 'उनके स्वभाव में एक विचित्र प्रकार की मस्ती थी। उनकी तबीयत सदा शोक, मोह से बरी थी। किसी समय में भी फिकर में न पड़ना, उचितानुचित शब्दों को सुनते हुए जोश में आ कर कभी किसी से न लड़ना, यह आदत उनमें बहुत ही खरी थी। इस लिए लापरवाही लता हर समय हरी थी।... उनके विमल मन में उदारता का प्रभाव था। जो कुछ कहना जनहित को सामने लाकर और जो कुछ लिखना लोकमत के मार्ग में जाकर। उनका पुरुषार्थ सर्वथा परहित के निमित्त ही था।' इत्यादि।

वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी जैसे आदर्श

संन्यासी द्वारा प्रदत्त यह श्रद्धाञ्जलि स्वामी दर्शनानन्द जी की महत्ता को स्पष्टतया सूचित करती है। प्रस्तुत जीवन चरित्र को परिचयोल्लास, दिग्वजय उल्लास, गुरुकुल उल्लास, और अभिनन्दन उल्लास इन चार उल्लासों में विभक्त किया गया तथा स्वामी दर्शनानन्द जी के विषय में सब ज्ञातव्य बातों का बड़े ही रोचक और प्रभावजनक रूप से संकलन उनके निकट संपर्क में आये लोगों के लेखों वा संस्मरणों द्वारा किया गया है। यह पुस्तक न केवल स्वामी दर्शनानन्द जी के विषय में सम्पूर्ण परिचय देने वाली है अपितु आर्यजनों में स्फूर्ति का भी संचार करने वाली है। पृ. ११८ पर एक तथ्य सम्बन्धी थोड़ी सी भूल हो गई है जिसका संशोधन कर लेना चाहिये। वहां लिखा है--

'अभी कुछ वर्षों से गुरुकुल कांगड़ी के 'मुख्याधिष्ठाता' पद पर जो श्रीयुत पं० धर्मपाल जी 'वेदालंकार' सुशोभित हैं वे इन्हीं प्रशंसित मुंशी लालबहादुर जी रईस के पौत्र हैं।'

वस्तुतः श्री पं० धर्मपाल जी विद्यालंकार हैं (न कि वेदालंकार) और वे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के सहायक मुख्याधिष्ठाता हैं (मुख्याधिष्ठाता मान्य श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति हैं) अन्य भी कोई ऐसी भूल हो गई हो तो उसको ठीक कर लेना चाहिये ताकि यह पूर्ण प्रामाणिक जीवन चरित्र समझा जाए। पृ० १७६ पर विद्याभास्कर डा० हरिदत्त जी शास्त्री की ममताशून्य माता के रूप में दी तथाकथित श्रद्धाञ्जलि का समावेश पाठकों पर अच्छा प्रभाव नहीं उत्पन्न करता।

क्रियात्मक मनोविज्ञान

लेखक—श्री पं० प्रियरत्न जी आर्ष (वर्तमान स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक) प्रकाशक—म० राजपाल ऐन्ड सन्स, कश्मीरी गेट, देहली ६ मूल्य २.००।

इस पुस्तक में दृष्टिबन्ध, अन्तरावेश, सम्मोहन (मेस्मरिज्म) संवशीकरण (हिप्नोटिज्म) संयमसिद्धि का स्वरूप, प्रकार, परीक्षण, विज्ञान, अभ्यास और उपयोग तथा इनके द्वारा जीवन उत्कर्ष और असाध्य रोगों की चिकित्सा, इन पर सुयोग्य पं० प्रियरत्न जी आर्ष ने अपने चिरकालीन अनुभव के आधार पर प्रकाश डाला है। जिनकी इस प्रकार के क्रियात्मक मनोविज्ञान में रुचि है उनके लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी सिद्ध होगी। इन क्रियाओं के दुरुपयोग की सम्भावना भी बहुत होती है इस लिए अनुभवी लेखक महोदय ने स्थान-स्थान पर चेतावनी दे दी है। भूत-प्रेतादि विषयक जो भ्रांत कल्पनाएं सर्वसाधारण में प्रचलित हैं उन का भी निराकरण करते हुए लेखक महोदय ने ठीक ही लिखा है कि 'वास्तव में पात्र के अन्दर प्रेतात्मा, जीवात्मा, विद्युत् आदि कोई भी वस्तु बाहर से नहीं आती, केवल अपने विचारों का आवेश (जोश) वस्तु रूप में तन्मयता से भान होने लगता है, वास्तव में नहीं।' (पृ. ३१) अन्तरावेश पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है कि—

'अन्तरावेश (Spiritualism) लोकोपकार का साधन नहीं है, इससे मनुष्यों में मिथ्या विश्वास ही बन सकते हैं, अतः इसको न

ही किया जाए तो अच्छा है। . . इस अन्तरावेश में दोष अधिक हैं और गुण अत्यल्प हैं। शिष्टों को यह प्रयोग त्याज्य ही है, (पृ. ३३) इसी प्रकार दृष्टिबन्ध (साइटिज्म) आदि का विस्तृत विवरण देने के पश्चात् उन्होंने पृ. ८६ पर लिखा है कि 'यहां तक की विधियां केवल सात्विक न होने से किसी ब्राह्मणवृत्ति पुरुष या किसी साधु-सन्यासी को काम में न लानी चाहियें। मैंने अब इनके परीक्षणों और प्रयोगों का करना सर्वथा बन्द कर दिया है।' 'इत्यादि'

असत्य भाषण, कुसंगति तथा अन्य दुर्व्यसन निवारणार्थ इन क्रियाओं का कैसे उपयोग किया जा सकता है इस बात को लेखक महोदय ने कुछ विस्तार से बताया है। सम्भव है, प्रबल इच्छा-शक्ति वाले पुरुष के निर्बल व्यक्ति पर किये गये ऐसे प्रयोगों से कुछ सफलता मिल जाए किन्तु हमें भय है कि इससे पात्र की इच्छा-शक्ति और भी निर्बल हो जाएगी और वह बाह्य प्रयोग प्रभावशाली न होगा जब तक कोई स्वयं स्वाध्याय, सत्संग, प्रार्थना, आत्मनिरीक्षणादि द्वारा उन्हें दूर करने का प्रयत्न न करे। इस दृष्टि से पुस्तक के अन्त में 'अन्तःकरणीय भौमिकानुभव' 'आत्मीय भौमिकानुभव' इन शीर्षकों से दिये प्रयोग विशेष उपयोगी सिद्ध होंगे ऐसा हमारा विश्वास है। क्रियात्मक मनोविज्ञान के जिज्ञासुओं को इस प्रामाणिक अनुभवाश्रित पुस्तक से विवेकपूर्वक यथेष्ट लाभ उठाना चाहिये।

The Glory And Goal Of Life

By Swami Rajeshwarananda Ji M. A. D. Litt. Editor 'The Call Divine' Madras Published By 'Upanishad Vihar' 10 Venkatesh Puram, Madras—23, Pages 288 Price—R. 3/

श्री स्वामी राजेश्वरानन्द जी एम. ए. डी. लिट् एक सुयोग्य मद्रासी सज्जन हैं जो भारत साधु समाज (मद्रास शाखा) के प्रधान और 'कॉल डिवाइन्' नामक अंग्रेजी मासिक के सम्पादक हैं। इस पुस्तक में मान्य स्वामी जी ने क्लेशपीड़ित विश्व में क्लेशमुक्त बन कर रहो, प्रत्येक व्यक्ति की आध्यात्मिकता, संसार की पहेली, भारतीय विचार का महत्व, जीवन की पवित्रता, ओम् का महत्व, प्रफुल्लता का आनन्द, स्वभाव की मधुरता, प्रेम, सेवा, दिव्यज्योति, आध्यात्मिक जागृति इत्यादि विषयों पर अत्यन्त सरल किन्तु मुहावरेदार प्रभावोत्पादक अंग्रेजी में बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है जो पढ़ते ही बनता है। यह पुस्तक निराश तथा पीड़ित व्यक्तियों में भी नवजीवन का संचार करने वाली तथा सच्ची आध्यात्मिकता के विकास में सहायता देने वाली है। अद्वैतविषयक मान्य लेखक महोदय के कुछ विचारों से असहमत होते हुए भी हम साधारणतया इस पुस्तक को सब के लिए उपयोगी और स्फूर्तिदायक समझते हुए इसके सुयोग्य लेखक महोदय का (जिनके संपर्क में आने का हमें सौभाग्य प्राप्त हो चुका है) अभिनन्दन करते और चाहते हैं कि इनकी इस पुस्तक का विवेक पूर्वक स्वाध्याय करते हुये उससे अंग्रेजी शिक्षित विशेष लाभ उठाएं।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

—

सम्पादकीय

एक अत्यन्त लज्जाजनक विज्ञप्ति

१५ जून के नवभारत टाइम्स आदि समाचार पत्रों में नई देहली से प्रसारित १३ जून की एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है, जिसका शीर्षक है 'रेलों में छात्रों की गुण्डागर्दी।'

इसमें बताया गया है कि रेलवे बोर्ड ने सभी भारतीय रेलों के जनरल मैनेजरों को निर्देश भेजा है कि वे रेलों में छात्रों की गुण्डागर्दी को पुलिस एवं मैजिस्ट्रेटों की सहायता से रोकें। निर्देश में कहा गया है कि केन्द्रीय स्व-राष्ट्र मन्त्री एवं रेल मन्त्री रेलों में सफर करती हुई महिलाओं तथा छात्राओं के प्रति छात्रों के दुर्व्यवहार से बहुत चिन्तित हैं। राज्यसरकारों से भी अनुरोध किया गया है कि वे इस मामले पर विचार करें और आवश्यक कदम उठाएं। रेलवे बोर्ड ने छात्रों की गुण्डागर्दी रोक सकने में रेल कर्मचारियों की असमर्थता की निन्दा की। —प्रेस ट्रस्ट

हमें इस विज्ञप्ति को पढ़ कर अत्यन्त लज्जा आई। हमारे छात्रवर्ग का, जिस पर राष्ट्र का भविष्य निर्भर है क्या इतना नैतिक पतन हो चुका है कि वे यात्रा करती हुई महिलाओं और छात्राओं के साथ अशिष्ट दुर्व्यवहार करने में भी संकोच नहीं करते और उनकी यह गुण्डागर्दी वा अशिष्टता इतना भीषण रूप धारण कर चुकी है कि रेलवे बोर्ड को सभी भारतीय रेलों के व्यवस्थापकों को यह निर्देश भेजने की आवश्यकता अनुभूत हुई कि वे पुलिस एवं मैजिस्ट्रेटों की सहायता से छात्रों की गुण्डागर्दी को रोकें। यह अवस्था भारत जैसे धर्म-प्राण देश के लिये जहां ब्रह्मचर्य और महिलाओं के प्रति मातृ-दृष्टि को संस्कृति की आधार शिला माना जाता है कितनी शोचनीय है ? इसे दूर करने और छात्रवर्ग में सदाचार तथा शिष्टाचार की भावना को पुनरुज्जीवित करने के लिये समाज-हितैषी देश-भक्तों को पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। वेदादि शास्त्रों की सार्वभौम शिक्षा इस प्रयत्न में सबसे अधिक सहायता दे सकती है, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं। जब तक उदार धर्म शिक्षा का विद्यालयों और महाविद्यालयों में प्रबन्ध न होगा तथा सम्पूर्ण वातावरण को पवित्र सदाचार पूर्ण बनाने का यत्न न किया जाएगा तब तक इस शोचनीय अवस्था में सुधार न हो सकेगा।

दान कार्यों में भी भ्रष्टाचार

आचार्य विनायक जी (श्री विनोबा भावे जी) ने जो भूमिदान यज्ञ शुद्ध भावों से प्रेरित हो कर निर्धनों की सहायता के लिये चलाया, वह अभिनन्दनीय है किन्तु यह कितने खेद और आश्चर्य की बात है कि इतने पवित्र कार्य में भी अनेक लोग भ्रष्टाचार का प्रदर्शन करते हुए लज्जित नहीं होते। १५ जून का हजारी बाग बिहार का समाचार है कि 'बिहार में भूदान यज्ञार्थ प्राप्त ८२२०११ एकड़ भूमि में से ६२५२५ एकड़ भूमि ही खेती के योग्य पाई गई और हरिजनादि में वितीर्ण कर दी गई।'

इस प्रकार ज्ञात होता है कि बहुत से लोगों ने इस यज्ञ में भी भ्रष्टाचार का

प्रयोग किया और कई लाख ऊसर भूमि दान के नाम पर दे दी जिसको खेती आदि के काम में लगाया ही नहीं जा सकता। यह राष्ट्रीय चरित्र में अत्यन्त कलंक की बात है कि यज्ञ जैसे पवित्र पुण्यजनक कार्य में भी भ्रष्टाचार करते हुए लोगों को संकोच न हो और न सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा परमेश्वर का ही भय हो। इस प्रकार के समाचारों से हृदय को कितना आघात पहुंचता है? सच्चे धर्म और प्रचार की अभी कितनी अधिक आवश्यकता है?

पूजा के नाम पर पाखण्डपूर्ण प्रवंचन

चण्डीगढ़ से एक समाचार जून मास के पत्रों में प्रकाशित हुआ है जिसका शीर्षक 'राहु केतु ज्योतिषी बन कर आये।' ऐसा दिया गया है। उसमें कहा गया है कि अभी पढ़े लिखे मूर्खों की कमी नहीं है। यह बात एक सुशिक्षित और धनवान् परिवार को एक पाखण्डी ज्योतिषी द्वारा धोखा देने से पुनः सिद्ध होती है।

घटना इस प्रकार है कि एक पाखण्डी ने आ कर एक सुशिक्षित परिवार के समस्त सदस्यों के दिमाग में यह बात बैठा दी कि उन पर राहु केतु ग्रहों का कुप्रभाव है और यदि इस निमित्त उचित उपाय किये जाएं तो उक्त कुप्रभाव समाप्त किया जा सकता है। ज्योतिषी के इन वाक्यों से प्रभावित होकर घर की मालकिन नें समस्त स्वर्णाभूषण राहु केतु की उपासना हेतु समर्पित कर दिये जिन्हें गूंदे हुए आटे में छिपा कर राहु केतु की प्रतिमा बना दी गई। उसी समय ज्योतिषी जी ने अपने थैले में से एक लाल रङ्ग की पट्टी निकाल कर अपनी प्रतिमा के ऊपर लपेट दी। अब ज्योतिषी महोदय ने कराल स्वर में कहा 'मैं उपासना और मन्त्रजाप करूंगा, इस अवधि में यदि परिवार के किसी सदस्य ने प्रतिमा देखने का प्रयत्न किया तो वह नेत्रहीन हो जाएगा।'

इस आदेशानुसार प्रतिमा को एक बक्से में रखा गया। उसकी चाबी भी वे ज्योतिषी महोदय अपने साथ ही ले गये ताकि परिवार का कोई व्यक्ति ग़लती से भी प्रतिमा को न देख पाए।

४८ घण्टे बीत जाने के बाद भी जब ज्योतिषी नहीं पधारे तो परिवार के एक सदस्य ने ताला तोड़ा तो क्या देखते हैं कि बक्से में गूंदे हुए आटे से स्वर्ण गायब है। ये लोग कह रहे हैं कि राहु केतु स्वयं ही ज्योतिषी बन कर परिवार पर कृपा-दृष्टि करने पधारे थे।

—वीर अर्जुन १६- ६. ५६।

इस समाचार को पढ़ कर जहां सुशिक्षित लोगों के अज्ञानपूर्ण अन्धविश्वास पर हँसी आती है वहां पाखण्डी तथाकथित ज्योतिषी के कुचक्र में कैसे अब तक हमारे बहुत से सुशिक्षित भाई बहिन भी फंसे हुये हैं यह देख कर अत्यधिक दुःख होता है। यदि ऐसे शिक्षित लोग महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास को पढ़ लेते तो ऐसे मूर्खतापूर्ण कार्य करने और अपनी अपार हानि करने से बच जाते।

महर्षि ने वहां स्पष्ट लिखा है कि 'जब किसी ग्रहस्त, ग्रह ग्रस्त ज्योतिर्विदाभास के पास जा के कहते हैं 'हे महाराज इसको क्या है?'

तब वह कहते हैं कि 'इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनकी शान्ति पाठ, पूजा दान कराओ तो इसको सुख हो जाए, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाए तो भी आश्चर्य नहीं। (उत्तर) कहिये ज्योतिर्वित् ! जैसी यह पृथिवी जड़ है, वैसे ही सूर्यादि लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित हो के दुःख और शान्त हो के सुख दे सकें। (प्रश्न) तो क्या ज्योतिःशास्त्र झूठा है ? (उत्तर) नहीं, उसमें अंक, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है।' . . . यहां यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जप-पाठ से कुछ न हो तो दूने तिगुने रुपये उन धूर्तों से ले लेने चाहियें और बच जाए तो भी लेने चाहियें क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि 'इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं।' वैसे गृहस्थ भी कहे कि 'यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है तुम्हारे करने से नहीं।' महर्षि की इन पंक्तियों से उन सब की आंखें खुल जानी चाहियें जो अब तक इन पाखण्डी धूर्तों के चक्कर में पड़ कर अपनी हानि करते और फिर पछताते हैं।

मान्य प्रधान मंत्री जी का प्रेममय भगवान् में विश्वास

कई लोग ऐसा कहते हैं कि भारत के माननीय प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल जी का ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं और इस अर्थ में वे नास्तिक हैं किन्तु अभी ७ जून को कोयम्बतूर में भाषण देते हुए उन्होंने जो यह स्पष्ट घोषणा की कि 'मैं भय के भगवान् की अपेक्षा प्रेम के भगवान् को पसन्द करता हूं।' उससे उस भ्रान्त धारणा का स्पष्ट निराकरण होता है। हमें इस वक्तव्य को पढ़ कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। यद्यपि हमें इससे पूर्व भी अपने मान्य मित्र, विश्व ऐक्य संघ के संयुक्त संयोजक श्री अनिल कुमार मुखोपाध्याय द्वारा जो उनसे कुछ मास पूर्व मिले थे यह निश्चित ज्ञात हुआ था कि माननीय श्री नेहरू जी ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते हैं।

माननीय उपराष्ट्रपति जी का सत्परामर्श

भारत के सुयोग्य उपराष्ट्रपति श्री डा० राधाकृष्णन् जी ने २१ जून को कबीर जयन्ती के अवसर पर देहली में भाषण करते हुए कहा कि 'यदि लोग सच्चे धार्मिक बनना चाहते हैं तो उन्हें अस्पृश्यता तथा अन्य कल्पित और कृत्रिम भेदों के निवारण के लिये कार्य करना चाहिये जो हमारे समाज की प्रगति में बाधक सिद्ध हुए हैं।' उन्होंने इस बात पर दुःख प्रगट किया कि हमारे देश में इस समय एक झूठा धार्मिक दृष्टिकोण है जिसने अनेक कठिनाइयां पैदा कर दी हैं। धर्मविषयक इस झूठे दृष्टिकोण के कारण हम सिद्धान्त रूप से तो ईश्वर विश्वासी हैं परन्तु क्रियात्मक रूप से नास्तिक बने हुये हैं। उन्होंने यह भी कहा कि हमारे देश के इतिहास में राजनीतिज्ञों की अपेक्षा भी ऋषियों और साधु-सन्तों ने अधिक स्थायी योग दिया है। हम अपने लोगों की राजनैतिक और आर्थिक स्थिति को उन्नत करने के लिये प्रयत्न

कर रहे हैं किन्तु उन्होंने चेतावनी दी कि यह सब व्यर्थ हो जाएगा। यदि इसके साथ-साथ मनुष्यों को उत्तम बनाने की ओर ध्यान न दिया जाएगा। इसके लिये आवश्यक अनुशासन आत्मा पर आश्रित धर्म के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इस लिये हमें प्रेम और सेवा के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। इत्यादि। हम माननीय उपराष्ट्रपति जी के इस परामर्श को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते हुए उस का हार्दिक समर्थन करते हैं। सच्चा धर्म जैसे कि—

धारणाद् धर्म इत्याहुः, धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं, स धर्म इति निश्चयः॥

इत्यादि श्लोकों में दी उसकी निरुक्ति से ही स्पष्ट है सारी प्रजा को धारण करने वाला और सबको मिलाने वाला धर्म होता है। कृत्रिम जातिभेद, अस्पृश्यता आदि उस सच्चे धर्म की भावना के सर्वथा विरुद्ध हैं अतः उनके निवारणार्थ सब समाज देश हितैषियों को संगठित प्रबल आन्दोलन करना चाहिये।

कृत्रिम जाति भेद की बुराइयों पर 'गुरुकुल पत्रिका' में हम अनेक वार प्रकाश डाल चुके हैं अतः उनको दोहराने की आवश्यकता नहीं। हमें यह देख कर दुःख होता है कि आर्यों में भी अपने नामों के पीछे जातिसूचक शब्द लगाने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। हम इसे नितान्त अनुचित समझते हैं।

केरल में विषम परिस्थिति

प्रायः अनीश्वरवादी, धर्मविरोधी कम्युनिस्टों द्वारा शासित केरल में जो भयंकर परिस्थिति गत कई मासों से हो रही है उससे पाठक परिचित होंगे। कम्युनिस्ट लोगों की अनुचित कार्यवाहियों से जनता में अत्यधिक विक्षोभ और असन्तोष उत्पन्न हो गया है तथा विरोधी दल संगठित होकर वर्तमान मन्त्रिमण्डल को गिराने का प्रयत्न कर रहा है। हमारे प्रधानमन्त्री श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू ने तीन दिन केरल में रह कर सारी परिस्थिति का गम्भीरता से स्वयम् अवलोकन किया और सब दलों के लोगों से वे मिले। उसके परिणामस्वरूप उन्होंने मुख्यमन्त्री श्री नम्बूदरीपाद को यह परामर्श दिया था कि नये चुनाव करा लिये जाएं जिससे यह ज्ञात हो सके कि वर्तमान मन्त्रिमण्डल को जनता का विश्वास प्राप्त है या नहीं। केन्द्रीय पार्लियामेन्टरी बोर्ड ने भी इसी आशय का प्रस्ताव सारी परिस्थिति पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के पश्चात् पारित किया है किन्तु केरल के मुख्यमन्त्री इस प्रस्ताव को स्वीकृत करने को तैयार नहीं।

यदि ऐसी ही परिस्थिति बनी रही तो राष्ट्रपति शासन को लागू करना पड़ेगा यह स्पष्ट प्रतीत होता है। सबसे अच्छी बात यह है कि कम्युनिस्ट मन्त्रिमण्डल नये चुनाव कराने के प्रस्ताव को स्वीकार कर ले ताकि जनता को अपने सच्चे प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने का अवसर मिले। वर्तमान अवस्था निन्दनीय है।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

गुरुकुल-समाचार

मान्य उपकुलपति जी स्वस्थता की ओर

पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के मान्य उपकुलपति तथा मुख्याधिष्ठाता श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति जिनको मई मास में चिन्ता-जनक अस्वस्थता के कारण देहली में डा० सेन के नर्सिङ्ग होम में प्रविष्ट कराना पड़ा था, गत ४ जून को चिकित्सालय से जवाहरनगर, देहली स्थित अपने घर में आ गये और उनके स्वास्थ्य में सन्तोषजनक प्रगति है। परमेश्वर की कृपा से अब वे साधारणतया स्वस्थ हैं। चिन्ता की कोई बात नहीं।

स्नातक श्री पं० दीनदयालु जी शास्त्री को उपशिक्षा मन्त्री पद पर नियुक्ति

यह जान कर सब गुरुकुल प्रेमियों को अत्यधिक हर्ष होगा कि गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक गुरुकुल फार्मेसी के अध्यक्ष और सुप्रसिद्ध उत्साही, राष्ट्रीय कार्यकर्ता श्री पं० दीनदयालु जी सिद्धान्तालंकार, शास्त्री की गत ११ जून को उत्तरप्रदेशीय सरकार ने शिक्षा के उपमन्त्री के रूप में नियुक्ति की है। इसके उपलक्ष्य में गुरुकुलवासियों की ओर से १७ जून को मान्य शास्त्री जी को प्रीतिभोज दिया गया। २४ जून को गुरुकुल कार्यालय के कर्मचारियों की ओर से उनका अभिनन्दन करते हुए उनकी राष्ट्रीय तथा गुरुकुल विषयक सेवाओं का निर्देश किया गया। गुरुकुल फार्मेसी के कर्मचारियों की ओर से उनका जलूस निकाला गया। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में पं० दीनदयालु जी ने सदा प्रमुख भाग लिया और अनेक बार उन्हें जेल-यात्रा करनी पड़ी। उनका यह सम्मान

श्री पं० दीनदयालु जी शास्त्री

गुरुकुल का सम्मान है अतः स्वाभाविकतया सब कुलवासी अत्यन्त प्रसन्न हैं और उनका दृढ़ विश्वास है कि मान्य शास्त्री जी शिक्षोपमन्त्री के रूप में प्रशंसनीय कार्य कर सकेंगे तथा इससे भी अधिक उन्नत पद को वे सुशोभित करेंगे।

गुरुकुल भूमि में आचार्य सम्मेलन

२४ जून से ३० जून तक गुरुकुल भूमि में विविध शिक्षण संस्थाओं के आचार्यों का सम्मेलन हुआ जिसमें ४० संस्थाओं के आचार्यों ने भाग लिया। इसमें शिक्षा सम्बन्धी अनेक समस्याओं पर गम्भीरता से विचार विमर्श किया गया।

शोक समाचार

दो स्नातक बन्धुओं का वियोग

यह समाचार देते हुए हमें शोक होता है कि गुरुकुल कांगड़ी आयुर्वेदमहाविद्यालय के योग्य स्नातक श्री पं० आर्यवीर जी आयुर्वेदालंकार का गत २६ मई को बम्बई के एक हस्पताल में देहावसान होगया। गुरुकुल फार्मेसी की देहली शाखा के उत्साही अभिकर्ता श्री पं० रमेशचन्द्र जी आयुर्वेदालकार का २ जून को देहली में लम्बी बीमारी के कारण देहावसान हो गया।

हम इन स्नातक बन्धुओं के देहान्त पर शोक प्रकट करते हुए इनके सन्तप्त परिवारों तथा अन्य सम्बन्धियों से हार्दिक समवेदना प्रकट करते तथा भगवान् से इनकी सद्गति के लिये प्रार्थना करते हैं।

मसूरी यात्रा

गतवर्ष की भांति इस वर्ष भी ग्रीष्मावकाश के दिन बिताने के लिए गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के विद्यालय-विभाग के १म से ६म श्रेणी तक के २८ ब्रह्मचारी छात्रों का एक दल ३१ मई १६५६ से ३० जून १६५६ तक सरस्वती यात्रार्थ मसूरी गया। उक्त दल के साथ व्यवस्था प्रबन्धादि निमित्त २२ अन्य व्यक्ति भी थे। कैम्प स्थान 'मोती भवन' हैपी वैली और म्युनिसिपलगार्डन के बीच मुख्य मार्ग पर स्थित एक सुन्दर निवासगृह (कोठी) है, जिसमें निवास के लिए बड़े-बड़े साफ-सुथरे आवश्यक फर्नीचर, फर्श, चित्र, विद्युत्-प्रकाश, पानी से युक्त १४ हवादार कमरे, बरामदे, भोजनालय, क्रीड़ा के साफ-सुथरे मैदान, पक्के रास्ते, फुलवारियां, शौचालय आदि सब आवश्यक वस्तुएं तथा सुविधाएं सुलभ थीं। उक्त स्थान मुख्य बस्ती से २–२॥ मील दूर है।

विद्यालय के ब्रह्मचारियों के लिए यह स्थान सर्वतोभावेन उपयुक्त ही था, अतः उक्त स्थान पर प्रबन्ध-व्यवस्थादि के लिए पांच व्यक्तियों का एक अग्रगामी दल—श्री श्रीमन्नारायण जी दीक्षित, अध्यक्ष गुरुकुल पार्टी के नेतृत्व में हरिद्वार से चलकर उसी दिन रात्रि को मसूरी पहुंचा।

मसूरी पहुंचते ही वर्षा ने अभिनन्दन किया। हरित वन राजि शस्य-श्यामल पर्वतराज हिमालय की गोद में क्रीडा करते हुए नीलाम्बर घन-शावक सौंदर्य पिपासु दर्शकों के मन को उलझाने के लिए वंचकों के समान नाना वेष-आकृति धारण कर रूप का जाल फेंक रहे थे। दर्शकों के हृदय का कुतूहल सिहर उठता था और वे सहसा जिसका सब कुछ लुट गया उस व्यक्ति के समान अवाक् खड़े रह जाते थे।

अग्रगामी दल ने वर्षा का सामना करते हुए भी यथासम्भव निवास, भोजनादि की उचित व्यवस्था कर ली। ३० मई को प्रातः १० बजे श्री दीक्षित जी ने यात्रा पर आने वाले ब्रह्मचारियों तथा स्टाफ का रात्रि के ६ बजे स्टेशन पर स्वागत किया। ३१ मई प्रातः १० बजे समस्त पार्टी मोटर बस द्वारा मसूरी रवाना हुई, जो १२॥ बजे मसूरी पहुंची।

प्रत्येक श्रेणी के निवास के लिये स्थान पूर्वतः नियत था। किसी को कोई कष्ट, असु-

विधा मार्ग में अथवा आश्रम (मोती भवन) में नहीं हुई । 'मोती भवन' कैम्प में कार्यालय, चिकित्सालय, भोजनभण्डार, पोस्टआफिस, सभा भवन, वाचनालय, शौचालय आदि का समुचित प्रबन्ध किया जा चुका था । दिनचर्या समयविभागानुसार विभक्त थी । प्रत्येक कार्य के लिए समय निश्चित था । प्रातः ५ बजे जागरण, मन्त्रोच्चारण, शौच-स्नान, दंत धावन, भ्रमण, संध्या-अग्निहोत्र, भोजन, विश्राम, अध्ययन, क्रीडा, पुनः परीक्षा वाले छात्रों की विशेष शिक्षा, मध्याह्न भ्रमण, सन्ध्या-अग्निहोत्र, भोजन, सरस्वती सम्मेलन, विनोद सभाएं (कथा, कहानी, अन्त्याक्षरी श्लोक, गीत, कविताएं, चुटकुले, उपदेश आदि-आदि), शयन मंत्र रात्रि ९॥ बजे । यह थी दिनचर्या ।

खेल-कूद मनोरंजनार्थ कैरमबोर्ड टूर्नामेंट, कबड्डी टूर्नामेंट, वालीबाल,व्यापार,लूडो आदि इनडोर गेम्स किए गये । जिसमें ब्रह्मचारियों, अधिष्ठाताओं तथा अन्य कर्मचारियों ने उत्साह-पूर्वक भाग लिया ।

समस्त ब्रह्मचारी अपने-अपने अधिष्ठाताओं के साथ प्रतिदिन दोनों समय नियमतः नियत समय पर भ्रमणार्थ जाते थे । ब्रह्मचारियों ने मसूरी के निम्न स्थानों को देखा है—तोप टिब्बा, लाल टिब्बा, डिपो केम्पटी फॉल, भट्टा फॉल, पोलो ग्राउंड, चण्डाल गढ़ी, घंटाघर,भारी पम्पा हाउस, कम्पनी बाग, राजा का महल, कब्रिस्तान, मन्दिर, बूरी, राधा भवन, विडला भवन, मानव भारती, केमिलस बैंक, तिलक लाईब्रेरी, देहरादून चित्रकला प्रदर्शनी, मैसूर कन्या प्रदर्शनी तथा अन्य कतिपय तालाब,झरने, वनप्रदेशादि ।

सामाजिक जीवन तथा धार्मिक सत्संग लाभ करने के लिए प्रत्येक रविवार को ३य से ९म तक के समस्त छात्र अपने-अपने अधिष्ठाताओं के साथ पंक्तियों में तथा छोटे-छोटे समूहों में आर्य समाज मन्दिर में जाते थे वहां वे सक्रिय भाग लेते थे और पूरे समय बैठते थे । सभी ब्रह्मचारियों ने श्री दलाईलामा के दर्शन उनके निवास स्थान पर किये । मोती भवन के सामने से निकलते हुए श्री दलाईलामा ने गुरुकुल के ब्रह्मचारी तथा अध्यापकों, गुरुकुल तथा ब्रह्मचारियों के सम्बन्ध में २ मिनट बात भी की तथा हाथ मिलाया ।

मोती भवन में कई प्रतिष्ठित व्यक्ति पधारे और उनसे अनेक विषयों पर वार्तालाप हुए जिनमें से प्रमुख व्यक्ति हैं—सर्व श्री डा.सत्यकेतु जी विद्यामार्तण्ड, रायबहादुर श्री हरि जी, श्रीमती सत्यासूद (सदस्या कांग्रेस मण्डल) डा० ओझा, (बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी) मि० बसेरा कर्नल एन. सी. सी. इन डिवीजन, श्री पी डी. चावला, श्री सत्यदेव जी स्नातक (अफ्रीका) श्री सत्यदेव जी स्नातक (सदस्य विद्या सभा) श्री गजाधर प्रसाद शास्त्री आदि आदि । अन्य व्यक्तियों से भी भेंट की नाम इस प्रकार थे—श्री आर. एस. रंजन भूतपूर्व वाइस चांसलर इलाबाद यूनिवर्सिटी, श्री कालिका प्रसाद जी भटनागर वा० चा० आगरा यूनिवर्सिटी, श्री के० एन० सहाय एजूकेशन मिनिस्टर (पटना)

बिहार। वार्तालाप में प्रतीत हुआ कि ये सभी महानुभाव गुरुकुल के आदर्शों से प्रेम करते हैं।

मसूरी तथा देहरादून के प्रबन्ध तथा यातायात विभाग के सभी अधिकारियों से हमें पूरा-सहयोग मिला है, इस लिये गुरुकुल उनके प्रति कृतज्ञ है।

श्री डा० सत्यपाल जी तथा विद्यालय स्टाफ़ के समस्त अधिष्ठाता तथा अन्य कर्मचारियों ने अत्यन्त परिश्रम, प्रेम तथा सहयोग के साथ कार्य किया, वे बधाई के पात्र हैं।
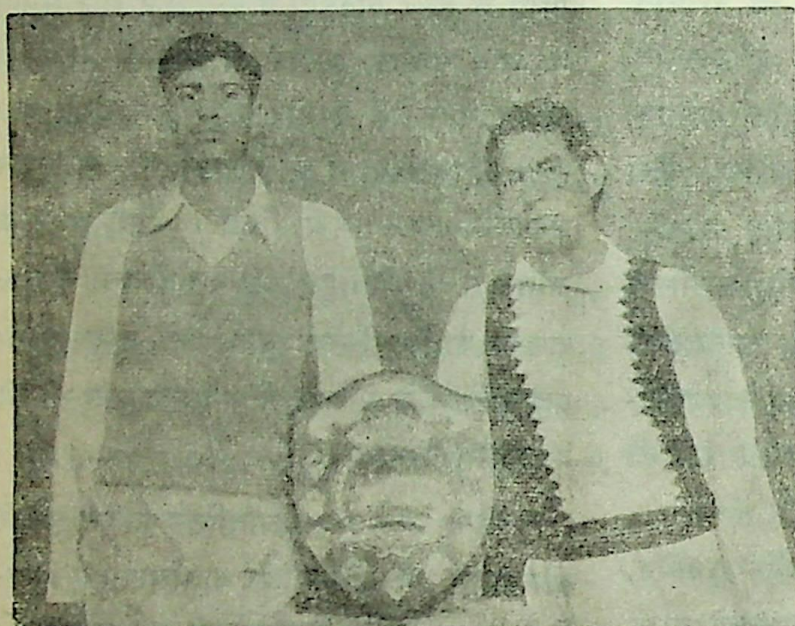
संस्कृत भाषण प्रतियोगिता में

विजयी

रोहतक संस्कृत भाषण प्रतियोगिता में विजयी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के ब्रह्मचारी सुभाषचन्द्र और वेद प्रकाश श्रेणी १३, वेद महाविद्यालय।

सूचना

१३ जुलाई से महाविद्यालय तथा १६ जुलाई से विद्यालय विभाग दीर्घावकाश के पश्चात् खुल रहा हैं और नये सत्र की पढ़ाइयां आरम्भ हो रही हैं। जो विद्यार्थी अवकाश पर घर गए हुए हैं, उन्हें अवकाश समाप्ति पर ठीक तिथि पर यहां उपस्थित हो जाना चाहिये अन्यथा नियमानुसार विलम्ब दण्ड लगेगा। आशा है कि सभी विद्यार्थी अवकाश के बाद ठीक समय पर उपस्थित होना अपना कर्तव्य समझेंगे।

—आचार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय।

स्वाध्याय के लिये चुनी हुई पुस्तकें

वेद का राष्ट्रीय गीत

श्री पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति

इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने अथर्ववेद के प्रसिद्ध सूक्त की एक एक ऋचा का अन्वय पूर्वक अर्थ किया है। मूल सूक्त की भव्य कविता वाचक को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। इसमें मातृभूमि की गुण गरिमा का गान किया गया है जिसे पढ़ कर मातृभूमि के प्रति श्रद्धा से नत हो जाना पड़ता है। पुस्तक सभी प्रकार से संग्रह करनी चाहिये।

मूल्य केवल पांच रुपये, डाक व्यय अलग।

ईशोपनिषद् भाष्य

श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत पुस्तक में लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् लेखक ने 'ईशोपनिषद्' का बहुत सुन्दर हिन्दी भाष्य लिखा है। इसमें आधुनिक युग के अनुसार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। इस भाष्य का मनन करने से वैयक्तिक, सामाजिक तथा जागतिक तीनों प्रकार की शान्ति सुलभ हो सकती है। ज्ञान पिपासुओं के लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है।

मूल्य केवल दो रुपये, डाक व्यय अलग।

हमारा चुना हुआ साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ईशोपनिषद् भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२.००
वेद का राष्ट्रीय गीत	श्री प्रियव्रत	५.००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	,,	५.००
वरुण की नौका, २ भाग	,,	६.००
वैदिक विनय ३ भाग, श्री अभय	हर एक	२.००
वैदिक सूक्तियां	श्री रामनाथ	१.७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त	१.५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२.००
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२.००
ब्राह्मण की गौ	,,	.७५
वेदगीतांजलि	श्री वेदव्रत	२.००
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, ३ भाग		३.७५
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२.००
वैदिक पशुयज्ञमीमांसा	श्री विश्वनाथ	१.००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१.२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२.००
लहसुन : प्याज़	श्री रामेश बेदी	२.५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	,,	३.००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	,,	३.२५
वेदों का यथार्थ स्वरूप	श्री धर्मदेव वि० मा०	६.५०
वैदिक कर्तव्य शास्त्र	,,	१.५०

पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाइये। धार्मिक संस्थाओं के लिये विशेष रियायत का भी नियम है।

पुस्तक भण्डार, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (ज़ि० सहारनपुर)।

मुद्रक : रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक : धर्मपाल विद्यालंकार, स०मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

सम्पादक : श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

गुरुकुल पत्रिका

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की राष्ट्रीय छात्र सेना के भवन का शिलान्यास करते हुए उपकुलपति श्री इन्द्र जी विद्यावाचस्पति।

गुरुकुल-पत्रिका

पूर्णाङ्क १३०

मई १९५९

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय हरिद्वार

इस अङ्क में

विषय		पृष्ठ-संख्या
वेदामृत गीत	श्री वेदव्रत वेदालङ्कार	३२५
उत्तरीय भारत की उर्दू संस्कृति	श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति	३२६
अभिनन्दन	कवि श्री कमल जी साहित्यालंकार	३२९
स्वास्थ्य और उपवास	ब्र. विश्वराजम् गुरुकुल कांगड़ी	३३०
तिब्बत चीन और भारत	श्री पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार	३३४
सभ्यता क्या है ?	महात्मा गान्धी	३३८
समस्त गुरुकुल प्रेमियों की सेवा में		३३९
आध्यात्मिक श्रद्धा	आचार्य विनोबा भावे	३४०
क्या हम प्रसन्नता के अधिकारी हैं ?	श्री भारतभूषण जी	३४१
प्रणव गीत (कविता)	श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड	३४२
गुरुकुलों के आदर्श से प्रेरणा	श्री वासुदेवशरण जी एम. ए., डी. लिट्	३४३
ज्ञान के साथ बुद्धि की आवश्यकता	उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्	३४४
राष्ट्रभाषा और सच्चरित्र का महत्त्व	श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक	३४५
साहित्य-समीक्षा	श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड	३४७
नवयुवकों को उद्बोधन (कविता)	कवि जोरावरसिंह जी बरसाना	३५१
सम्पादकीय	श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड	३५२
गुरुकुल-समाचार	ब्र० दिलीप कुमार	३५७
गुरु-शिष्य के वास्तविक मेल से संसार में शान्ति	स्वामी श्रद्धानन्द जी	३६०

अगले अङ्क में

मध्य युग के अन्त में भारत — श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक	मूल्य एक प्रति	वर्ष ११	ज्येष्ठ
विदेश में ६) वार्षिक	३७ नये पैसे (छः आने)	अंक १०	२०१६

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेदामृत गीत

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥

अथर्व० १०. २. ३२. ३३।

शब्दार्थ—

(तस्मिन्) उस (त्रिअरे) ज्ञान, कर्म उपासनारूप तीन अरों वाले (त्रिप्रतिष्ठिते) तीन वस्तुओं पर स्थित, तीन कालों में प्रतिष्ठित (हिरण्यये कोशे) सुनहले कोश में (यत् आत्मन्वत् यक्षम्) जो आत्मवान् यज्ञमय पुरुष है (तत्) उसे (वै) निश्चय से (ब्रह्मविदः) ब्रह्मजानी पुरुष ही (विदुः) जानते हैं।

उस (प्रभ्राजमानाम्) अत्यन्त चमकीली (हरिणीम्) आकर्षक (यशसा संपरीवृताम्) कीर्ति से व्याप्त अत्यन्त यशस्विनी (अपराजिताम्) दुर्जेय (हिरण्मयीं पुरम्) सुनहली नगरी में (ब्रह्मा) वेद परमब्रह्म (विवेश) विराजमान है, प्रविष्ट हुए हैं।

अयोध्या

अमेय पुण्य लहरी
चेतना सहस्र धार
तीन तीन, बार बार
मनोहारिणी सुरूप
तमो विहीन धूप धूप
यश से भरी अभेद्य
भ्राजमान देह रूप
अपराजिता अनूप
अजेय देव नगरी॥

में प्रविष्ट ब्रह्मदेव
हो रहे अवश्यमेव।
तभी तो सभी विकार
हुआ शान्त, सुधासार
स्वर्ग में सजे हैं, आज,
तीन तीन, बार बार।
अष्टचक्र नवद्वार
अजेय देव नगरी॥

—वेदव्रत वेदालंकार।

उत्तरीय भारत की उर्दू संस्कृति

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

उर्दू यद्यपि एक भाषा का नाम है पर मैं उस का प्रयोग संस्कृति के लिये कर रहा हूं। इस का कारण समझाने के लिये छोटी भूमिका की आवश्यकता है।

पहले हमें यह देखना होगा कि उर्दू नाम की भाषा का कैसे जन्म हुआ और वह किन की भाषा बनी ? जब हम यह जान लेंगे तो हमें स्वयं यह विदित हो जायेगा, कि उर्दू केवल एक भाषा के रूप में उत्तरीय भारत में नहीं आई, वह अपने साथ लगी हुई एक संस्कृति को घसीट कर लाई, जो उत्तार मुगल काल में उत्तरीय भारत में फैल गई।

उर्दू भाषा के जन्म के सम्बन्ध में दो कल्पनायें हैं। एक कल्पना यह है कि उस का जन्म मुगल बादशाहों के लश्करों और बाजारों में हुआ। सदियों तक भारत के शासन की भाषा फारसी और जनता की भाषा हिन्दी रही, जिस का साहित्यिक रूप उस समय व्रज भाषा था। कुछ विद्वान् यह मानते है कि निरन्तर सम्पर्क के कारण सर्वसाधारण हिन्दू मुसलमानों ने अपने मिलने के स्थानों पर एक खिचड़ी बोली का प्रयोग आरम्भ कर दिया, जो कालान्तर में उर्दू कहलाई। आम तौर पर उर्दू के उद्भव के सम्बन्ध में इसी कल्पना को माना जाता है।

दूसरी ओर कुछ विचारक इस कल्पना को भ्रान्तिमूलक मानते हैं। उन का कहना है कि उर्दू का जन्म छावनियों या बाजारों में नहीं हुआ, अपितु दिल्ली के लाल किले में हुआ है। उर्दू के कई प्रसिद्ध मुसलमान लेखकों ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि उर्दू जुबान शाहजहानाबाद के लाल किले के कारखाने में घड़ी गई, और यहीं से उस का फैलाव हुआ।

दिल्ली वालों की इस कल्पना का खंडन करने वाले लोगों का कहना है कि वस्तुतः उर्दू का विकास तो हुआ ही दक्खिन में है। उन का दावा है कि शाहजहां के पीछे जब औरङ्गजेब ने दिल्ली में कलाओं का ब्लैक आउट कर दिया, तब दक्षिण के बीजापुर, अहमद नगर और गोलकुण्डा आदि राज्यों में ही उर्दू की पालना हुई। इस बात का आभास उर्दू के एक महाकवि की उस उक्ति से मिलता है, जिस में उस ने कहा है कि यद्यपि दक्खिन में साहित्यिकों के अधिक सम्मानित होने की बात सुनी जाती है, तो भी 'कौन जाये जौक पर दिल्ली की गलियां छोड़ कर' इस से प्रतीत होता है उत्तरकालीन मुगल शासकों के समय में उर्दू साहित्य का केन्द्र दिल्ली नहीं था, दक्षिण था।

मैं इस स्थान पर उर्दू के जन्म स्थान की बहस में न पड़ कर सारांश के रूप में इतना कहना चाहता हूं कि मेरी सम्मति में उर्दू भाषा का जन्म तो उन्हीं स्थानों पर हुआ, जहां सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान मिलते और हाकिम महकूम के भेद भाव को छोड़ कर परस्पर वार्तालाप करते थे। वह स्थान छावनी, बाजार, और ग्राम आदि अनेक थे। व्रजभाषा,

जिसे उस समय के अनेक मुसलमान लेखकों ने ग्वालियरी भाषा का नाम दिया है, के साथ फारसी का मिश्रण हुआ। शरीर का अस्थि-पंजर ब्रज भाषा से आया और उसमें मांस और मज्जा का समावेश फ़ारसी शब्दों से हुआ। इस मिश्रण का परिणाम उर्दू भाषा के रूप में प्रकट हुआ।

वह भाषा नीचे की सतह से होकर लाल किले में भी पहुंची। वहां के उलमाओं और सरदारों द्वारा भाषा का परिष्कार किया गया, और वह परिष्कार खूब हुआ। इतना ज़ोरदार परिष्कार हुआ कि उसके सामने छावनी और बाजार की उर्दू बिल्कुल मन्द पड़ गई। कालान्तर में असली उर्दू वही समझी जाती थी, जिस पर दिल्ली और कुछ समय पीछे लखनऊ की छाप हो। जनता की भाषा को उस समय के उर्दू के कई विद्वान् लेखक उड़दू के नाम से पुकारते थे। इस प्रसंग में उन्नीसवीं सदी के मुसलमान लेखक के अवतरण बहुत मनोरंजक हैं। वह लिखता है।

"हम अपनी जुबान को मरहठी बाजी. लावनी बाजी की जुबान, धोबियों के खंड, जाहिल ख्यालबन्दी के ख़्याल, टेसू के राज, यानी बेबूर, पा अतफान का मजमूआ बनाना कभी नहीं चाहते, और न आजादान उर्दू को ही पसन्द करते हैं, जो हिन्दुस्तान के ईसाइयों,अन-मुस्लिम भाइयों ताजा, विलायत साहिब लोगों, खान सामाओं, कैम्पब्वायों और छावनियों के सक्त बेभड़े बाशिन्दों ने अख्तियार कर ली है। हमारे जरीफुल्लवा दोस्तों ने मजाक में इसका नाम उड़दू रख दिया है।

इस शिकायत भरे लेख के लिखने वाले सज्जन ने जिसे उड़दू कहा है, असल में उर्दू का जन्म वैसी ही एक भाषा से हुआ था, जिसे लाल किले के कारीगरों ने शान पर चढ़ा कर चमकाया और एक साहित्यिक भाषा बनाया था।

इससे किसी को भी इनकार नहीं हो सकता कि हिन्दुओं और मुसलमानों के निरन्तर सम्पर्क से उत्पन्न हुई उर्दू ज़बान का भारत के सांस्कृतिक विकास के इतिहास में बहुत विशिष्ट स्थान है। यद्यपि उसका जन्म छावनियों और बाजारों में हुआ, तो भी शीघ्र ही उसे सल्तनतों के संचालकों ने अपना लिया। उसका जन्म उत्तरी भारत के निचले स्तर में हुआ था, परन्तु वह राजाश्रय पाकर दक्षिण तक फैल गई। यहां तक कि जहां मुसलमानों की हुकूमत थी, उससे आगे बढ़ कर वह भाषा फुटकर रूप में मराठा साम्राज्य जैसे ठेठ हिन्दू राज्यों में भी जा पहुंची। उस समय की मराठी भाषा में, शासन सम्बन्धी बहुत सी परिभाषाएं उर्दू फारसी की समाविष्ट हो गई थीं।

यदि हम उत्तरकालीन मुगल काल की सामाजिक दशा का गंभीरता से अनुशीलन करें, तो हम इस परिणाम पर पहुंचे बिना नहीं रह सकते कि उर्दू भाषा केवल कोरी भाषा ही नहीं थी,वह एक संस्कृति का प्रकट रूप थी। उस समय की उत्तरी भारत की भाषा को यदि हम उर्दू भाषा कहें,तो हमें यह भी कहना पड़ेगा कि उस समय एक ऐसी संस्कृति भी उत्पन्न हो गई थी, जिसे उर्दू संस्कृति के नाम से पुकारा जा

सकता है। वह संस्कृति भी सर्वसाधारण हिन्दुओं और मुसलमानों के संपर्क से उत्पन्न हुई। उस का भी लाल किले में और उसके पश्चात् लखनऊ तथा अन्य मुसलमान नवाबों की राजधानियों में परिष्कार हुआ। और वह तब तक बढ़ती रही, जब तक पश्चिम से आई हुई नई सांस्कृतिक बाढ़ ने उसे जवाबी टक्कर नहीं लगाई।

उस उर्दू संस्कृति का जन्म कैसे हुआ ?

हम देख आये हैं कि लगभग ४ सदियों के मुस्लिम शासन के पश्चात् हिन्दुओं और मुसलमानों में विचारों का थोड़ा बहुत आदान प्रदान आरम्भ हो गया था। मुसलमानों में धर्मभेद के रहते भी भारतवासी होने की भावना उत्पन्न हो गईं थी। वे स्थिर रूप से हिन्दुओं के पड़ौसी और हमसाया बन कर बस गये थे। विचारों के आदान प्रदान का प्रभाव यह हुआ कि दोनों ओर मिश्रित विचारधारायें प्रवाहित होने लगीं। हिन्दुओं के भक्त कवि, दार्शनिक तथा मुसलमानों के सूफी उस विचार मिश्रण के परिणाम थे। विशेष बात यह थी कि कबीर जैसे भक्तों के शिष्यों में मुसलमानों की और सूफियों के मुरीदों में हिन्दुओं की संख्या पर्याप्त थी।

विचारों के संसार में जो मिश्रण आरम्भ हुआ, उसे क्रियात्मक जीवन में लाने का यत्न अकबर ने किया। उसने जहां अपनी शासन नीति का निर्माण साम्प्रदायिक भेदभाव को छोड़ कर किया, वहां साथ ही 'दीने इलाही' नाम से इस्लाम में एक नई विचारधारा को उत्पन्न करने का उपक्रम किया। 'दीने इलाही' तो न चला, परन्तु अपने पीछे एक चेतना छोड़ गया।

यदि औरंगजेब अकबर के किये पर हड़ताल फेरने के लिये कटिबद्ध ही न हो जाता, तो संभवतः भारत की सांस्कृतिक और राजनीतिक अस्थिरता शीघ्र ही मिट जाती, परन्तु भारत को अभी अस्थिरता के दिन देखने थे। औरंगजेब ने अपनी मतान्धता से कुछ समय के लिये सांस्कृतिक संघर्ष को फिर ताजा कर दिया। परन्तु इसी बीच में देश के कोने कोने में कई रूप धारण करके हिन्दुत्व की प्रतिक्रिया जारी हो गई। महाराष्ट्र, राजपूताना, बुन्देलखंड, पंजाब आदि प्रदेशों में जो राजनीतिक क्रांतियां उत्पन्न हुईं, उनके स्थूल रूप भिन्न-भिन्न थे, परन्तु मौलिक रूप से वह साँस्कृतिक प्रतिक्रिया की परिणाम थी।

एक बार तो ऐसा प्रतीत हुआ कि जो राज्य क्रान्ति महाराष्ट्र से उठी है, वह धीरे २ हिमालय से रामेश्वर तक छा जाएगी, परन्तु पानीपत के रणक्षेत्र ने देश के इतिहास को फिर पल्टा दिया। मराठों की शक्ति को अहमदशाह अब्दाली की सेनाओं ने एक जबर्दस्त धक्का दे कर उत्तर से पीछे धकेल दिया, जिस से परिस्थिति फिर पहले की भांति विषम हो गई। विषम इस लिये हो गई कि मुगल बादशाहों की शक्ति तो हिन्दू प्रतिक्रिया, और मुसलमान सरदारों के विद्रोहों के कारण क्षीण हो गई थी। अब पानीपत के पराजय के कारण हिन्दू प्रतिक्रिया भी निर्बल हो गई। फलतः हिन्दू और मुसलमान दोनों ही प्रायः एक स्तर पर आ गये। उनमें शासक और शासित की वैसी उग्र

भावना न रही, जैसी पहले थी। दोनों कहीं शासक थे, और कहीं शासित। समतल पर आ कर दोनों में आदान प्रदान की प्रतिक्रिया फिर जारी हो गई, जिसका फल 'उर्दू संस्कृति' के रूप में प्रकट हुआ।

अभिनन्दन

कवि श्री कमल जी साहित्यालङ्कार, बिजनौर

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।

ऋ० ६ । ४९ । १० ।

मेरे मन !
जीवन के धन !
धन्य तुम्हारा सृष्टि सृजन !
लो शत शत कण्ठों से अभिवादन,
तपोद्भव सदा तुम्हारा आराधन !
जन जन मानस निलय मलय का-
स्निग्ध समीरण,
करता अभिनन्दन,
हरित श्याम देवदारु के-
चल विकम्पित किसलय,
करते संचय ।
रवि की किरण किशोरियां,
वंशीवट में बांस की नई पोरियां,
वन-बल्लरियां लसित अङ्ग लचकाती,
बल खाती करती पूजन !
पक्षिदल का कल गुंजन !
भक्ति भाव से ले धूप दी नैवेद्य,
अर्पित अक्षत कुंकुम चन्दन ।
शत शत अभिनन्दन !
तुम से पा ज्ञानज्योति,
मिटे अज्ञान और जगती तत्त्व के क्रन्दन ।
शत शत अभिनन्दन !

---

१. जिसने अपना पन खोया, उसने सब कुछ खोया। मो. क. गांधी।
२. जो अपना सुधार कर लेता है वह एक दर्जन देश भक्तों की अपेक्षा जनता का अधिक सुधार करता है। —लेवेटर।
३. असम्भव से सम्भव पूछता है—तुम्हारा विनाश कहां से, वह प्रत्युत्तर देता हैं कायरों के स्वप्न में।
४. झरना गाता है—मैं खुशी से अपना सारा पानी देता हूं। हालां कि प्यासे के लिये इसमें से थोड़ा-सा ही पर्याप्त है। —रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

स्वास्थ्य और उपवास

ब्र. विश्वराजम् "विशारद" "विद्यारत्न" तृतीय वर्ष गुरुकुल कांगड़ी

शरीर क्रिया मानवशरीर विज्ञान के अध्ययन से पता चलता है कि मानवशरीर प्रकृति के नियमों के अनुसार अपने को बराबर ही स्वच्छ और अच्छी दशा में रखना चाहता है। उसकी प्रवृत्ति सदैव स्वस्थ तथा नीरोग होने या रहने की ओर होती है। शरीर की क्रियाओं और परिश्रम के परिणाम स्वरूप उसकी धातुओं में टूट फूट होती रहती है। इस क्रिया को अंग्रेजी में (Metabolism) "मैटाबोलिज्म" कहते हैं। इस क्रिया के कारण बहुत से दूषित पदार्थ विकार के रूप में शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं जिनका शरीर से बाहर निकलना बड़ा आवश्यक होता है अन्यथा ये शरीर के कार्य में बाधा डालते हैं और उसे अस्वस्थ बना देते हैं। शरीर इन विषैले पदार्थों को प्रश्वास, मल,मूत्र, और स्वेद के द्वारा अपनी प्रवृत्ति के अनुसार बाहर निकालता रहता है। शरीर के नीरोग रहने के प्राकृतिक प्रयत्न केवल यहीं तक सीमित नहीं रहते अपितु जब कोई गड़बड़ी या खराबी उसमें पैदा हो जाती है या बाहर से कोई विकार अन्दर प्रविष्ट हो जाता है तो उसकी सफाई के लिए भी शरीर की शीघ्र प्रतिक्रिया होती है। शोथ होना भी विकार को बाहर निकालने के लिए शरीर की एक प्राकृतिक क्रिया है। जब शरीर में कोई विष प्रविष्ट होता है तो वह उस स्थान पर अधिक मात्रा में रक्त भेजता है। रक्त वहां जाकर कई कार्य करता है। वह क्षत स्थान को पोषण प्रदान करता है, विष को हलका और निर्बल बनाकर उसके प्रभाव को कम करता है, रक्त के कीटाणु उस विष को खाकर नष्ट कर देते हैं और अन्त में रक्त अपने साथ उस विष को वहां ले जाकर शरीर के मल मार्गों से बाहर फेंक देता है।

नाक में किसी उत्तेजक पदार्थ के आने पर छींक आना, श्वासप्रणाली में किसी विजातीय पदार्थ के जाने पर खांसी और हिचकी आना, पेट में किसी विषैले पदार्थ के प्रवेश पर उलटी और दस्त आना, खांसी में कोई चीज़ पड़ने पर आंसू आना आदि, ये सब क्रियाएं शरीर की एक ही प्रकृति की ओर संकेत करती हैं कि शरीर बिना किसी बाह्य सहायता के अपनी सफाई स्वयं करने में और अपने आपको ठीक कर लेने में समर्थ है। प्रथम तो शरीर अपने अन्दर किसी विकार को संचित ही नहीं होने देता और यदि किसी प्रकार संचय हो भी जाए तो वह स्वयं ऐसी चेष्टा करता है जिस से विकार बाहर निकल जाय।

अस्वास्थ्य का कारण शरीर में विकार का संचय होना है। यह विकार शरीर में एक तो अन्दर ही उसकी अपनी क्रियाओं के कारण धातुओं में टूट फूट के द्वारा उत्पन्न होता है और दूसरा दूषित श्वास, अनुचित आहार, अशुद्ध पानी आदि के द्वारा बाहर से प्रविष्ट होता है। शरीर मल, मूत्र, प्रश्वास और स्वेद के द्वारा अपने साधारण उपायों से इन विकारों को बाहर निकालने का प्रयत्न करता है। यदि अपने साधारण ढंगों से इनको बाहर नहीं

निकाल सकता तो फिर असाधारण ढंग में काम में लाये जाते हैं। इस दशा में शरीर की शक्तियां तीव्रता से विकार को बाहर निकालने का प्रयत्न करती हैं और इस तीव्र प्रयास के परिणाम स्वरूप ही शरीर में उष्णता, ज्वर, दाह, शूल और अन्य अनेक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हें हम रोग कहते हैं।

आयुर्वेद में वात, पित्त, कफ—ये तीन दोष माने हैं। ये तीनों समावस्था में रहते हुए शरीर के आरोग्य और वृद्धि का कारण होते हैं। ये तीनों शरीर का धारण करने से "धातु" भी कहलाते हैं। चरक शरीर स्थान अध्याय ६ श्लोक १६ और १७ में कहा है कि शरीर में धातुएँ दो प्रकार की होती हैं—मलभूत और प्रसाद भूत। इनमें मलरूप वे धातुएँ हैं जो शरीर को हानि पहुंचाती हैं जैसे मूत्र, पुरीष, आंख, नाक व कान की मैल,पकी हुई रस रक्त आदि धातुएं और कुपित हुए वात, पकी पित्त तथा कफ। जो शरीर में स्थित होकर शरीर के लिए उपकारी हैं वे प्रसाद भूत धातुएं हैं। प्रसाद भूत धातुओं को भी विषम वात-पित्त कफ दूषित कर देते हैं। मूत्र,पुरीष आदि शरीर के धारक होने कारण धातु कहलाते हैं परन्तु जब ये अन्दर रह कर शरीर को हानि पहुंचाने लगते हैं और बाहिर निकलने को तैयार होते हैं तब मल कहाने लगते हैं। आरोग्य के लिए इन विकारों (मलरूप धातुओं) का बाहर निकलना और वात-पित्त कफ का समावस्था में रहना आवश्यक है।

इस प्रकार देखते हैं कि स्वास्थ्य की रक्षा और रोग निवारण के लिए यह आवश्यक है कि शरीर में विकार का संचय न हो। इसके लिए हमें उन उपायों का सहारा लेना होगा जिनसे शरीर की स्वास्थ्य कर क्रियायें निर्बाध रूप से होती रहें।

हमने देखा था कि परिश्रम के समय शरीर की धातुएं (Tissues) टूटती हैं और उनके टूटने से शरीर में और रक्त में बहुत से दूषित पदार्थों की वृद्धि होती है। शुद्ध रक्त के द्वारा ही शरीर के प्रत्येक अंग को पोषण प्राप्त होता है। जब तक रक्त में ये दूषित पदार्थ बने रहेंगे तब तक शरीर को पोषण प्राप्त नहीं होगा और ना ही टूटी हुई धातुओं की क्षति-पूर्ति होगी। इन टूटी हुई धातुओं की क्षति पूर्ति और शरीर में उत्पन्न दूषित पदार्थों का शमन विश्राम के समय होता है। शरीर की नीरोगता और सुस्वास्थ्य के लिए परिश्रम और व्यायाम की जितनी आवश्यकता है,शरीर को **सब प्रकार के परिश्रमों से अवकाश** देकर विश्राम देने की भी उतनी ही आवश्यकता है। कुछ समय के परिश्रम के बाद शरीर को विश्रा मदिया जाय तो उसमें नवीन शक्ति व नवीन जीवन का संचार होता है। यदि शरीर को विश्राम न दिया जाय तो धातुओं की क्षतिपूर्ति और विकारों का शमन न होने से शरीर प्रतिदिन दुर्बल और अस्वस्थ होता जायगा। निद्रा शरीर का विश्राम लेने का ही एक प्राकृतिक उपाय है किन्तु भोजन का पचाना शरीर के लिए बहुत बड़े परिश्रम का कार्य है। जैसे ही आहार अन्दर प्रविष्ट होता है, शरीर की शक्ति उसे पचाने में लग

जाती है। निद्रावस्था में भी यदि आमाशय में आहार पड़ा होगा तो शरीर उसे पचाने का परिश्रम करता रहेगा **जब तक शरीर को इस परिश्रम से अवकाश नहीं मिलेगा तब तक उसे पूर्ण विश्राम नहीं मिल सकता।** इससे उसमें पुनर्निर्माण (Regeneration) की क्रिया नहीं होगी और ना ही फिर वह स्वस्थ रह सकेगा। इस लिये उपवास, आमाशय और शरीर को पूर्ण विश्राम देने के लिए आवश्यक है। तभी दोषों का शमन होगा जिससे रोग की सम्भावना ही नहीं रहेगी और शरीर-शक्ति निरन्तर बढ़ेगी।

चरक और वाग्भट्ट के अनुसार दूषित वातादि दोष आमाशय में स्थित होकर जठराग्नि को मन्द कर देते हैं और आम के साथ मिलकर शरीर के छिद्रों और रोम कूपों को आच्छादित कर के ज्वर उत्पन्न करते हैं। आम दोष को पचाने, जठराग्नि को दीप्त करने और शरीर के छिद्रों को शुद्ध करने के लिए लंघन की आवश्यकता होती है। लंघन दोषों के शमन के लिए श्रेष्ठ उपाय है। दोषों का शमन होगा तो रोग होगा ही नहीं, अतः अच्छे स्वास्थ्य के लिए कभी-कभी उपवास अवश्य करना चाहिए।

जब कोई मनुष्य रोगी पड़ जाय या उसका चित्त कुछ गिरा सा प्रतीत हो तो उसका प्रारम्भिक उपाय उपवास है। हम देखते हैं कि भोजन से रस और रस से रक्त बनता है। यह रक्त शरीर के सब अंगों को पोषण प्रदान करता है। यदि रक्त शुद्ध है, विकार हीन है तो वह शरीर के अंगों को भी पुष्ट करेगा और भोजन का कार्य पूरा होता रहेगा। किन्तु यदि रक्त विकृत है तो वह शरीर को अस्वस्थ कर देगा और उस अवस्था में यदि आहार लिया जायगा तो वह विकृत रक्त की मात्रा में वृद्धि करके शरीर में रोग को बढ़ाएगा। इसलिए शरीर में रोग होने की प्रारंभिक अवस्था में एक दम उपवास करना चाहिए। इस अवस्था में भोजन देना किसी भी प्रकार वैज्ञानिक नहीं है।

हमने देखा था कि भोजन पचाने में शरीर को बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। यह देखा जाता है कि भोजन के कुछ देर बाद शरीर में कुछ सुस्ती और आलस्य अनुभव होता है। उस का कारण यही है कि पचाने का कार्य प्रारम्भ करने के लिए शरीर के सभी अंगों का रक्त खिंचकर आमाशय में चला जाता है। इससे अन्य अंगों में रक्त की न्यूनता हो जाती है और उन में पोषण का कार्य मन्द पड़ जाता है। इसलिए उनमें शिथिलता आ जाती है। शरीर में कोई विकार या रोग उत्पन्न होने पर अपनी प्रकृति के अनुसार वह अपनी शक्ति विकार से मुक्ति पाने में लगाता है। जिस समय शरीर यह मुक्ति-संघर्ष करता है उस समय यदि भोजन लिया जाय तो उसकी शक्ति बंट जाती है। इससे न तो वह विकार को ही अपनी पूरी शक्ति से बाहर निकाल पाता है और न आहार को ही आत्मसात् कर सकता है। इस प्रकार भोजन शरीर के विकार को बाहर निकालने के कार्य में बाधा डालना है। वह अपक्व अवस्था में ही रक्त में मिलकर विकार को और बढ़ाता है। आंत्र में पड़ा-पड़ा वह सड़ कर हानिकर पदार्थों

और गैसों को पैदा करता है। ये पदार्थ और गैसें भी रक्त में मिलकर रोग को और बढ़ाते हैं। इसलिए रुग्णावस्था में भोजन कभी नहीं देना चाहिए और यह उपवास तब तक कराया जा सकता है जब तक शरीर पूर्ण स्वस्थ न हो जाय।

यह लोगों का भ्रम है कि उपवास से रोगी दुर्बल हो जाता है। सच बात यह है कि रोगी की रक्षा के लिए और शीघ्र स्वास्थ्य लाभ के लिए उपवास सबसे अच्छा साधन है। प्रथम तो अस्वस्थ व्यक्ति की भूख स्वय ही जाती रहती है जिसका अभिप्राय है कि शरीर को भोजन को आवश्यकता नहीं। आवश्यकता न होने पर कदापि भोजन नहीं दिया जाना चाहिए। स्वाभाविक भूख में दिया गया भोजन ही शरीर का पोषण और स्वास्थ्य की अभिवृद्धि करता है और बिना भूख के वह अस्वास्थ्यकर है। अस्वस्थ व्यक्ति को भूख न लगने का कारण यही है कि उसके शरीर की शक्ति रोग से लड़ने में लगी रहती है। रोग के विरुद्ध केन्द्रित शरीर की इस शक्ति को आहार डालकर विकेन्द्रित करना कभी उचित नहीं है। इस सिद्धान्त की पुष्टि आयुर्वेद ने भी की है—

"आहारं पचति शिखी दोषानाहार वर्जितः"

"अर्थात् अग्नि आहार को पचाती है और जब पेट में आहार नहीं रहता तब वह दोषों को पचाती या नष्ट करती है।" इसलिए दोष न कराने के लिए आहार नहीं देना चाहिए।

स्वास्थ्य के लिए शारीरिक विकार का करना जितना आवश्यक है, कदाचित् उससे कुछ अधिक मानसिक विकार को दूर करना आवश्यक है। मन और शरीर दोनों के स्वस्थ होने पर ही व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ रह सकता है। अस्वस्थ व्यक्ति का मन उदास, चिड़चिड़ा, क्रोधी तथा और अनेक विकारों से युक्त होता है और विकृत मन वाला व्यक्ति कभी शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ नहीं रह सकता है। राग, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह, वासना आदि मन के विकार हैं। मानसिक विकार के कारण मस्तिष्क, हृदय, श्वास, पाचन संस्थान तथा प्रजनन संस्थान की बड़ी भयानक बीमारियां हो जाती हैं। इसलिए शारीरिक स्वास्थ्य के लिए मानसिक स्वास्थ्य बड़ा आवश्यक है। यह औषधियों से कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। वह ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति एवं समाधि से प्राप्त होता है। इसके लिए आयुर्वेद में कहा है—

प्रशाम्यत्यौषधैः पूर्वो दैवयुक्तिव्यपाश्रयैः।
मानसो ज्ञानविज्ञानधैर्यस्मृतिसमाधिभिः॥

चरक सूत्रस्थान अध्याय १, श्लोक ५७।

उपवास से विचार शक्ति, एकाग्रता, धैर्य, आत्मबल प्राप्त होता है इसलिए सब प्रकार का स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए उपवास करना चाहिए।

अन्त में उपवास देह के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है, दोषों के शमन का पूर्ण वैज्ञानिक प्राकृतिक साधन है। उपवास से शरीर में लघुता, सर्वाङ्ग शुद्धि और बल पैदा होता है। उपवास स्वास्थ्य के लिए अवश्य कराना चाहिए। इसलिए आयुर्वेद में कहा है—

"लंघनम् परमौषधम्"

—

तिब्बत चीन और भारत

श्री पं० सत्यदेव जी विद्यालङ्कार, नई देहली

तिब्बत आज अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा का मुख्य विषय बना हुआ है। यह बड़ी विचित्र स्थिति है कि भारत ने स्वतंत्र होने के बाद अंग्रेजों के उत्तराधिकार में प्राप्त अपनी सम्पूर्ण सत्ता और अधिकारों से हाथ खींच लिया; किन्तु चीन ने जिस सामन्तशाही को अपनें देश में नाम शेष कर दिया उसकी पुरानी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति को कायम रखते हुए तिब्बत पर अपना फौलादी पंजा दिन-प्रतिदिन और भी अधिक सुदृढ़ कर लिया। अब उस पर अपना सम्पूर्ण प्रभुत्व कायम करने के लिए उसके विरुद्ध वैसे ही युद्ध जारी कर दिया जैसे कि स्वेज नहर पर अपना प्रभुत्व कायम रखने के लिए इंग्लैंड और फ्रांस ने इजराइल को शिखंडी बनाकर मिश्र पर सैनिक अभियान किया था। तिब्बत के आध्यात्मिक एवं राजनीतिक शासक दलाई लामा को चीन के इस आक्रमण के फलस्वरूप भारत में आकर शरण लेनी पड़ी है। यह कहना कठिन है कि एबीसीनिया के सम्राट् की तरह वे फिर से शासक के रूप में स्वदेश लौट सकेंगे अथवा तुर्की के इस्लामी धर्मगुरु खलीफा की गद्दी (खिलाफत) की तरह दलाई लामा की गद्दी का भी अन्त होकर एक पुराना धार्मिक, सांस्कृतिक अथवा आध्यात्मिक केन्द्र सदा के लिए मिटा दिया जायेगा। अधिक सम्भव यह प्रतीत होता है कि तिब्बत में भी मंगोलिया की पुनरावृत्ति होगी। जैसे मंगोलिया में लामाओं की सत्ता तथा अस्तित्व को नष्ट कर दिया गया है वैसे ही तिब्बत में भी किया जाना संभव जान पड़ता है। भारत की दृष्टि में ऐसा होना सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना होनी चाहिये।

प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने यह स्वीकार किया है कि तिब्बत के साथ भारत के धार्मिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध बहुत पुराने और बहुत गहरे हैं। पिछले कुछ वर्षों से राजनीतिक सम्बन्धों की अपेक्षा सांस्कृतिक सम्बन्धों को विशेष महत्व दिया जाने लगा है और राजनीतिक संधियों के स्थान में परस्पर सांस्कृतिक संधियां की जाने लगी हैं। पंचशील के सिद्धान्तों के स्वीकार किये जाने से सांस्कृतिक सम्बन्धों को और भी अधिक बल मिला है। आश्चर्य यह है कि तिब्बत के साथ भारत के सांस्कृतिक सम्बन्धों की ऐसी उपेक्षा की गई है जैसे कि उनका कोई अस्तित्व या महत्व ही नहीं है। भारत के बौद्ध धर्म को जिस रूप में तिब्बत में स्वीकार किया गया, उसे बहुत ही कम देशों में स्वीकार किया गया होगा। वहां का राजधर्म लामाइज्म है, परन्तु वह भारत के बौद्ध धर्म का ही एक रूप है और शासन के प्रधान 'दलाई लामा' भगवान् बुद्ध के "अविलोकेतेश्वर" साक्षात् प्रतिरूप माने जाते हैं। परम्परा से तिब्बत की जनता ने अपनी इस भावना को जीवित रखा है। स्थान-स्थान पर छोटे-बड़े बौद्ध मठ कायम हैं, जो कि शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान, धर्म, संस्कृति तथा आध्यात्मिकता के केन्द्र हैं। उनके द्वारा जनता की धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक भावना को निरन्तर पुष्ट किया जाता और जागृत रखा जाता है। प्रत्येक तीन मनुष्यों

में एक भिक्षु और प्रत्येक १५ स्त्रियों में एक भिक्षुणी पायी जाती है। इन सब कारणों से तिब्बत भारत के जितना समीप है उतना चीन के नहीं। परन्तु चीन अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा के कारण भारत के तिब्बत के साथ इस सम्बन्ध को पैरों तले कुचल रहा है। उसका वर्तमान सैनिक अभियान संसार में से उस देश के अस्तित्व को खत्म करने वाला सिद्ध हो सकता है जिसको हम सदियों पुराने भारतीय आध्यात्मिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन का प्रतीक मान सकते हैं। भारत के लिए यह सब सह्य नहीं होना चाहिये।

जहां तक तिब्बत पर चीन की राजनीतिक सत्ता का सम्बन्ध है तिब्बत ने उसको स्वेच्छा से कभी भी स्वीकार नहीं किया और न किसी अन्य देश ने ही कभी उसके लिए अपनी स्वीकृति प्रदान की है। सदियों पुराने इतिहास से यह स्पष्ट है कि तिब्बत के लोग उसका सदैव विरोध और प्रतिरोध करते रहे हैं। तिब्बत की वर्तमान सीमा असम (भारत) भूतान, सिक्किम, नेपाल, काश्मीर, सीक्यांग (चाइनीज तुर्कीस्तान) कोकोनोर (चिंगाई) सिकांग से मिलती है। उसकी पूर्वी सीमा का चार लाख वर्ग मील का खम्पाओं का प्रदेश सदियों से विवाद का विषय रहा है और आज भी वर्तमान संघर्ष का उसी को कारण बताया जा रहा है। जिसने १९५० की संधि के अनुसार चीन की प्रभुसत्ता को स्वीकार नहीं किया है। इसी पूर्वी प्रदेश के कारण उसकी सीमाएं बर्मा को छूती हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि इस पूर्वी प्रदेश पर न तो तिब्बत का पूरा नियंत्रण है और न चीन का ही। यह प्रदेश खम्पाओं के आधीन है।

पृष्ठ-भूमि

पुराने इतिहास में न जा कर हम यहां १९१३ में हुए उस शिमला सम्मेलन की विशेष रूप से चर्चा करना चाहते हैं जिस में तिब्बत की स्थिति पर विचार करने के लिए तिब्बत, चीन और भारत सरकार के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। १९१२ में चीन में प्रजातंत्रीय राज्य क्रांति होने पर मंच राजशाही का जब अन्त किया गया तब तिब्वत पर चीन के साम्राज्यवादी आधिपत्य का स्वतः ही अन्त हो गया। तब से तिब्बत की सरकार अन्दरूनी और बाहरी मामलों में पूरी आजादी का उपभोग करने लग गई; परन्तु चीन की नई प्रजातंत्रीय सरकार में भी पुराने राजाओं की परम्पराओं को कायम रखते हुए तिब्बत को चीन का ही एक हिस्सा उद्घोषत कर दिया। उनकी उद्घोषणा को न तो तिब्बत ने स्वीकार किया और न भारत की आज की सरकार ने ही, अंग्रेज सरकार ने तो चीव को यह स्पष्ट रूप में सूचित कर दिया था कि वह तिब्बत की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार करती है। इसी के परिणामस्वरूप शिमला में तीनों देशों की सरकारों के एक सम्मेलन का १९१३ में आयोजन किया गया था। तिब्बत के प्रतिनिधियों ने उस में समानता के नाते भाग लिया था। शुरू में ही अंग्रेज सरकार के प्रतिनिधि ने यह स्पष्ट कर दिया था कि तिब्बत और चीन में परस्पर युद्ध होते रहने के कारण पुरानी संधियों की कोई कीमत नहीं रह गई है और

उनको स्वीकार करने के लिए तिब्बत को बाध्य नहीं किया जा सकता। तिब्बत का पूर्वी क्षेत्र तब भी विवाद और संघर्ष का विषय बना हुआ था। चीन के दबाव के कारण तिब्बत को दो हिस्सों में बाँट दिया गया था। एक का नाम भीतरी तिब्बत और दूसरे का बाहरी तिब्बत रखा गया था। भीतरी तिब्बत पर चीन की सत्ता कुछ अंशो में स्वीकार की गई थी, किन्तु बाहरी तिब्बत को उससे सर्वथा स्वतंत्र रखा गया था और यह भी इस सम्मेलन में स्वीकार किया गया था कि चीन बाहरी तिब्बत के घरेलू मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। न वह उसको अपना एक प्रांत बनाने का प्रयत्न करेगा और न उनमें अपनी सेनाएं भेजेगा। चीन सरकार ने भी यह स्वीकार किया था कि वह तिब्बत में अपना ट्रेड मिशन भेजने के सिवाय वहां अपनी कोई सेनाएं नहीं भेजेगी और उनके किसी भी हिस्से को हस्तगत करने का प्रयत्न नहीं करेगी। भीतरी तिब्बत के मठों पर तिब्बत सरकार का अधिकार यथापूर्व स्वीकार किया गया था। अन्त में चीन ने इस समझौते पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया और तिब्बत तथा अंग्रेज सरकार ने परस्पर यह निर्णय किया कि जब तक चीन उस समझौते को स्वीकार नहीं करेगा तब तक तिब्बत में चीन को कोई भी सुविधा प्रदान न की जायेगी। रूस ने भी इस समझौते की शर्तों को स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस में तिब्बत की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गई।

१९१७ में चीन ने तिब्बत पर फिर सैनिक अभियान किया। चीन को इस अभियान में मुंह की खानी पड़ी और १९१८ में एक सन्धि करने को बाध्य होना पड़ा। १९१९ में चीन ने शिमला सम्मेलन के समझौते के आधार पर तिब्बत के साथ एक नई सन्धि करने की इच्छा प्रकट की, किन्तु तिब्बत ने उस को स्वीकार नहीं किया ? १९२७ में रूस ने तिब्बत पर ज़ोर डालने का प्रयत्न किया और मंगोलिया को एक मिशन भी भेजा गया; किन्तु तिब्बत में उसकी दाल नहीं गल सकी।

१९२८ में नानकिंग में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होने पर चीन ने तिब्बत में विशेष प्रतिनिधि भेजकर तिब्बत को रूस के विरुद्ध सहायता देने का आश्वासन दिया और उसके सामने यह शर्त पेश की कि उसको चीनी साम्राज्य के पांच राज्यों का सदस्य बन जाना चाहिए। परन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। १९३१ में एक बार फिर दोनों देशों में सैनिक झड़पें शुरू हो गई। शुरू में तिब्बत ने चीनी सेनाओं को खदेड़ दिया; किन्तु बाद में उसे बहुत भारी हानि उठानी पड़ी। तिब्बत ने अंग्रेज सरकार से मध्यस्थता करने का अनुरोध किया परन्तु चीनी सरकार ने उस पर कोई ध्यान न देकर अपनी सेनाओं को निरन्तर आगे बढ़ने का आदेश दिया। चीन में १९३२ में गृह कलह शुरू होने पर तिब्बत को कुछ राहत मिली। च्यांग-कोई-शेक ने युद्ध तो बन्द कर-दिया परन्तु सुलह समझौते की कोई चर्चा कर-ने को वह तैयार नहीं हुआ। उसका कहना यह था कि यह उसका घरेलू मामला है। १९३३

में तेरहवें दलाई लामा का स्वर्गवास हो जाने से तिब्बत की भीतरी स्थिति बहुत बिगड़ गई। वहां घरेलू संघर्ष की-सी स्थिति पैदा हो गई। १९३४ में उस स्थिति से लाभ उठाते हुए चीन ने तिब्बत के सम्मुख फिर यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि वह अपने को चीन के पांच राज्यों में शामिल कर ले और एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्र की स्थिति प्राप्त कर ले। तिब्बत ने उसको स्वीकार नहीं किया। १९३८ में वर्तमान चौदहवें दलाई लामा की खोज हो जाने और १९४० में उस का सार्वभौम सत्ता सम्पन्न तिब्बत के दलाई लामा की गद्दी पर अभिषेक हो जाने से तिब्बत की अन्दरूनी स्थिति बहुत सुधर गई। इङ्गलैंड, भारत, चीन, नेपाल, भूतान, सिक्किम, मंगोलिया (रूस) आदि देशों के प्रतिनिधि इस समारोह में अपना सम्मान प्रदर्शित करने के लिए उपस्थित हुए थे। चीन के प्रतिनिधि ने इस समारोह में कोई भाग नहीं लिया। इन सब घटनाओं से भी यह स्पष्ट है कि तिब्बत एक सर्व प्रभुत्व सम्पन्न स्वतन्त्र राष्ट्र था।

दूसरे महायुद्ध का तिब्बत पर कोई विशेष असर नहीं पड़ा। चीन की सरकार नानकिंग से उठकर चुंगकिंट चली गई। जापान द्वारा उसके रास्ते बन्द कर दिये जाने पर १९४१ में च्यांग-काई-शेक ने तिब्बत के रास्ते से असम (भारत) तक एक सड़क बनाने का प्रस्ताव किया; किन्तु तिब्बत ने उसका बनाया जाना स्वीकार नहीं किया। तिब्बत पर आर्थिक घेरा डालने की धमकी देने पर वह असैनिक सामग्री के लिए रास्ता देने को सहमत हो गया। इस धमकी के देने में चीनी और अङ्गरेज दोनों एक मत थे; क्योंकि जापान के विरुद्ध अंग्रेज सरकार च्यांग-काई-शेक की हर प्रकार की सहायता कर रही थी। १९४५ में च्यांग-काई-शेक ने यह घोषणा की कि चीन तिब्बत को स्वायत्त शासन के हर तरह के अधिकार देने को तैयार है, परन्तु तिब्बत का पूर्वीय प्रदेश वैसा करने में एक बहुत बड़ा कांटा है। च्यांग-काई-शेक के फारमोसा जाने और चीन में जनवादी क्रांति होने तक ऐसी स्थिति बनी रही। उसके बाद चीन की जनवादी सरकार ने तिब्बत पर अपनी प्रभुसत्ता स्वीकार कराने के लिये फिर दबाव डालना शुरू कर दिया और उसके परिणाम स्वरूप दोनों देशों में १९५० की संधि हुई। इस संधि के अनुसार तिब्बत ने चीन की प्रभुता स्वीकार करके अपनी सुरक्षा तथा परराष्ट्रनीति उसके हाथों में सौंप दी और उसने तिब्बत के पूर्ण स्वायत्त शासन के अधिकारों को मान्यता प्रदान की।

इस सारे घटनाक्रम पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि मंचू राजशाही की जिस साम्राज्यवादी परम्परा को चीन ने तिब्बत के प्रति १९१२ की प्रजातन्त्रीय राज्यक्रांति के बाद मंचूशाही को समाप्त कर के भी कायम रखा और जिसको च्यांग-काई-शेक ने कायम रखने का भरसक प्रयत्न किया, उसको जनवादी चीन की चाऊ-एन-लाई की सरकार ने १९५० की संधि से स्थायी बना दिया। जबकि जनवादी चीन की वर्तमान सरकार का यह दावा है कि

वह अपने देश के लिए एक नये इतिहास का निर्माण कर रही है, तब तिब्बत में पुराने इतिहास की साम्राज्यवादी परम्परा को कायम रखने का दुराग्रह करना उसको कहां तक शोभा दे सकता है ?

जिन परिस्थितियों में १९५० की संधि की गई उन में पंचशील के सिद्धान्तों का मुख्य स्थान था। हमारे प्रधान मन्त्री और चीन के प्रधानमंत्री की पंचशील सम्बन्धी संयुक्त घोषणा से जो वातावरण और परिस्थितियां पैदा हुई थीं, उन में तिब्बत के लिये चीन की सद्भावना पर संदेह एवं अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था और वह बिना किसी संकोच के अपनी सुरक्षा तथा परराष्ट्र नीति उसके हाथों में सौंप सकता था, परन्तु इस समय चीन ने समस्त सद्भावनाओं को ताक में धरकर और पंचशील के समस्त सिद्धान्तों को पैरों तले रौंदकर जिस सैनिकवृत्ति का परिचय दिया है, वह वैसी ही है, जिसका परिचय रूस ने हंगरी में दिया था। नेहरू जी ने स्वीकार किया है कि चीन के वर्तमान सैनिक अभियान से तिब्बत की स्वायत्त सत्ता का अन्त कर दिया गया है। यह आशंका सर्वथा निराधार नहीं हो सकती कि तिब्बत की स्वतन्त्र सत्ता का अन्त करके उसको चीन का ही एक प्रदेश बना दिया जायेगा।

यदि ऐसा हुआ तो अन्तर्राष्ट्रीय जगत् की यह सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना होगी। ऐसा होने की सम्भावना में भारत का कर्तव्य बिल्कुल स्पष्ट है। नेहरू जी ने यह स्वीकार किया है कि तिब्बत के साथ भारत के धार्मिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सम्बन्ध बहुत पुराने और बहुत गहरे हैं। इस लिए प्रश्न स्वाभाविक रूप में उठता है कि तिब्बत की सुरक्षा के लिये हमारी सरकार क्या कुछ करने वाली है। यदि इन सम्बन्धों की दृष्टि से विचार किया जाय और चीन की साम्राज्यवादी रीति-नीति तथा सैनिक अभियानों के दबाव को कुछ महत्व न दिया जाए तो हमारा यह दावा है कि तिब्बत चीन की अपेक्षा भारत के अधिक समीप है और चीन के वर्तमान सैनिक अभियान से उसकी रक्षा भारत को करनी चाहिये। यदि वास्तव में चीन भारत का एक महान् मित्र है तो उस मित्र को उल्टे रास्ते जाने से रोकना भारत के लिए कुछ कठिन नहीं होना चाहिये। एशिया के नवजागरण के इस काल में एशिया के एक देश का दूसरे देश पर सैनिक बलात्कार किसी भी हालत में सहन नहीं किया जाना चाहिये।

—

सभ्यता क्या है ?

सभ्यता तो आचार व्यवहार की वह रीति है जिससे मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन करे। कर्तव्य पालन और नीति को वश में रखना। यह करते हुए हम अपने आप को पहचानते हैं। यही सुधार यानी सभ्यता है। जो इसके विरुद्ध है, वह कुधार या असभ्यता है।

—महात्मा गान्धी।

समस्त गुरुकुल प्रेमियों की सेवा में

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का हीरक जयन्ती महोत्सव

आप को यह जान कर हर्ष होगा कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय आगामी विक्रम सम्वत् के आरम्भ में साठ वर्ष की आयु व्यतीत कर के ६१ वें वर्ष में प्रवेश करेगा। इस अवसर को विश्वविद्यालय का एक पुण्य पर्व मान कर निश्चय किया गया है कि आगामी वैशाख के आरम्भ अप्रेल १९६१ई. में संस्था की हीरक जयन्ती मनाई जाय।

गुरुकुल कांगड़ी आर्य जाति की प्रमुख राष्ट्रीय शिक्षण संस्था है जो ६० वर्षों से पुरानी गुरुकुल प्रणाली के मूलतत्वों का सफल परीक्षण कर रही है। एक वार गंगा की बाढ़ से विस्थापित हो कर भी दूसरी वार उसने फिर जो चौमुखी उन्नति की है वह आर्य बन्धुओं की सहानुभूति तथा सहयोग का ही परिणाम हैं। इन वर्षों में गुरुकुल ने सभी दिशाओं में आगे पग रखा है, परन्तु शिक्षा का क्षेत्र इतना विस्तृत और प्रगतिशील हो गया है कि उस की कोई सीमा नहीं। तक्षशिला और नालन्दा के प्राचीन विश्वविद्यालयों के स्तर तक पहुंचने के लिए अभी बहुत प्रयत्न करना पड़ेगा। उस के लिए तत्परता से कार्य करने वाले योग्य व्यक्ति और पुष्कल धन राशि की आवश्यकता है। हम चाहते हैं कि जयन्ती के अवसर तक हम इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति में सफलता प्राप्त कर लें। यह तभी सम्भव है जब आप जैसे आर्य संस्कृति के प्रेमी पूर्ण रूप से हमारा हाथ बंटायें। जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए गुरुकुल की स्थापना हुई थी वह उन की पूर्ति में निरन्तर अग्रसर हो रहा है। अनेक विषयों में 'विद्यावाचस्पति' परीक्षा की पाठविधि की व्यवस्था प्रतिदिन अधिकाधिक लोकप्रिय होती जा रही है। बाहर की ऐसी यूनिवर्सिटियों के उपाधि प्राप्त छात्र, जिन्होंने गुरुकुल की उपाधियों को मान्यता दे रखी है, 'विद्यावाचस्पति' की परीक्षा दे कर उपाधि प्राप्त करना अपने लिए सम्मान का कारण समझते हैं। गुरुकुल की 'विद्यामार्तण्ड' उपाधि को शिक्षा क्षेत्रों में आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इस प्रकार गुरुकुल के स्वाधीन विश्वविद्यालय का शिक्षा जगत् में मान बढ़ रहा है।

गत वर्षों में गुरुकुल ने अन्य अनेक दिशाओं में भी प्रगति की है। गुरुकुल का 'कृषि विद्यालय' देश की कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में पूरा सहयोग दे रहा है और 'आयुर्वेद महाविद्यालय' प्राचीन तथा नवीन चिकित्सा प्रणालियों के विज्ञ चिकित्सकों को तैयार कर के राष्ट्र की सेवा में भेज रहा है। तीन वर्षों से विज्ञान की उच्चतम शिक्षा देने की जो योजना प्रारम्भ की गई थी, उस की प्रगति बराबर जारी है। हमारे शिक्षा तथा जीव विज्ञान शिक्षणालय उत्तरीय भारत में विशेष स्थान रखते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी, प्राचीन गुरुकुलों की प्रणाली के मूलतत्वों की रक्षा करता हुआ वैदिक वाङ्मय, संस्कृत भाषा तथा भारतीय साहित्य के साथ-साथ विज्ञान, इतिहास आदि अन्य

आवश्यक विषयों की शिक्षा देने के प्रयत्न सफलतापूर्वक जारी रख सके, इसके लिए हमें बस देशवासियों का आशीर्वाद और सहयोग अपेक्षित है। विशेष रूप से इस समय गुरुकुल की निम्नलिखित आवश्यकताएं हैं, जिन्हें पूरा करने के लिए उदारहृदय दानियों से हम सहायता की आशा रखते हैं—

१ वैदिक-अनुसन्धान	एक लाख रुपये
२ पुस्तकालय के लिए पुस्तकें	पचास हजार रुपये
३ व्यायामशाला	पांच हजार रुपये
४ सैनिक प्रशिक्षण केन्द्र भवन	पांच हजार रुपये
५ संग्रहालय भवन	पचास हजार रुपये
६ विज्ञान संवर्धन निधि	एक लाख पचीस हजार रुपये
७ स्थिर कोष	पांच लाख रुपये
८ वेद महाविद्यालय के छात्रों के लिए पच्चीस, पच्चीस हजार की चार छात्रवृत्तियां	एक लाख रुपये
९ वेद महाविद्यालय के ४ कमरे	एक लाख रुपये
१० पुण्यभूमि रक्षा निधि	पांच हजार रुपये

प्रियव्रत वेदवाचस्पति
आचार्य

इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

आध्यात्मिक श्रद्धा

नया मानव बनाने वाली विचारक्रान्ति का कार्य किसी तरह के दबाव से होना कदापि सम्भव नहीं है। वह तो बुद्धि से समझ कर और हृदय में प्रवेश करके ही हो सकता है। इस के लिये इस की बुनियाद में जो आध्यात्मिक श्रद्धा है, वहां तक पहुंचना होगा।

—आचार्य विनोबा भावे।

क्या हम प्रसन्नता के अधिकारी हैं ?

एक आत्म परीक्षण

श्री भारतभूषण जी जवाहर नगर, देहली

१. क्या हमारे जीवन का उद्देश्य हमारी रुचि योग्यता तथा क्षमता के अनुकूल है ?

२. क्या हम मार्ग में आने वाली बाधाओं का बिना उद्विग्न हुए वीरता पूर्वक सामना करते हैं ?

३. क्या हम पूर्ण प्रयास के पश्चात् प्राप्त हुई स्वल्प सफलता का भी सम्यक् स्वागत करते हैं ?

४. क्या हम अपने दैनिक कार्य-क्रम में कभी-कभी परिवर्तन करते रहते हैं ?

५. क्या हम अपने रिक्त समय का रुचिकर उपयोग करते हैं ?

६. क्या हम साधारणतया स्वस्थ हैं ?

७. क्या हम निरन्तर अतीत वा भविष्य की सोचते रहने की अपेक्षा अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को वर्तमान में केन्द्रित करने का प्रयत्न करते हैं ?

८. क्या हम समाज में आकर्षण का केन्द्र बिना बने सन्तुष्ट रह सकते हैं ?

९. क्या हम कार्यारम्भ से पूर्व उसके लाभ या हानि का समुचित अंकन करते हैं ?

१०. क्या हम अपनी वासनाओं, इच्छाओं वा भावनाओं का निरन्तर उन्नयन करने में प्रयत्नशील हैं ?

११. क्या हम दूसरों से अपनी तुलना कर के अपने को तुच्छ या हेय समझते रहने की अपेक्षा अपनी कमियों को स्वीकार कर उन्हें दूर करने में तत्पर रहते हैं ?

१२. क्या हम मित्रों के चुनाव में सतर्क रहते हैं ?

१३. क्या हम अपने विविध उत्तरदायित्वों का पूर्ण रूपेण सम्पादन करते हैं ?

१४. क्या हम में अपने विचारों को निर्भयता पूर्वक व्यक्त करने का सामर्थ्य है ?

१५ क्या हम प्रति-दिन कुछ समय प्रार्थना, ध्यान और आत्म निरीक्षण में समर्पित करते हैं ?

नोट : प्रत्येक प्रश्न के ५ अंक हैं। ५० से ६५ तक प्राप्तांक सराहनीय, ४० से ५० तक सन्तोषप्रद तथा ३० से ४० तक सामान्य हैं।

प्रणव गीत

जिस तरफ़ भी देखता हूं, दीखता मम ओ३म् है ।
पूर्व पश्चिम दक्षिणोत्तर, सब दिशा में ओ३म् है ।। १ ।।

ओ३म् ऊपर ओ३म् नीचे, ओ३म् मम सर्वत्र है ।
रोम-रोम भरा सनातन, शान्तिदायक ओ३म् है ।। २ ।।

ओ३म् मम सर्वज्ञ है, प्रेम मय आनन्द मय ।
सर्व सङ्कट का निवारक, सोम मेरा ओ३म् है ।। ३ ।।

काले-काले घोर बादल, जब उमड़ते व्योम में ।
छिन्नभिन्न करे उन्हें यह, सूर्य सम मम ओ३म् है ।। ४ ।।

जब पवन वन में चले, शीतल करे रव सांय सांय ।
हृदयतन्त्री को बजाता, स्पर्श से मम ओ३म् है ।। ५ ।।

ओ३म् पर्वत के शिखर पर, गिरिगुहा में ओ३म् है ।
ओ३म् सरिता में कुसुम में, तरु-लता में ओ३म् है ।। ६ ।।

ओ३म् रवि में ओ३म् शशि में, ओ३म् तारों में छिपा ।
ओ३म् सागर में गगन में, सब जगह मम ओ३म् है ।। ७ ।।

ओ३म् कोकिल के सुरों में, ओ३म् महिला रूप में ।
सरल शिशु की मुस्कराहट, मां के प्रेम में ओ३म् है ।। ८ ।।

है यही उत्कृष्ट दृष्टि, ओ३म् दीखे सब जगह ।
शान्ति से आनन्द से भरपूर करता ओ३म् है ।। ९ ।।

सब दिशाओं दश दिशाओं में सुमङ्गल ओ३म् है ।
एक रस आनन्द दाता, भक्तवत्सल ओ३म् है ।।१०।।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड ।

गुरुकुलों के आदर्श से प्रेरणा

श्री वासुदेवशरण जी एम. ए. डी. लिट्, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

भारतीय शिक्षा-प्रणाली के क्षेत्र में गुरुकुल एक नया प्रयोग था। जिसे अपूर्व सत्साहस के साथ राष्ट्रोत्थान के नए युग में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने आरम्भ किया। गुरुकुल संस्था की आत्मा प्राचीन थी, परन्तु उसका प्राण नया था। स्वराज्य आन्दोलन के उषाकाल में गुरुकुल ने शिक्षा के जगत् में जनता को अपने पैरों पर खड़े होने की प्रेरणा दी और ज्ञान के हर एक क्षेत्र में परतन्त्रता से मुक्ति पाने के लिये प्रोत्साहित किया। सौ वर्षों से अंग्रेजी शिक्षा संस्थाओं के पिंजरा पोलों में राष्ट्रीय ज्ञान साधन के सारे प्रयत्न बन्द जकड़े पड़े थे। गुरुकुलों ने उन्हें मुक्ति के श्वासवायु से परिचित किया। यद्यपि देश की वे संस्थाएं तुरन्त ही बन्धनों को तोड़ कर स्वतन्त्र न बन सकीं, फिर भी गुरुकुलीय आदर्शों से प्रेरणा पाकर उन्होंने नवजीवन के लिये हाथ-पैर मारने की शक्ति प्राप्त की। अर्वाचीन भारत को शिक्षा की स्वराज्य भावना गुरुकुल आन्दोलन की देन कही जा सकती है।

इस समय राष्ट्र स्वतन्त्र हुआ है, परन्तु शिक्षा-प्रणाली के गले में जो विदेशी बंधन पड़े हुए थे वे सर्वथा छूट नहीं पाए। शिक्षा का विदेशी आदर्श कुछ चांदी के टुकड़ों के बदले नौकरी पा लेना था। परीक्षाओं की संहारिणी परिपाटी ने प्राचीन भारत की स्वतन्त्र, निर्माण-कर्त्री शिक्षापद्धति का गला घोंट डाला। किसी भी प्रकार का नूतन निर्माण जो उच्चकोटि के टकसाली ज्ञान विज्ञान में सहायक हो, जो विचारों का जन्मदाता हो, जिसमें जीवन का शक्तिशाली दार्शनिक दृष्टिकोण पाया जाता हो, वतमान शिक्षा संस्थाओं की निराशाजनक स्थिति में सम्भव नहीं रहा। शिक्षा की वर्तमान चालू पद्धति समाज और व्यक्ति के जीवन में अराजकता का संचार करती है। गांवों के देहाती जीवन में वर्तमान शिक्षा पहुंचती है तो उस जीवन की बंधी हुई पद्धति को उलट पुलट कर डालती है और उस को पाने वाला व्यक्ति गांव की भूमि से उखड़कर शहर में मुरझाने के लिये विवश हो जाता है। गुरुकुलों की प्राचीन परिपाटी में मुख्य बात थी जीवन का संतुलन और व्यक्ति की सर्व विध स्वतंत्रता। प्राचीन संस्थाएं या गुरुकुलाश्रम यंत्रागारों के समान नौकरी पेशे वाले नर ढालने के साधन नहीं थे। वे तो विशिष्ट व्यक्तियों की स्वतन्त्र प्रयोगशालाएं थीं जहां दीपक से नवीन दीपक प्रकाशित करने के ढंग पर जाग्रत मस्तिष्क के संघर्ष से नए मस्तिष्क तैयार होते थे। आज की संस्थाओं में अध्यापक के तेज को सब से अधिक धक्का लगा है। वस्तुतः वही तो शिक्षा संस्था का सच्चा धन है। तेजस्वी अध्यापक तो छात्रों के विद्या और बुद्धि का भी असली संरक्षक हैं। छात्रों और अध्यापकों में अधिकारों का द्वन्द्व कहीं होना ही नहीं चाहिये। जब अध्यापक के तेज की हानि होती है, जब उसके पद की स्वतन्त्रता को धक्का लगता है, तभी

मानो छात्रों के सच्चे हितैषी तत्व का दिवाला हो जाता है। शिक्षा की प्राचीन विधि में आचार्य सब से महत्वपूर्ण व्यक्ति था। आज हमारे सामने यही समस्या है कि किस प्रकार शासन यंत्र के मुकाबिले में शिक्षा संस्थाओं की स्वायत्त स्थिति की रक्षा की जा सके ? भारतवर्ष में तीन चार सहस्त्र वर्षों तक शिक्षा संस्थायें शासन से स्वतन्त्र आत्म निर्भरता की दशा में अपना अस्तित्व बनाएं रह सकीं। अब उन्हें पक्षाघात हो गया है। इस व्याधि पर हमें शीघ्र विजय प्राप्त करनी होगी। जनता को फिर पहले की तरह शिक्षा संस्थाओं के भार को अपने कंधों पर उठाना होगा। नियमों की जड़ी-भूत चौखटेबन्दी से संस्थाओं को अपना पिंड छुड़ाना होगा। सर्वत्र व्यक्ति के लिये विकास और स्वातन्त्र्य का मार्ग खोलना होगा। जीवन की वास्तविकता के साथ शिक्षा संस्थाओं का मेल मिलाना होगा। शिक्षा में से अहंकार अधिकार की प्रमाद पूर्ण स्थिति को तुरन्त दूर करना होगा। शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य ज्ञान संवर्धन और नूतन निर्माण है। इसी इष्ट सिद्धि के लिये शिक्षा सम्बन्धी सारे प्रयत्नों की कीली को घुमाना होगा।

आज गुरुकुलों के पुराने आदर्शों में हमारे लिये अद्भुत सामग्री भरी हुई है। हमारी समस्याओं पर उन से प्रकाश पड़ता है। उन्हीं के अनुसार हमें नई परिस्थितियों में अपनी संस्थाओं को सादगी, आत्म निर्भरता, संयम, नव निर्माण, ज्ञान साधना, स्वतन्त्र विचार और विश्व मानव के साथ समन्वय और प्रेम की प्राप्ति के लिये ढालना होगा।

ज्ञान के साथ बुद्धि की आवश्यकता

आज केवल ज्ञान की ही आवश्यकता नहीं है, पिछले १५ वर्षों में संसार ने उस से कहीं अधिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जितना कि पिछले एक हजार वर्षों में प्राप्त किया था। आधुनिक संसार ने अणु-शक्ति का आविष्कार किया है। निस्सन्देह यह एक महान् ज्ञान है, किन्तु यदि हम में सदुपयोग की बुद्धि न हो तो हम उसे विनाश के प्रयोग में ला सकते हैं।

—उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्।

राष्ट्रभाषा और सच्चरित्र का महत्त्व

श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक, ज्वालापुर

(यह श्री स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक का वह भाषण है जो उन्होंने २६ मार्च, सन् १९५९ को पंजाब की राजधानी चंडीगढ़ में भाषा विभाग वार्षिक समारोह के अवसर पर शिक्षित जनसमुदाय के सामने माननीय राज्यपाल श्री गाडगिल जी की अध्यक्षता में दिया)

माननीय श्री राज्यपाल गाडगिल जी, तथा सद्गृहस्थों और नर-नारियों — आज आप लोगों ने मुझे अपने इस शानदार समारोह में आदर पूर्वक निमन्त्रित कर जो पुरस्कार देने का आयोजन किया है, और मेरी हिन्दी सेवाओं के लिए ११००) की थैली भेंट की है, उसके लिए मैं पंजाब के भाषा विभाग का बड़ा आभारी हूं। मैं पन्द्रह रुपये लेकर सन् १९०५ की पहली जनवरी को वाराणसी से स्वतन्त्रता की खोज करने के लिए निकला था। उस समय संयुक्त राज्य अमेरिका ही एक ऐसा स्वतन्त्र देश था जहां जा कर स्वतन्त्रता-देवी के दर्शन हो सकते थे। डेढ़ वर्षों की जद्दोजहद के बाद मैं अमरीका के प्रसिद्ध नगर शिकागो में पहुंचा और वहां के जगद्विख्यात विश्वविद्यालय में भर्ती होकर अपनी खोज में लग गया। पूरे पांच वर्ष मुझे उस खोज में लगे। तीन विश्वविद्यालयों में जा कर मैंने भिन्न-भिन्न विषयों का अध्ययन कर स्नातक की उपाधि पाई, पर इससे भी मेरा सन्तोष नहीं हुआ।

विश्वविद्यालयों में पढ़ने, विद्यार्थियों और प्रोफेसरों से मिलने तथा बड़े बड़े विद्वानों के व्याख्यान सुन लेने से ही मेरी खोज का मार्ग समाप्त नहीं हो सकता था, जब तक कि कस्बों, ग्रामों और नगरों में पैदल घूम कर वहां के किसानों की दशा का अवलोकन न करता तथा कल कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की अवस्था को न जान लेता। भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिए सबसे बड़ा प्रश्न एक भाषा का था। किस प्रकार भिन्न-भिन्न भाषाएं बोलने वाले भारतीय महाराष्ट्र के भिन्न-भिन्न प्रांत एक सूत्र में बद्ध होकर ब्रिटिश शासन का अन्त कर सकते हैं, यह समस्या मेरे सामने थी। इस महान् समस्या को हल करने के लिए मैंने कठिन व्रत लिया और उसकी सिद्धि के लिये दो हजार तीन सौ मील पैदल यात्रा करने का प्रण कर डाला।

मेरी वह यात्रा मेरे जीवन की बड़ी विकट तपस्या है और उसी के द्वारा मुझे स्वतन्त्रता देवी का साक्षात्कार हुआ। अमरीका में भी योरुप से आए हुए जुदा-जुदा भाषा बोलने वाले लाखों लोग बसे हुए थे, किन्तु उन सब ने राष्ट्र धर्म में दीक्षित होकर अपने-अपने साम्प्रदायिक और संकुचित विचारों को परे फैंक कर स्वतन्त्रता देवी की आराधना के लिए एक भाषा को स्वीकार कर लिया। सानफ्रांसिसको से न्यूयार्क तक एक भाषा बोलने वाले इन देशभक्त अमरीकनों ने मेरे हृदय पर गहरी छाप डाली और मेरे मुंह से अनायास निकला—'राष्ट्रधर्म धर्मों का राजा, यह बिगड़े बिगड़े सब काजा'—जब

तक लोगों में ऊंचे दर्जे का राष्ट्रधर्म ओत-प्रोत नहीं हो जाता, जब तक जाति के बच्चे अपने क्षुद्र स्वार्थों को त्याग कर देश के लिए बलिदान होना नहीं सीखते, जब तक छूत-छात, जात-पात अस्पृश्यता का पागलपन नहीं मिट जाता, तब तक कोई भी देश संगठित नहीं हो सकता। यदि मुझे भारतवर्ष के लोगों में स्वतंत्रता के सिद्धान्तों का प्रचार करना है तो सबसे पहले मुझे इन्हें नीचे लिखा सूत्र सिखलाना चाहिए—क्या सूत्र है—

Let every man be occupied in the highest employent of which his nature is capable and die with the consciousness that he has done his best.

अर्थात् प्रत्येक भारतीय को राष्ट्र धर्म की खातिर राष्ट्र धर्म में दीक्षित हो कर देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति में लग जाना चाहिये—उस काम में जो उसके स्वभाव, योग्यता और चित्तवृत्ति के अनुकूल हो—उसे सारी शक्ति लगा कर मृत्यु के समय तक उसमें इस भांति लग जाना चाहिए कि जीवन के अन्तिम समय में उसे इस बात का पूरा सन्तोष हो कि उसने अपने कर्तव्य पालन में कोई त्रुटि उठा नहीं रक्खी। यह सूत्र प्रत्येक भारतीय नर-नारी को अपने हृदय पटल पर लिख लेना चाहिये। जिस देश में लोग व्यक्तिगत स्वार्थों में पड़े रहते हैं वह देश पतन के गर्त में चला जाता है। यदि हम अपने देश को उठाना चाहते हैं तो हमें नीरोग साहित्य रचना करनी चाहिये; शिक्षा का ऊंचा आदर्श रखकर विद्यार्थियों में अनुशासन और चरित्र संगठन के नियमों को लाना चाहिए। आज भारत का करुण क्रन्दन यही है—Men wanted अर्थात् आदमी चाहियें। गन्दे सिनेमा और अश्लील साहित्य हमारे बच्चों की जीवनियों को घुन की तरह खा रहे हैं। कामुकता के विचार उनके वीर्य का नाश कर रहे हैं। मेरे देश के लोगो! स्मरण रखिए—

वह शक्ति जो जातियों को उठाती है, वह तेज जो देश को उज्ज्वल करता है, वह बल जो राष्ट्र को शक्तिशाली बनाता है, वह समीर जो उसका यश फैलाता है, जो उसकी नैतिक प्रभुता को उत्पन्न करता है, जो उसका आदर और गौरव बढ़ाता है, जो करोड़ों आत्माओं के हृदयों को उसके आधीन करता है और इर्द गिर्द के अभिमानी राष्ट्रों को उनके प्रति विनयी बनाता है, वह आज्ञा पालन करने वाला तेजस्वी साधन वह आधिपत्य दिलाने वाला सुन्दर स्रोत, किसी राष्ट्र का वह सच्चा सिंहासन और राज्याधिकार—अरे मेरे लोगो! वह शक्तिशाली महत्ता वर्णाश्रम की डींग मारने से प्राप्त नहीं होती, न वह फैशन शृङ्गार में डूबे रहने से मिलती है, ना ही वह वाक्चातुरी, मजहबी ढोंग और बुद्धि कौशल से ही प्राप्त हो सकती है। वह महत्ता तो केवल निर्मल चरित्र रखने वाले नर-नारियों द्वारा ही राष्ट्र को हासिल होती है और मानव-जाति का एक मात्र पथ-प्रदर्शक केवल वह सुन्दर चरित्र ही है।

अन्त में स्वामी जी ने श्रोताओं से अपील की कि वे राष्ट्र के कल्याण के लिये नीरोग साहित्य का प्रचार करें और देश में चरित्र संगठन के सिद्धान्तों का जोर शोर से प्रचार करें, जिससे देश की स्वतन्त्रता सुरक्षित हो जाय।

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की २ प्रतियां पत्रिका कार्यालय में आनी चाहियें)

महापुरुषकीर्तनम् भाषानुवाद सहितम्

लेखक तथा प्रकाशक—पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड 'आनन्द कुटीर' ज्वालापुर, गुरुकुल मुद्रणालय में मुद्रित, पृष्ठ संख्या २३२ मूल्य सजिल्द २.२५, अजिल्द २.०० ।

महापुरुषों का वर्णन संस्कृत कविता में होने से यह साहित्य अमर हो जाता है ।

१ मुझे यह देखकर हर्ष हुआ है कि आस्तिक ग्रन्थकार ने आरम्भ में सबसे बड़े पुरुष (प्रभु) का कीर्तन वेदमन्त्र देकर किया है । प्रभु का यह वर्णन सचमुच मांगलिक भी हुआ है और हृदयाकर्षक भी । यह वर्णन नास्तिक को भी आस्तिक बनाने की क्षमता रखता है ।

२ दूसरे कांड में—श्री बुद्धदेव, कबीर स्वामी दयानन्द आदि त्यागी तपस्वियों का मनोमोहक वर्णन हुआ है । ये महामानव जन सुधारक बन कर आये हैं । इन का जीवन नितरां शान्त रहा है ।

३ तीसरे कांड में—भारत के श्री शंकर आदि आचार्यों और राष्ट्र कवियों किं वा विश्व कवियों का विशद कीर्तन किया गया है । इसमें कवीन्द्र रवीन्द्र आदि राष्ट्रोद्धारक कवियों का भी सुन्दर वर्णन मिलता है ।

४ चौथे कांड में—भारत के नाना प्रान्तीय समाजसुधारक नररत्नों का अत्याकर्षक वर्णन हुआ है । इनकी किरणें भारत से बाहर भी फैली हैं, जिनके जीवन से भिन्न राष्ट्र निवासी भी प्रभावित हुए हैं ।

५ पांचवें कांड में—भारतीय सम्राटों का वर्णन अत्युत्तम रीति से किया गया है । इसमें युद्धवीरों के अतिरिक्त धर्मवीरों का भी प्रभावोत्पादक वर्णन हुआ है । श्री हकीकतराय तथा गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों का धर्म पर बलिदान तो सचमुच भारतीय बच्चों के अन्दर नवीन रक्त उत्पन्न करने की क्षमता रखता है ।

६ छठे कांड में—राष्ट्र के नायकों (श्री दादाभाई तिलक, मालवीयादि) का इतना आकर्षक वर्णन हुआ है कि पढ़ते ही यह इच्छा जागृत हो जाती है कि हम भी कुछ बनें । इसमें उन सम्पूर्ण वीरों (श्री पटेल मुखर्जी, सुभाष) आदि नवयुवकों तथा श्री टण्डन, आज़ाद, भावे,आदि प्रौढ़ महानुभावों का भी हृदयाकर्षक वर्णन हुआ है । इन में अजात शत्रु श्री राष्ट्रपति जी तथा अश्रांत कर्मवीर श्री जवाहरलाल जी का कार्य भी सुन्दर प्रकार से दिखाया गया है । इसमें गणतन्त्र का चित्रण भी अत्युत्तम प्रकार से किया गया है ।

७ सातवें कांड में—भारत से बाहर के समस्त भूमण्डल के चुने हुए जरदुश्त, सुकरात, ईसामसीह आदि सत्यवक्ताओं का अतीव हृदयाकर्षक वर्णन हुआ है । यह कांड न होता तो यह ग्रन्थ जहाँ अधूरा समझा जाता वहां पक्षपातपूर्ण भी माना जाता ।

इस कांड ने ग्रन्थ को विशाल गौरव दिया है। इनका वर्णन पूरी निष्पक्ष भावना से किया गया है। इसमें टालस्टाय, हिटलर का वर्णन भी पक्षपात रहित हुआ है। इस कांड के आ जाने से जहां ग्रन्थ से लेखक की विद्वत्ता का परिचय मिलता है वहां इनकी दूरदर्शिता भी सिद्ध होती है।

८ परिशिष्ट में—आर्यसमाज के अनथक कार्यकर्त्ता श्री म० हंसराज जी आदि का सुंदर वर्णन हुआ है। संपूर्ण ग्रन्थ के अध्ययन से ग्रन्थकार की मेधाविता का पूरा परिचय मिलता है। इसके अध्ययन से भारतीय छात्रों के हृदय में व्यापक विचार आ सकते हैं—यदि भारत सरकार इसे किसी अध्यापनीय विभाग में चुन ले। इस के अध्ययन से जहां राष्ट्रीय भावना जागृत हो उठती है वहां साम्प्रदायिक भावना—जो राष्ट्रोत्थान में भारी रुकावट है—घट भी सकता है।

इतना लिखकर मैं अपनी लेखनी का जन्म सफल समझता हूं।

चूड़ामणि शास्त्री विज्ञान भिक्षुः
का० नि० आचार्य सनातन धर्म संस्कृत
कालेज, मुलतान

अमृत-पथ की ओर

लेखक—श्री पं० दीनानाथ जी सिद्धान्तालङ्कार, भूमिका लेखक—श्री गुलजारीलाल जी नन्दा केन्द्रीय श्रम योजनामन्त्री, प्रकाशक—पंजाब पुस्तक भंडार १५७३ फैजगंज, दरियागंज देहली पृष्ठ १८० मूल्य २.०० ।

श्री पं० दीनानाथ जी सिद्धान्तालंकार गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के एक सुयोग्य अनुभवी पत्रकार स्नातक हैं जो आजकल भारत सेवक समाज के सम्पादक हैं। उन्होंने इस पुस्तक में छान्दोग्य उपनिषत्प्रोक्त ११ व्रतों की सुन्दर और रोचक व्याख्या सरल शैली से करते हुए जीवन दर्शन अथवा संसार में रहने का तरीका, आत्मौपम्यदृष्टि, अमृतपद के पांच सोपान, अमृतपद के लिए साधन चतुष्टय विवेक, वैराग्य, शमदमादिषट्क सम्पत्ति, मुमुक्षुत्व पर बड़ा उत्तम प्रकाश डाला है और अन्त में प्रार्थना गीतों के साथ अमृतपथ की ओर प्रेरणा देने वाले कुछ उपनिषद् वाक्यों का उपयोगी संकलन किया है। इन व्रतों में कीर्ति से हृदय में महत्ता, अग्निमय जीवन, नारी का स्थान, तपोमय जीवन, जनता की निन्दा न करना, पशुरक्षण, मांस न खाना, आत्मा को ऊंचा रखना आदि सम्मिलित हैं। केन्द्रीय सरकार के श्रम और योजना मन्त्री श्री गुलजारी लाल जी नन्दा ने भूमिका में ठीक ही लिखा है कि 'इस पुस्तक को पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। इसमें सरल भाषा एवं सुगम शैली में मानव धर्म और सदाचार के सम्बन्ध में बहुत कुछ जरूरी बातें रख दी गई हैं। मुझे आशा है यह पुस्तक पाठकों में सदाचार की प्रेरणा फूकेगी। इस प्रकार समाज का चरित्र उठाने में सहायक होगी।" अमृतपथ जैसे गम्भीर विषय को कथाओं, उदाहरणों तथा वेद उपनिषदादि के उपयोगी उद्धरणों द्वारा इस पुस्तक में अत्यन्त स्पष्ट कर दिया गया है। आध्यात्मिकता को

जागृत करने वाले ऐसे साहित्य की सदाचार निर्माण के लिये अत्यधिक आवश्यकता है । हम अपने मान्य बन्धु श्री पं० दीनानाथ जी का इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और इस का यथेष्ट प्रचार चाहते हैं । पुस्तक में दिये चार भजन भी अत्यन्त भावपूर्ण हैं ।

कर्म मीमांसा

लेखक---आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री एम. ए., नासिक, प्रकाशक---आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर । पृष्ठ संख्या २३० मूल्य २.०० ।

आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध मनीषी विद्वान हैं जिन्होंने 'आर्य सिद्धान्त सागर', 'वैदिक ज्योति', 'शिक्षा तरङ्गिणी' आदि विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों का निर्माण करके अच्छी ख्याति प्राप्त की है । प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने पाश्चात्य और पौरस्त्य सभी दृष्टियों से कर्म के विविध विषयों और कर्तव्याकर्तव्य निर्णय की कसौटी आदि पर विचार किया है। कर्म में नीति-अनीति का विचार, नीति के मूलतत्व, नीति में आपद्धर्म का स्थान, कर्तव्य और अधिकार, नीति और विधान, भाग्य और पुरुषार्थ, कर्मयोग और भक्ति, कर्म और मानव के अन्तिम उद्देश्य की पूर्ति इत्यादि शीर्षक दे कर सुयोग्य लेखक ने कर्म से सम्बद्ध इन विषयों पर उत्तम प्रकाश डाला है । पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अभिमत अनेक धारणाओं का भी इसमें युक्तियुक्त निराकरण किया गया है। इस प्रकार कर्म के विषय में यह एक महत्वपूर्ण पुस्तक बन गई है जिससे सब दार्शनिक तथा सामान्य जिज्ञासु भी लाभ उठा सकते हैं । पुस्तक सबके लिये उपादेय है और इससे हिन्दी भाषा के दार्शनिक साहित्य में अभिनन्दनीय वृद्धि हुई है ।

अर्थ धर्म मीमांसा

(पूंजीवाद और समाजवाद की समालोचना) लेखक—श्री पं० ईश्वरचन्द्र जी शर्मा दर्शनाचार्य,सम्पादक–श्री मदनमोहन जी विद्यासागर वेदालंकार आर्यसमाज कूचि पूड़ि,तेनाली तालुक आन्ध्रप्रदेश द्वारा प्रकाशित । पृष्ठ संख्या २८७, मूल्य ३.०० ।

श्री पं० ईश्वरचन्द्र जी शर्मा एक सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् हैं जिन्होंने न केवल ६ आस्तिक दर्शनों का ही अध्ययन कर के उनका पाण्डित्य प्राप्त किया है, अपितु बौद्ध, जैनादि दर्शनों पर भी उन का आधिपत्य है । पूंजीवाद और समाजवाद आजकल के प्रसिद्ध विषय हैं अतः उन का गम्भीर अनुशीलन करके मान्य पंडित जी ने उनकी निष्पक्ष आलोचना इस पुस्तक में की है। मार्क्सवादी पारलौकिक वस्तु का विचार नहीं करते परन्तु 'अर्थ धर्म मीमांसा' के सुयोग्य आस्तिक लेखक ने आत्मा के विचार को समाज की अर्थव्यवस्था के लिए भी लाभकारी सिद्ध किया है । मार्क्स के 'कैपिटल',ऐंगल्स के 'ओरिजिन ऑफ़ दी फेमिली, प्राइवेट प्रौपर्टी ऐन्ड दी स्टेट्' और श्री डांगे की 'भारत' नामक पुस्तकों में जो विचार हैं, उन सबकी युक्तियुक्त परीक्षा इस पुस्तक में की गई है । यह पुस्तक कितनी योग्यता से लिखी गई है और विद्वान् विचारकों ने इसे कितना पसन्द किया है यह इसी से जाना जा सकता है कि उत्तरप्रदेशीय सरकार ने सुयो-

ग्य लेखक को ४००) का पुरस्कार देकर सम्मानित किया है। इन दिनों जब अपनी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के तत्वों को भुला कर सुशिक्षित लोग रूस द्वारा प्रचारित धर्म विरोधी साम्यवाद पर लट्टू हो रहे हैं, ऐसी विचारपूर्ण पुस्तक लिख कर मान्य पं० ईश्वरचन्द्र जी ने समाज और राष्ट्र की बड़ी अभिनन्दनीय सेवा की है जिसके लिए हम उन का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और इस पुस्तक का शिक्षित वर्ग में विशेष प्रचार चाहते हैं।

'कल्याण' का मानवता अङ्क

सम्पादक—श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार तथा श्री चिम्मनलाल जी गोस्वामी शास्त्री एम. ए., प्रकाशक—गीताप्रेस गोरखपुर पृष्ठ संख्या ७०४ मूल्य ७.५० ।

'कल्याण' अपने हिन्दू-संस्कृति अंक, नारी अंक, भक्ति अंक, संक्षिप्त महाभारतांक इत्यादि विशेषांकों के कारण अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुका है। यह उसका विशाल मानवतांक (वर्ष ३३ संख्या १) है जिसमें मानवता के विषयों में वेद, उपनिषद्, गीता तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों और मतमतान्तरों के मान्य ग्रन्थों तथा महापुरुषों के उपदेशों का प्रसिद्ध विद्वानों और कवियों के द्वारा उपयोगी संकलन किया गया है। प्रायः लेख विद्वत्तापूर्ण और मानवता के आदर्श को समझने के लिए उपयोगी हैं। 'वेदों की संहिताओं में मानवता का प्रशस्त आदर्श' (परमहंस वेदान्तवागीश स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी द्वारा लिखित), 'वेदों में मानवोद्धार के उच्च आदेश' (श्री रामचन्द्र जी उपाध्याय शास्त्री द्वारा लिखित' 'मानवता का विकास और वेद' (डा० श्री मुंशीराम जी शर्मा एम. ए. डी. लिट् द्वारा लिखित) 'मानवता और श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती' (श्री बाबूराम जी गुप्त कृत) 'मनुर्भव'—मनुष्य बनो कैसे ? (पं० दीनानाथ जी सिद्धान्तालंकार कृत) 'मानवता का परित्राता योग' (कवियोगी स्वामी शुद्धानन्द जी भारती कृत) आदि लेख हमें विशेष रूप से मननीय प्रतीत हुए। अधिकतर चित्र भी अत्युत्तम और आकर्षक हैं जिनमें मातृ-पितृ सेवा, श्री राम का भेदरहित प्रेम, दया, अहिंसा, त्याग, आदर्श क्षमा,सेवा इत्यादि को अंकित करने का प्रयत्न किया गया है। इस अंक के कई लेखों और कविताओं में प्रकाशित पौराणिक अवतारादि समर्थक भावों से सहमत न होते हुए भी हम इस अंक को साधारणतया मानवता के प्रचार की दृष्टि से उपयोगी समझते हुए इसके सुयोग्य सम्पादकों का उस परिश्रम के लिये जो उन्होंने तन्मयता और निष्ठा के साथ जनता को लाभान्वित करने के उद्देश्य से किया है हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

नवयुवकों को उद्बोधन

कवि जोरावरसिंह जी बरसाना

ऐ नौजवान अब तो तू, कुछ कर के दिखा दे ।
सोया हुआ है देश तेरा, इस को जगा दे ।।

निकला है वेद-सूर्य, जगत हो गया खड़ा
हा शोक सो रहा है, किन्तु तू अभी पड़ा ।
चैतन्य हो आलस्य व निद्रा को भगा दे ।
सोया हुआ है देश तेरा, उस को जगा दे ।। १ ।।

हलचल मचाये देश में वह चक्र तू चला,
श्वासों से विकट जोश की, वह आग दे जला,
जो देश की कुरीतियों को भस्म बना दे ।
सोया हुआ है देश तेरा इस को जगा दे ।। २ ।।

आवे जो कहीं दाग तेरी शान के ऊपर,
उस को बचा तू खेल जा निज जान के ऊपर ।
बहते हुए पानी में भी तू आग लगा दे ।
सोया हुआ है देश तेरा इस को जगा दे ।। ३ ।।

हाथों से दासता के सब बन्धन को खोल कर
जयकार जन्मभूमि मां, भारत का बोल कर ।
वेदों का नाद फिर से सकल जग में बजा दे ।
सोया हुआ है देश तेरा, इस को जगा दे ।। ४ ।।

मैदान में आ 'सिंह कवि' कर सिंह गर्जना
कुछ कर के दिखा व्यर्थ की बातें न अब बना ।
आंसू बहाना छोड़ दे, निज रक्त बहा दे ।
सोया हुआ है देश तेरा, इस को जगा दे ।। ५ ।।

सम्पादकीय

संस्कृत की अनिवार्य शिक्षा पर बल

यह हर्ष की बात है कि गत ७ मई को संस्कृत आयोग के प्रतिवेदन पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लोकसभा में प्रायः सभी वक्ताओं ने संस्कृत-शिक्षा के प्रसार का प्रबल समर्थन किया। पं० प्रकाशवीर शास्त्री और पं० नरदेव जी स्नातक ने भी इसके समर्थन में प्रभावशाली भाषण दिया। संस्कृत की विदुषी रानी मंजुलादेवी ने कहा कि 'संस्कृत की शिक्षा हाई स्कूल के पहले प्रारम्भ की जाए क्योंकि ५ वर्ष इसके लिये पर्याप्त नहीं है। साथ ही संस्कृत के अध्ययन से प्रादेशिक भाषाओं का भी विकास होगा। उन्होंने यह भी कहा कि ईसाई लोग बाइबल अच्छी तरह जानते हैं, मुसलमान कुरान जानते हैं लेकिन हिन्दू अपने वेद के विषय में बहुत कम जानते हैं। अतः वेद पढ़ाया जाना चाहिये। संस्कृत के विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय के अन्य विद्यार्थियों के बराबर माना जाए। संस्कृत में पुस्तक लेखन को प्रोत्साहित किया जाए।' इत्यादि

(हिन्दुस्तान ६. ५. ५६)

हम रानी मंजुलादेवी जी के इस भाषण में प्रकाशित विचारों से पूर्णतया सहमत हैं और जहां संस्कृत की अनिवार्य शिक्षा चाहते हैं वहां वेदों के अध्ययन पर जो उन्होंने बल दिया है उसे भी हम अत्यन्त उपयोगी समझते हैं। केवल संस्कृत साहित्य के अध्ययन से लाभ नहीं हो सकता जब तक विद्यालयों और महाविद्यालयों में वेदों के अध्ययन, अध्यापन की उचित व्यवस्था न हो।

राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव

नई देहली में ६, १०, ११ मई को जो राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन हुआ उसमें स्वीकृत निम्न दो प्रस्तावों को हम विशेष महत्वपूर्ण समझते हुए उन की ओर जनता और शासनाधिकारियों का ध्यान आकर्षित करना अपना कर्तव्य समझते हैं। उन में से एक प्रस्ताव में कहा गया कि 'अंग्रेजी को विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम रहने देना तथा केन्द्रीय राज्य सरकार के कारोबार में अंग्रेजी का चालू रहना देश की प्रगति और प्रतिष्ठा के विरुद्ध है।'

एक दूसरे प्रस्ताव में संसदीय भाषा समिति के विषय में कहा गया कि—

'सम्मेलन का स्पष्ट अभिप्राय है कि संसदीय समिति की सिफारिशें जैसी चाहियें वैसी प्रगतिशील नहीं हैं। ये सिफारिशें बहुत अस्पष्ट हैं तथा हिन्दी के काम को आगे बढ़ाने को प्रेरक नहीं। हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं को शिक्षण के माध्यम बनाने तथा राजकाज में पूरा स्थान देने के लिए जो कदम उठाना चाहिये उसके सम्बन्ध में राजभाषा आयोग की सिफारिशों में कुछ कमी ही की है यह बड़े दुःख की बात है।'

इन में से प्रथम प्रस्ताव के सम्बन्ध में हम अनेक वार सम्पादकीय टिप्पणियों में प्रकाश डाल चुके हैं और हमारी यह दृढ़ सम्मति है कि अंग्रेजी को विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम रहने देना (चाहे वह १० वर्ष तक ही

क्यों न हो जैसे कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डा० चिन्तामणि देशमुख जी ने २६ मई को पत्र प्रतिनिधि सम्मेलन में कहा है) तथा केन्द्रीय और राज्य सरकारों के कारोबार में अंग्रेजी का चालू रहना देश की प्रगति और प्रतिष्ठा तथा सच्ची राष्ट्रीयता के सर्वथा विरुद्ध है।

'गुरुकुल पत्रिका' के गत अंक में जब हम ने संसदीय भाषा समिति के प्रतिवेदन के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी दी थी तब जैसे कि हम ने संकेत किया था उस प्रतिवेदन के मुख्यांश प्रामाणिक रूप में हमारे सन्मुख न थे केवल पत्रों में प्रकाशित संक्षिप्त सार ही था किन्तु उसके पश्चात् जब हम ने ध्यानपूर्वक उस समिति के प्रतिवेदन के मुख्यांशों को पढ़ा तो उन से हमें विशेष सन्तोष नहीं हुआ। सचमुच वे सिफारिशें प्रगतिशील और निश्चयात्मक नहीं और न उन से हिन्दी के काम को आगे बढ़ाने की उचित प्रेरणा मिल सकती है। श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास जी टण्डन ने ११ मई को इस संसदीय समिति के प्रतिवेदन की तीव्र आलोचना करते हुए यहां तक कहा 'कि इसने राजभाषा आयोग के सुझावों पर पानी फेर दिया है। जिन लोगों ने अपने प्रभाव का दुरुपयोग कर इसे स्वीकृत कराया है उन्होंने बहुत ही खराब काम किया है।' हम चाहते हैं कि जब संसदीय समिति के प्रतिवेदन पर लोकसभा में विचार हो तो मान्य सदस्य निर्भयता से निःसंकोच अपने विचारों को प्रकाशित करें और इस में ऐसे परिवर्तन करा दें जिस से शीघ्र ही हिन्दी राजभाषा के रूप में अपने उचित स्थान को ग्रहण कर सके। वर्तमान शिथिल नीति से काम नहीं चल सकता।

श्री हुमायूं कबीर का 'बाजारू हिन्दी' समर्थन

सांस्कृतिक मामलों के केन्द्रीय मन्त्री श्री हुमायूं कबीर ने १९ मई को अहमदाबाद जिले के लोथल संग्रहालय के शिलान्यास समारोह में भाषण देते हुए कहा कि 'मैं संस्कृत निष्ठ हिन्दी की अपेक्षा बाजारू हिन्दी के पक्ष में हूं और वही भारत की भावी हिन्दी होनी चाहिये।" जब संविधान सभा पूर्ण विचार विमर्श के पश्चात् संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को राज भाषा बनाने के पक्ष में निर्णय कर चुकी है तब श्री हुमायूं कबीर जैसे एक केन्द्रीय मन्त्री का उसके विरुद्ध बाजारू हिन्दी को भारत की राजभाषा बनाने के पक्ष में भाषण देना सर्वथा अनुचित और अव्यावहारिक है। क्या बाजारू हिन्दी में शास्त्रीय और वैज्ञानिक विषयों में विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता हो सकती है ? कभी नहीं। यह ठीक है कि भाषा में बहुत कठिन अप्रचलित संस्कृत शब्दों को बलात्कार से ठूंस देना भी उचित नहीं किन्तु बाजारू हिन्दी से तो काम सर्वथा चल ही नहीं सकता। जब भारत की सभी प्रादेशिक भाषाओं बंगाली, गुजराती, मराठी, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, पाली आदि में संस्कृत शब्दों की अधिकता है तो संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही राजभाषा बन सकती है इस में सन्देह नहीं हो सकता। ऐसी अवस्था में श्री हुमायूं कबीर जी

जैसे एक उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्ति का बाज़ारू हिन्दी की वकालत करना कितना उपहासास्पद है।

ऐसे शिक्षकों के शिष्य कैसे होंगे ?

२१ मई के 'हिन्दुस्तान' नई देहली में नागपुर का २० मई का निम्न समाचार प्रकाशित हुआ है जिस का शीर्षक 'ये हैं हमारे अध्यापक' दिया गया है। समाचार यह है—

स्थानीय प्राइमरी स्कूल के दो हेडमास्टरों में कल यहां सार्वजनिक नलों से पानी भरने के प्रश्न को लेकर झगड़ा हो गया और परिणाम स्वरूप एक अध्यापक अस्पताल में है और दूसरा हवालात में बताया गया है कि इन दोनों हेड्-मास्टरों जावजदार और गुलाबशाह जैन में पहले पानी भरने के प्रश्न पर कहा-सुनी हुई। परिणाम स्वरूप जावजवार ने जैन को छुरा भोंक दिया।'

इस पर क्या टिप्पणी दी जाए ? यह छोटे मोटे अध्यापकों से सम्बद्ध घटना नहीं बल्कि दो प्राथमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों के पारस्परिक कलह में हिंसा के प्रयोग की घटना है। यदि प्रधानाध्यापकों तथा अन्य शिक्षकों में इतना भी परस्पर प्रेम और संयम न हो तो उन के शिष्यों से क्या आशा की जा सकती है ? शिक्षकों को तो प्रत्येक विषय में आदर्श शिष्यों के सन्मुख प्रस्तुत करना चाहिये किन्तु इस के स्थान में यदि वे परस्पर भयङ्कर कलह, हिंसा, गाली-गलौच, धूम्रपान तथा अन्य दुर्व्यसनों और दुराचारादि के उदाहरण (जैसे कि अनेक स्थानों पर देखा गया है, गाली-गलौच और बीडी सीग्रेट् आदि का सेवन तो बहुत ही साधारण बात है जिस पर ध्यान ही नहीं दिया जाता) छात्र-छात्राओं के आगे रखें तो कितनी निन्दनीय बात है। हम चाहते हैं कि अध्यापक अपने उत्तरदायित्व को गम्भीरता से अनुभव करते हुए स्वयं पूर्ण सदाचारी और सच्चरित्र बनें और शिष्यों के सच्चरित्र निर्माण में न केवल शिक्षा द्वारा प्रत्युत जीवन द्वारा सहायक हों।

एक जर्मन विद्वान् का खेद जनक पत्र

हमारे परिचित श्री न्यूमैन नामक जर्मन विद्वान् ने (जो गत वर्ष गुरुकुल पधारे थे और जिन्होंने विज्ञान भवन में एक भाषण दिया था) जर्मनी से एक पत्र अपने एक मित्र के नाम भेजा है जिस में प्रवासी भारतीयों के विषय में उन्होंने बड़े दुःख के साथ अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी में लिखा है कि 'मैं जर्मनी में बसे लगभग २० भारतीयों से मिला जो 'इण्डिया टुडे' (India To-day) नामक प्रदर्शनी में मार्ग दर्शक के रूप में नियुक्त थे। बहुत से जर्मन जो उस प्रदर्शनी को देखने के लिये आते थे विशेषतः भारत उस के आध्यात्मिक, धार्मिक और सामाजिक जीवन के विषय में अनेक प्रश्न करते थे किन्तु प्रत्येक भारतीय का उत्तर यह होता था कि 'I am sorry. I do not know.' मुझे खेद है कि मैं इस विषय में नहीं जानता। उन्होंने यह भी लिखा है कि कई प्रश्न बहुत ही सामान्य थे किन्तु वे उनका उत्तर देने में असमर्थ थे। वे लिखते हैं कि मैं पीछे उन से मिला और उनके जीवन को देखकर अत्यन्त आश्चर्य चकित और दुःखी हुआ एक को छोड़ कर उन में से किसी की

भारतीय वेष-भूषा न थी। सोने के समय में भी उन में से कोई धोती या पायजामे का प्रयोग न करता था। भोजन के विषय में वे कोई प्रतिबन्ध नहीं रखते और सब प्रकार के मांसादि का सेवन करते हैं। कोई भारतीय उत्सव व पर्व वहां नहीं मनाया जाता। उनमें बहुतों की पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों से ही मित्रता बनाने में रुचि है। उनमें से कई सन्देहास्पद स्थानों और होटलों में (जहां दुश्चरित्र स्त्रियां निवास करती हैं) जाते हैं और उन में से कइयों ने यह घोषणा की कि उन्हें भारत लौटने में कोई रुचि नहीं क्योंकि यहां (जर्मनी में) उनका जीवन अधिक रुचिकर है। उन्होंने इस पर अत्यधिक दुःख प्रकाशित करते हुए ठीक ही लिखा है यह शिक्षा प्रणाली का दोष है जो विद्यार्थियों को सच्चरित्र और देशभक्त बनाने में सहायता नहीं देती। वस्तुतः हमें भी इस पत्र को पढ़कर अत्यधिक दुःख हुआ। भारत के शासनाधिकारियों को भी अपने राजदूतावास तथा प्रतिनिधियों द्वारा प्रवासी भारतीयों में उत्तम देशभक्ति पूर्ण भावनाओं को भरने का विशेष प्रयत्न अवश्य करना चाहिये अन्यथा वे विचारशील विदेशियों की दृष्टि में भी अपने तथा भारत को गिरा देते हैं जैसे कि इस पत्र से सूचित होता है।

वर्णव्यवस्था विषयक एक भ्रामक विचार

'नवभारत टाइम्स' के १७ मई १९५९ के अङ्क में 'वर्णव्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष की जरूरत' इस शीर्षक से केन्द्रीय शासन के रेल मन्त्री माननीय श्री जगजीवनराम जी ने जोधपुर में पिछड़ी जातियों के सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए जो भाषण दिया उसका सार निम्न शब्दों में दिया है—'छूत अछूत और जातीय-भावनाओं को मिटाने के लिये वर्णव्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करना चाहिये। सभी लोगों को एक हो कर वर्णव्यवस्था पर हमला करना चाहिये क्योंकि जड़ में वही छुआछूत और जातीयता के वैमनस्य का पोषण करती है। देश की सर्वाङ्गीण उन्नति और समाजवादी ढंग के समाज की व्यवस्था में सबसे बड़ी बाधा असमानता की भावनाओं का बना रहना है। आज असल में न वर्णव्यवस्था है न आश्रम व्यवस्था ही है। अछूतों और ब्राह्मणों दोनों को ही गरीबी की परेशानियों से छुटकारे के लिये पुराने बन्धनों को तोड़ देना चाहिये। उन को जात-पात की दीवारों को धराशायी कर देना चाहिये' इत्यादि हम जातिभेद वा जात-पात को समाज और राष्ट्र के लिये अत्यन्त हानिकारक समझते हैं और माननीय चौ० जगजीवनराम जी के इस विचार का प्रबल समर्थन करते हैं कि 'सब को मिलकर जात-पात की दीवारों को धराशायी कर देना चाहिये।' हम पत्रिका में इससे पूर्व इस जात-पात की हानियों पर प्रकाश डाल चुके हैं और चाहते हैं कि इस समाज विध्वंसक बुराई के दूर करने के लिये सब कटिबद्ध हो जाएं

किन्तु श्री जगजीवनराम जी के इस कथन को हम सर्वथा भ्रामक समझते हैं कि वेदादि सत्यशास्त्रोक्त वर्णव्यवस्था जिसका आधार गुण कर्म पर है और जिस के अनुसार ४ ही वर्ण हैं कोई पञ्चम अस्पृश्य वा अछूत नहीं, जिस के

अनुसार नीचतम कुलोत्पन्न भी ब्राह्मणोचित गुणकर्मों को धारण कर ब्राह्मण बन सकते हैं उसके विरुद्ध संघर्ष करना चाहिये और उस पर हमला करना चाहिये क्यों कि जड़ में वही छूआछूत और जातीयता के वैमनस्य का पोषण करती है। वस्तुतः शास्त्रीय वर्णव्यवस्था 'रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु, रुचं राजसु नस्कृधि। रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयिधेहि रुचा रुचम्॥' (यजु. १७। ५१) 'प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये' (अथर्व १९। ६२। १) 'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानिसमीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।' (यजु. ३६। १८) इत्यादि वैदिक आदेशों के अनुसार सब के साथ प्रेम करना सिखाती है। उसे छूआछूत और जातीयता की जड़ बताना सर्वथा अशुद्ध है। हां, वर्णव्यवस्था को जन्मानुसार मानने से (जो विचार वेदादि सत्य शास्त्रों की शिक्षा के सर्वथा विरुद्ध है जैसे कि हमने अपनी 'भारतीय समाज शास्त्र—आर्य साहित्यमण्डल अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तक में सप्रमाण सिद्ध किया है) वे बुराइयां उत्पन्न होती हैं जिन का चौ० जगजीवनराम जी ने निर्देश किया है। आशा है भविष्य में माननीय रेल मन्त्री जी ऐसी भूल न करेंगे।

मान्य राष्ट्रपति जी का शिक्षा माध्यम विषयक प्रशंसनीय वक्तव्य

यह प्रसन्नता की बात है कि भारत के परम मान्य राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने गत २ जून को नैनीताल में भाषण देते हुए कहा कि उत्तम शिक्षा सरल और लाभदायक रूप में अपनी भाषा के द्वारा ही दी जा सकती है। उन्होंने कहा कि शिक्षा के माध्यम का प्रश्न एक आवश्यक प्रश्न है जिस का शीघ्र से शीघ्र समाधान होना आवश्यक है। उन्होंने उन लोगों से असहमति प्रकट की जो अंग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम रहने देना चाहते हैं।

हम मान्यवर राष्ट्रपति जी के इस स्पष्ट वक्तव्य पर सन्तोष प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि उन के नेतृत्व को स्वीकार कर के भारत सरकार शीघ्र से शीघ्र इस बात की घोषणा कर देगी। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी जैसी एक विदेशीय भाषा को नहीं किन्तु देशीय भाषाओं को ही रक्खा जाए और राजभाषा के रूप में हिन्दी के अध्ययन अध्यापन की सर्वत्र व्यवस्था हो। श्री फ्रैंक ऐन्थनी आदि के इस प्रस्ताव को हम नितान्त उपहासास्पद और निन्दनीय समझते हैं जिसके द्वारा वे अंग्रेज़ी को भी १५ वीं भारतीय भाषा के रूप में स्वीकार कराना चाहते हैं। हमारा विश्वास है कि जब ऐसा असङ्गत प्रस्ताव लोकसभा में प्रस्तुत होगा तो उसे सर्वथा अस्वीकृत कर दिया जायेगा।

—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गुरुकुल समाचार

ऋतुरङ्ग

ग्रीष्म ऋतु अपने यौवन पर है। दिन भर असह्य उष्णता अनुभव होती है। धूलभरी आंधियां एवं लू के प्रकोप के कारण अपराह्न में बाहर निकलना दूभर होगया है। फिर भी सायं-प्रातः का समय शीतमय एवं सुहावना होता है।

कुल की सभी आम्रवाटिकाएं आम्रफलों से लदी हुई झूम रही हैं। जामुन भी बौरा रहे हैं ग्रीष्मकालीन पंखियों के कलरवों से गुरुकुल पुरी के उद्यान और वन-कुल गूंजते रहते हैं। विशेषतः कोयल और पपीहे के मधुर आलापों से इस ऋतु का वैभव द्विगुणित हो उठता है। ऋतुफलों में खरबूजे-तरबूज और प्यालों की बहार है। बिल्व फल भी पक रहे हैं। कुल की बगीचियों की लीचियां भी अब तैयार हो रही हैं। प्रातः पर्यटन और नहर स्नान का बड़ा आमोद है। दिन भर सैलानियों एवं दर्शकों के गमनागमन से गुरुकुल के प्रधान पथों पर रौनक बनी रहती है। इस मास में गुरुकुल में कुल २०७३ दर्शक महानुभाव पधारे। सब कुलवासी सानन्द हैं।

ग्रीष्मावकाश

दीर्घावकाश १५ मई से ही प्रारम्भ हो चुका है। महाविद्यालय के प्रायः सभी छात्र अपने २ घरों पर जा चुके हैं। विद्यालय के छात्र अपने गुरुजनों सहित पर्वतीय स्थान मसूरी गए हैं। मसूरी को प्रधान पड़ाव मानकर वे समीपस्थ पर्वत-घाटियों का परिभ्रमण करेंगे।

हमारे मान्य अतिथि

इस मास गुरुकुल में पधारने वाले महानुभावों में से निम्न के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

१. १८।५।५९ को अमरावती से ८० अध्यापकों की एक यात्रिक टोली जिस में शिवाजी शिक्षा समिति द्वारा संचालित कुछ संस्थाओं के प्रतिनिधि थे, गुरुकुल अवलोकनार्थ आए। आप ने गुरुकुल के समस्त विभागों का दर्शन किया।

२. हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् व साहित्यकार, राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक और लोकसभा के सदस्य श्री सेठ गोविन्ददास जी ता० २०।५।५९ को गुरुकुल पधारे। आपने गुरुकुल के समस्त विभागों का अवलोकन करते हुए निम्न सम्मति प्रदान की।

"यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और बदरीनाथ इन उत्तराखण्ड के चारों धामों की यात्रा कर मैंने हरिद्वार में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का निरीक्षण किया। मैं सनातन धर्म का अनुयायी हूं परन्तु इतने पर भी पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी और भाई इन्द्र विद्यावाचस्पति जी से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। यह मेरा दुर्भाग्य रहा कि गुरुकुल के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी से मेरा इतना घनिष्ठ संबन्ध रहते हुए भी इससे पूर्व मैंने गुरुकुल के दर्शन नहीं किये थे। इस बार गुरुकुल को देख कर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। इस संस्था ने देश के शिक्षा क्षेत्र में एतिहासिक कार्य किया है और यह भी ऐसे समय में जब देश पराधीन था। इस संस्था के संचालकों और अध्यापकों ने जो निःस्वार्थ सेवा की है वह भी इतिहास का एक विषय है। स्वराज्य के पश्चात् यह स्वाभाविक था कि इस संस्था के

संचालक स्वतन्त्र भारत की सरकार से सभी कुछ की आशा करते परन्तु यह खेद की बात है कि इन्हें वैसी सरकारी सहायता प्राप्त नहीं हो सकी जैसी होनी चाहिये थी। मैं यह आशा करता हूं कि काँगड़ी का यह गुरुकुल बोलपुर के शान्ति निकेतन के सदृश ही एक विश्वविद्यालय कानून द्वारा इस संस्था की विशेषताओं की रक्षा करते हुए बना दिया जाय। गुरुकुल कांगड़ी को नया विश्वविद्यालय मानना बड़े से बड़ा शुभ है यह तो युगों से विश्वविद्यालय का कार्य करता आ रहा है। इसके कार्य को केवल स्वीकृति देने का प्रश्न है। मैं आशा करता हूं कि भारत सरकार का शिक्षा मन्त्रालय और यूनीवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन इस सम्बन्ध में तुरन्त अवश्य कार्यवाही करेंगे।

गोविन्ददास

२०।५।५६

मान्य उपकुलपति जी

हमारे मान्य उपकुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति लगभग एक सप्ताह तक ज्वर से पीडित रहे। अस्वस्थता के कारण आजकल आप दिल्ली चले गए हैं। आजकल आपकी वहां पर चिकित्सा चल रही है। भगवान् से उन के शीघ्र पूर्ण स्वास्थ्य लाभ की सब कुलवासी प्रार्थना करते हैं।

श्रद्धानन्द बाल सभा

गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी गुरुकुल श्रद्धानन्द बाल सभा का वार्षिक अधिवेशन ता. १०।५।५६ को बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। कुल परिवार के समस्त बालकों ने इसमें बड़े ही उत्साह से भाग लिया। इस में खेल-कूद, संगीत एवं वाक् प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। अधिकतर इसका श्रेय बाल सभा के उत्साही मन्त्री ब्र० वेदप्रकाश १० म को है।

३. गुजरात के सुप्रसिद्ध लेखक व भारत के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार तथा राज्य सभा के मनोनीत सदस्य श्री काकासाहेब कालेलकर जी २४।५।५६ को गुरुकुल पधारे। महाविद्यालय के छात्र ब्र० महाव्रत १४ वीं तथा ब्र० दिलीप १४ वीं ने आपको हरिद्वार के दर्शनीय स्थानों का परिभ्रमण कराया। आपने परितोष व प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा कि "आज गुरुकुल में घर जैसा आनन्द आया और चन्द नवयुवकों का सत्संग हुआ।"

४. १६।५।५६ को गुरुकुल कांगड़ी के लब्ध-प्रतिष्ठ स्नातक एवं उपाध्याय तथा गुरुकुल सूपा के भूतपूर्व आचार्य श्री पं० केशवदेव जी वेदालङ्कार एम० ए० बी० टी० गुरुकुल पधारे। यकायक शहद की मक्खियों के काट खाने से आपको कष्ट हुआ। तीन दिन तक यहाँ पर चिकित्सा करने के पश्चात् आप स्वस्थ हो गए।

कृषि विद्यालय

आजकल V. L. W. के प्रथम वर्ष की परीक्षाएं चल रही हैं, तथा कृषि के द्वितीय वर्ष के छात्रों को प्रशिक्षण सेवा के लिये नियत स्थानों पर नियुक्त किया जा रहा है।

दान

दिल्ली निवासी श्री पं० ईश्वरदास जी ने गुरुकुल को २५१) रु० का दान दिया है। इस सात्विक दान के लिए गुरुकुल उनको

धन्यवाद देता है ।

डा० धर्मानन्द जी का अभिनन्दन

पाठकों को यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता होगी कि गुरुकुल के लब्ध प्रतिष्ठ स्नातक एवं भारत के सुप्रसिद्ध चिकित्सक श्री डा० धर्मानन्द जी आयुर्वेदालङ्कार, विद्यामार्तण्ड भारत सरकार के स्वास्थ्य मन्त्रालय में आयुर्वेदिक परामर्शदाता नियुक्त हुए हैं । इस सराहनीय उपलब्धि के लिये गुरुकुल वासी उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं । श्री डा. धर्मानन्द जी इससे पूर्व उत्तरप्रदेश सरकार तथा बम्बई राज्य में अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर सुचारु रूप से कार्य करते रहे हैं । उनको योग्यता, कार्य करने की क्षमता और अदम्य उत्साह से आयुर्वेद जगत् को पहले भी बहुत लाभ पहुंचता रहा है । हमें आशा है कि अपने इस नए पद पर कार्य करते हुए वे एक उत्तम मार्गदर्शक सिद्ध होंगे । हम उनके अभ्युदय और मंगल की कामना करते हैं ।

राष्ट्रीय छात्र सेना (एन. सी. सी.)

गत वर्षों को भांति इस वर्ष भी रा. छा. से (एन. सी. सी.) उत्तर प्रदेश 'छठा सरकल' के ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण एवं सामाजिक सेवा शिविर का प्रथम सत्र हवलबाग (अलमोड़ा) में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ । उक्त शिविर में गुरुकुल कांगड़ी के पाश्चात्य दर्शनोपाध्याय सैकेन्ड लैफ्टिनेन्ट हरगोपालसिंह जी की अध्यक्षता में गुरुकुल से १६ और डी. ए. वी. कॉलेज देहरादून से ३२ छात्रों ने भाग लिया । इसमें उत्तर प्रदेश की विभिन्न शिक्षा संस्थाओं से आए हुए कुल १००० छात्र, छात्राओं ने मिलकर आध मील लम्बी सड़क तथा एक विशाल क्रीड़ा का मैदान बनाया । शिविर के छात्रों ने रानीखेत जा कर भारत के प्रतिरक्षा मन्त्री श्री कृष्ण मेनन को 'गार्ड ऑफ आनर' दिया । साथ ही भारत सरकार के सूचना व प्रसार मन्त्री डा० बी० वी० केसकर ने भी उक्त शिविर का निरीक्षण किया ।

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उक्त शिविर में गुरुकुल के छात्रों ने अपनी कार्यक्षमता की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए शिविर की विजयपताका प्राप्त की । उक्त समस्त छात्र साधुवाद के पात्र हैं ।

सर्ववेदशाखा सम्मेलन वाराणसी में आर्य विद्वानों का प्रशंसनीय कार्य

सर्व वेदशाखा सम्मेलन का द्वितीय महाधिवेशन १६ से २३ अप्रैल तक वाराणसी में हुआ जिस में तीनों मठों के शङ्कराचार्य, श्री हरिहरानन्द जी करपात्री तथा देश के कोने-कोने से आमन्त्रित हो कर आये लगभग १९५ वैदिक विद्वान् सम्मिलित हुए । आर्य विद्वानों में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के सुयोग्य स्नातक पं० जनमेजय जी विद्यालङ्कार तथा वेद वाणी के सम्पादक श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने इस सम्मेलन में विशेष सक्रिय भाग लिया । इन्होंने बड़ी तत्परता से विद्वत्ता पूर्वक सब शङ्काओं का समाधान भी किया । प्रतिदिन प्रातः ७ से ११ तक तथा मध्याह्न ३ से ६ बजे तक संस्कृत में शास्त्रार्थ होता था जिस में आर्य समाज के ये दोनों विद्वान् बराबर भाग लेते रहे । इन विद्वानों की प्रतिभा, विद्वत्ता और निष्ठा के कारण ही

दिग्गज पौराणिक विद्वान् लोग भी आर्यसमाज से बहुत प्रभावित हुए। सब कार्यवाही बहुत ही मधुर ढंग से होती रही। हम सुयोग्य स्नातक जनमेजय जी विद्यालङ्कार तथा आर्य जगत् के मान्य विद्वान् गुरुकुलीय वेद सम्मेलन के गत वर्ष के अधिवेशन के अध्यक्ष पं० ब्रह्मदत्त जो जिज्ञासु का इस सम्मेलन में सफलता के लिये हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

ब्र. दिलीप कुमार
२५।५।५६

गुरु-शिष्य के वास्तविक मेल से संसार में शान्ति

'गुरु को पहले अग्नि का रूप धारण करना चाहिये। फिर झूठी दया और प्रेम को त्याग कर उसे केवल तेज का आश्रय लेना चाहिये। शिष्य प्रेम यही है कि उसके अन्दर एक भी मल न रहे उसके दुर्गुणों को नष्ट कर दिया जाए। तब ज्ञान स्वच्छ हो कर ऊपर को उठेगा। (ज्यों-ज्यों शुद्ध ज्ञान ऊपर उठता जाएगा त्यों-त्यों जिज्ञासु शिष्य का हृदय व्याकुल होता जाएगा। वे शिष्य भाग्यवान् हैं जिनके हृदय सच्चे ज्ञान के लिये व्याकुल हो रहे हैं।) जब तक शरीर स्वस्थ न हो तब तक ज्ञानरूपी अमृत को ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त नहीं होती। उस आचार्य की विद्या, उस आचार्य का सदाचार, उत्तम शिष्य मिलने पर ही सफल हो सकता है। जिस समाज में सदाचारी, धर्मात्मा, ज्ञानी आचार्य हों और उन से शिक्षा लेने वाले श्रद्धा सम्पन्न स्वच्छ हृदय शिष्य हों उसी समाज का कल्याण होता है।

—स्वामी श्रद्धानन्द जी 'मुक्ति सोपान' में

देश का निर्माण

चाहे कितनी भी जटिल समस्याएं और बाधाएं हों, देश का निर्माण करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है और यह तभी हो सकता है जब सब देशवासी एकता के सूत्र में आबद्ध होकर अपनी सारी शक्ति देश की मुख्य समस्याओं के हल करने में लगाएं।

भेद-भाव और सांप्रदायिकता, यह दोनों भारत के सबसे बड़े शत्रु हैं। आर्थिक समानता एवं समाजवाद का आदर्श स्थापित करने में ये दोनों बड़े बाधक हैं। जातिभेद के कारण सबको आत्मविकास करने का अवसर नहीं मिला। यह स्थिति अब नहीं रहनी चाहिए और हमें एक होकर राष्ट्र का उत्थान करना चाहिए।

—श्री जवाहरलाल नेहरू

स्वाध्याय के लिये चुनी हुई पुस्तकें

वेद का राष्ट्रीय गीत

श्री पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति

इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने अथर्ववेद के प्रसिद्ध सूक्त की एक एक ऋचा का अन्वय पूर्वक अर्थ किया है। मूल सूक्त की भव्य कविता वाचक को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। इसमें मातृभूमि की गुण गरिमा का गान किया गया है जिसे पढ़ कर मातृभूमि के प्रति श्रद्धा से नत हो जाना पड़ता है। पुस्तक सभी प्रकार से संग्रह करनी चाहिये।

मूल्य केवल पांच रुपये, डाक व्यय अलग।

ईशोपनिषद् भाष्य

श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत पुस्तक में लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् लेखक ने 'ईशोपनिषद्' का बहुत सुन्दर हिन्दी भाष्य लिखा है। इसमें आधुनिक युग के अनुसार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। इस भाष्य का मनन करने से वैयक्तिक, सामाजिक तथा जागतिक तीनों प्रकार की शान्ति सुलभ हो सकती है। ज्ञान पिपासुओं के लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है।

मूल्य केवल दो रुपये, डाक व्यय अलग।

हमारा चुना हुआ साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ईशोपनिषद् भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२.००
वेद का राष्ट्रीय गीत	श्री प्रियव्रत	५.००
ोद्यान के चुने हुए फूल	,, ,,	५.००
वरुण की नौका, २ भाग	,, ,,	६.००
वैदिक विनय ३ भाग,	श्री अभय हर एक	२.००
वैदिक सूक्तियां	श्री रामनाथ	१.७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त	१.५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२.००
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२.००
ब्राह्मण की गौ	,,	.७५
वेदगीतांजलि	श्री वेदव्रत	२.००
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, ३ भाग		३.७५
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२.००
वैदिक पशुयज्ञमीमांसा	श्री विश्वनाथ	१.००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१.२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२.००
लहसुन : प्याज	श्री रामेश बेदी	२.५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	,,	३.००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	,,	३.२५
वेदों का यथार्थ स्वरूप	श्री धर्मदेव वि० मा०	६.५०
वैदिक कर्तव्य शास्त्र	,,	१.५०

पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाइये। धार्मिक संस्थाओं के लिये विशेष रियायत का भी नियम है।

पुस्तक भण्डार, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (जि० सहारनपुर)।

मुद्रक : रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक : धर्मपाल विद्यालंकार, स०मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
सम्पादक : श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड।

गुरुकुल पत्रिका

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सम्पादक — श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

वर्ष ११ फाल्गुन २०१५ अङ्क ७

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक : श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी,
विश्वविद्यालय हरिद्वार

पूर्णाङ्क १२७ ★

फरवरी १९५९

इस अङ्क में

अगले अङ्क में

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य आदि सम्बन्धी रचनाएं

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

मूल्य एक प्रति
३७ नये पैसे (छः आने)

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

वेदामृत गीत

ओ३म् अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥

ऋ. ५ । ६० । ५

शब्दार्थ—

(एते) ये सब मनुष्य (भ्रातरः) भाई हैं (अज्येष्ठासः) इन में जन्म के कारण बड़ा कोई नहीं (अकनिष्ठासः) छोटा भी कोई नहीं । इस भाव को रखने से ही वे (सौभगाय वावृधुः) सौभाग्य प्राप्त करके बढ़ते हैं । (एषाम्) इन सब का (स्वपाः) उत्तम कार्यों वाला (युवा) सदा युवा-शक्ति शाली तथा परमाणुओं को मिलाने व अलग करने वाला यु—मिश्रणा-मिश्रणयोः (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला परमेश्वर (पिता) पिता है (पृश्निः सुदुघा) भूमि, उत्तम दुग्ध देने वाली गाय के समान माता है जो (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (सुदिना) उत्तम दिन वा सौभाग्य देने वाली है—जिसमें रह कर मनुष्य अपने को सौभाग्यशाली बना सकते हैं ।

पद्यानुवाद—

ये मनुष्य सब भाई भाई, छोटा बड़ा न है कोई ।
जो समाज यह भाव रखेगा, उन्नत नित होगा सोई ।
कर्ता, हर्ता वह ही ईश्वर, पिता एक है सब का ।
माता भूमि सदा सुखदात्री, भाव भद्र हो सब का ॥

—"ध्रुव"
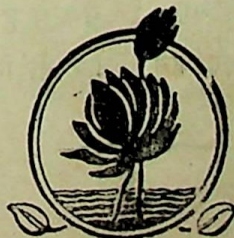
चरित्र-निर्माण

स्वामी कृष्णानन्द जी

जीवन में कभी कोई ऐसी परीक्षा, चिन्ता, निराशा, दु:ख की शिकायत उपस्थित नहीं होती जिसका लाभ के साथ उपयोग न किया जा सके। आप पर अच्छा या बुरा जो भी घटित होता है आपकी अभिवृद्धि और उन्नति का साधन बनता है। यथार्थ उन्नति के लिये नित्य प्रति के जीवन को अनुशासित रखना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रति दिन आरम्भ इस इच्छा और संकल्प के साथ कीजिये कि आज के आपके सारे कार्य विवेकपूर्ण होगें। आपके चारों तरफ़ आपकी प्रसन्नता और सुख के लिये शिव और सुन्दर फैला हुआ है। बस, आपको इससे केवल एकात्मता स्थापित कर सत्य दर्शन करना है। सत्य का दर्शन होते ही अनिर्वचनीय शान्ति और सन्तोष का अनुभव आप करने लगेंगे।

निश्चिन्त रहना सीखिये, कार्य को धीरज से विश्वास पूर्वक कीजिए। अपने में गम्भीरता, सावधानता, इच्छा, विवेचन और आत्म नियन्त्रण का विकास कीजिए। असाधारण शीघ्रता और दबाव से अपने को विलग रखिए। कार्य के बोझ को शरीर से अलग करने के लिये पहिले उसे अपने मस्तिष्क से दूर कीजिए। वस्तुओं को सही दृष्टिकोण से देखना सीखिये। अपने अधिकार और कार्य का सम्मान कीजिए। पर उनकी उपयोगिता और गुरुत्व का मूल्यांकन समुचित से अधिक न कीजिए। यदि आपकी कार्य पद्धति या चरित्र में ऐसी दुर्बलता है जो आपकी उन्नति में रुकावट का काम कर रही है या आपको सफलता से दूर रख रही है तो उस का विश्लेषण कीजिए। उसे आंख खोलकर हिम्मत के साथ देखिये। गलतियों को ठीक करना, दुर्बलता से मुक्ति पाना ही चरित्र निर्माण है।

संसार के सभी महान् व्यक्तियों के पथप्रदर्शक सत्य और कर्तव्य पालन रहे हैं। इन्होंने ही उनके सब अच्छे बुरे दिनों में उनकी सहायता की है। जब लोग यह विश्वास करने लगते हैं कि आपका कहना आपके लिखने के बराबर है और आप कर्तव्य पालन से कभी च्युत न होंगे तो आप समझ लीजिए कि आपने संसार की सबसे बड़ी सम्पत्ति प्राप्त करली है।

सिद्धान्त के दृढ़-व्यक्तियों का ही मूल्य होता है। ईमानदारी कार्य की ही नहीं, विचार की भी होनी चाहिए और ईमानदारी का स्रोत हृदय होना चाहिए।

प्राय: देखने में छोटी बातों का असर बहुत दूरवर्ती होता है। किसी मूर्खता पूर्ण बात का मुंह से निकल जाना, बिना कारण हंस देना, छोटा-सा व्यंग, उठने बैठने का गलत ढंग, अनजाने ही लोगों की दृष्टि में आपको गिरा सकता है। जीवन का निर्माण छोटी छोटी बातों पर ही निर्भर है। ('आरोग्य' से साभार)
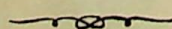
परिवर्तन

कविवर श्री कमल जी साहित्यालंकार, बिजनौर

बदलो रात सुनहले दिन में, बदल चलो इतिहास मरण का ।
मानव तन से और कहां मिलता है अवसर आत्म-वरण का ।। ध्रुव

परिवर्तन जीवन लाता है—जीवन रस से भर जाता है ।
काला सावन उजला फागुन, परिवर्तन ही से आता है ।
ऐसे एक अकाट्य नियम से, चलता है परिवर्तन सारा ।
इससे मुक्त नहीं है कोई, दिन का सूरज रात सितारा ।
दुखियों का जीवन रवि आये, जन मन सर में कमल खिलाये ।
किरण कमल में घुलमिल जाये, प्राणों की पीड़ा मिट जाये ।
घर घर में विज्ञान ज्ञान हो, नया पर्व आनन्द करण का ।।

रुदन न रह जाये नयनों में, मरण बदल जाये जीवन में ।
पतझर का क्या काम मनुज के पौरुष से सिंचित मधुवन में ?
नव यौवन की ललित लालिमा, लहराये जीवन कण-कण में ।
सुख-सुहाग सुषमा मुसकाये, धरती में तरु में पण पण में ।
मूल्यवान हो त्याग जगत में, सदा अमर बलिदान तुम्हारा ।
वीर तुम्हारे जीवनपथ से मधुर बने भवसागर खारा ।
तुमसे पाठ पढ़ें मानव सब, ध्येय नेह के ऐक्य करण का ।।

उठी एक दिन ऊपर गर्दन, नीचे को फिर झुक ना जाये ।
ऊर्ज्स्वित तन मन नयनों में, सावन की बदली ना आये ।
अविकल हो निज ध्येय इष्टकर, जहां बढ़ें पग वहीं पंथ हो ।
सीमा का विस्तार असीमित, रुको जहां पथ वहीं अन्त हो ।
कर्म भूमि फैली दिगंत तक, शैलराट नयनों से ऊपर ।
पर्वत पर पर्वत धर नभ से लाओ रवि शशि तारे भू पर ।

कर्म ज्ञान ही महायान है भव सागर से पार तरण का ।।
बदलो रात सुनहले दिन में, बदल चलो इतिहास मरण का ।।
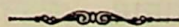
क्रिया और प्रतिक्रिया

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति

अकबर का दीनेइलाही उसके साथ ही समाप्त हो गया परन्तु उसका भारत की राजनीतिक और सांस्कृतिक दशा पर पड़ा हुआ प्रभाव चिर काल तक चलता रहा। इधर हिन्दू भक्तों के समष्टिवादी उपदेश और उधर अकबर की उदार धार्मिक नीति, दोनों ने मिल कर देश में एक ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी, जो पारस्परिक विरोध भावना के प्रतिकूल थी। उसने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के समीप लाने का काम किया। उस सान्निध्य का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि समाज के सभी अंगों में समन्वय और मिश्रण की प्रवृत्ति जागृत हो गई। अकबर स्वयं ब्रजभाषा में कविता करता था, और उसके समय के अनेक अन्य मुसलमान कवियों ने भी हिन्दी में कवितायें की हैं। उधर मुगलकालीन वस्तुकला और चित्रकला में भारतीयता की झलक स्पष्ट है। उस झलक का प्रवेश अकबर के समय से ही हुआ। अकबर के समय में संगीत का प्रमुख आचार्य तानसेन हुआ जिसने दोनों प्रकार के संगीत को न केवल मिश्रित किया, नयी राग रागिनियों की रचना भी की। अकबर स्वयं पढ़ा लिखा नहीं था। तो भी अद्भुत प्रतिभा संम्पन्न होने के कारण समाज के प्रत्येक अंग पर उसका प्रभाव पड़ा। जैसे उसके दरबार में फैजी और अबुलफ़जल के साथ साथ राजा वीरबल, राजा भगवानदास, राजा मानसिंह और राजा टोडरमल समान आसनों पर बैठते थे, उसी प्रकार देश के प्रत्येक भाग में और जीवन के प्रत्येक पहलू में दोनों संस्कृतियां पास पास बैठने लगीं। समीपता बढ़ने के कारण एक दूसरे पर प्रभाव डालना, और प्रभाव लेना आवश्यक हो जाता है और मुगलकाल में वह प्रक्रिया लगभग १०० साल तक जारी रही।

अकबर के पीछे जहांगीर गद्दी पर बैठा। वह अकबर की भांति असाधारण प्रतिभासम्पन्न नहीं था। उसमें किसी नई नीति के बनाने या किसी बनी हुई नीति का परित्याग करने की शक्ति नहीं थी, वह बहुत कुछ अकबर की बनाई लीक पर ही चलता रहा। वह स्वयं राजपूतनी का लडका था। कट्टर मुसलमान होते हुए भी उसमें मतान्धता नहीं थी। उसके समय में भी संस्कृतियों के मिश्रण की प्रक्रिया जारी रही। उस समय वह क्रिया अकबर काल की तरह इच्छापूर्वक या यत्नपूर्वक नहीं चल रही थी। जैसे घड़ी का पैन्डुलम एक बार हिलाया जाकर स्वाभाविक गति से तब तक चलता रहता है, जब तक उसे हाथ से न रोक दिया जाय, या स्प्रिंग को दी गई शक्ति न नष्ट हो जाय, उसी प्रकार समाज में सांस्कृतिक शिक्षण की जो प्रवृत्ति उत्पन्न हुई, वह जहांगीर और उसके पुत्र शाहजहां के समय में भी पूर्व प्रदत्त शक्ति के प्रभाव से अनायास चलती रही। शाहजहां में जहांगीर की अपेक्षा कट्टरपन अधिक था। उसने कई अवसरों पर हिन्दुओं के मन्दिरों और मूर्तियों को तुड़वाया। बनारस के जिले में उसकी

[illegible] उसका हृदय अत्यधिक संकीर्ण न हो, अथवा विलासिता की ओर झुका रहने के कारण वह योजनापूर्वक भारी दमन करने का सामर्थ्य ही न रखता हो। कुछ भी हो, उसके समय में भी हिन्दुओं और मुसलमानों के सामीप्य की प्रवृत्ति जारी रही, उसमें कोई विशेष रुकावट नहीं आई।

औरङ्गजेब १६५८ ई. में दिल्ली के तख्त पर बैठा। वह सब भाइयों को समाप्त करके, पिता को कैद कर चुका था। वह समय मुगल साम्राज्य के जीवन में पूरे यौवन का था, देश में बहुत कुछ शान्ति थी और समृद्धि थी। राजकोष भरा हुआ था और प्रजा भी बहुत कुछ निर्भयता से अपने कारोबार में लगी हुई थी। यों राजधर्म तो इस्लाम ही था, परन्तु सल्तनत के हिन्दू निवासियों पर समूह रूप से अत्याचार नहीं होते थे। फलतः हिन्दू संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति के मिश्रण से धीरे धीरे एक मिश्रित संस्कृति जिसे हम हिन्दुस्तानी संस्कृति या उर्दू संस्कृति कह सकते हैं घड़ी जा रही थी। मुसलमान हिन्दी पढ़ने और बोलने लगे थे और हिन्दू फारसी का अध्ययन करते थे। भक्तों और औलिया लोगों के चारों ओर हिन्दू भक्त और मुसलमान पैरो इकट्ठे होकर एकसी विचार-धाराओं में स्नान करते थे। सरकारी नौकरियों में और सेनाओं में दोनों धर्मों के अनुयायी मिलते जुलते और एक दूसरे से प्रभावित होते थे। इस प्रकार अकबर की उदार नीति के फलस्वरूप एक मिश्रित संस्कृति का आविर्भाव हो रहा था।

यहां एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है। जब और जहां विजेता जाति अपने उदार व्यवहार द्वारा विजित जाति के दिल से अपने प्रति घृणा या द्वेष के भावों को दूर कर देती है या शिथिल कर देती है, तब और वहां राजनीतिक दासता की कटुता नष्ट होने लगती है और विजित जाति भेदभाव को भुलाकर शासकों को अपनाने लगती है। अकबर और उसके दो उत्तराधिकारियों के समय में यही हुआ। सांस्कृतिक संघर्ष के कम हो जाने से राजनीतिक संघर्ष भी हलके हो गये। फलतः इन तीन मुगल बादशाहों के राज्यकाल को भारत पर मुस्लिम प्रभुत्व का मध्याह्न काल कह सकते हैं।

औरङ्गजेब के राज्यारोहण के साथ परिस्थिति में परिवर्तन होना आरम्भ हुआ। औरङ्गजेब का बड़ा भाई दाराशिकोह धार्मिक विचारों की दृष्टि से अकबर का उत्तराधिकारी बनने के योग्य था। अकबर ने अथर्ववेद, महाभारत के कुछ भाग और लीलावती का अनुवाद फारसी में करवाया था। दाराशिकोह का

क्रिया और प्र

श्री पं० इन्द्र जी विद्य

अकबर का दीनेइलाही उसके साथ ही समाप्त हो गया परन्तु उसका भारत की राजनीतिक और सांस्कृतिक दशा पर पड़ा हुआ प्रभाव चिर काल तक चलता रहा। इधर हिन्दू भक्तों के समष्टिवादी उपदेश और उधर अकबर की उदार धार्मिक नीति, दोनों ने मिल कर देश में एक ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी, जो पारस्परिक विरोध भावना के प्रतिकूल थी। उसने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के समीप लाने का काम किया। उस सान्निध्य का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि समाज के सभी अंगों में समन्वय और मिश्रण की प्रवृत्ति जागृत हो गई। अकबर स्वयं ब्रजभाषा में कविता करता था, और उसके समय के अनेक अन्य मुसलमान कवियों ने भी हिन्दी में कवितायें की हैं। उधर मुगलकालीन वस्तुकला और चित्रकला में भारतीयता की झलक स्पष्ट है। उस झलक का प्रवेश अकबर के समय से ही हुआ। अकबर के समय में संगीत का प्रमुख आचार्य तानसेन हुआ जिसने दोनों प्रकार के संगीत को न केवल मिश्रित किया, नयी राग रागिनियों की रचना भी की। अकबर स्वयं पढ़ा लिखा नहीं था। तो भी अद्भुत प्रतिभा संम्पन्न होने के कारण समाज के प्रत्येक अंग पर उसका प्रभाव पड़ा। जैसे उसके दरबार में फैजी और अबुलफ़ज़ल के साथ साथ राजा वीरबल, राजा भगवानदास, राजा मानसिंह और राजा टोडरमल समान आसनों पर बैठते थे, उसी प्रकार देश के प्रत्येक

भा

संर

के

प्रभा

काल

जार

अकबर की भांति असाधारण प्रतिभासम्पन्न नहीं था। उसमें किसी नई नीति के बनाने या किसी बनी हुई नीति का परित्याग करने की शक्ति नहीं थी, वह बहुत कुछ अकबर की बनाई लीक पर ही चलता रहा। वह स्वयं राजपूतनी का लडका था। कट्टर मुसलमान होते हुए भी उसमें मतान्धता नहीं थी। उसके समय में भी संस्कृतियों के मिश्रण की प्रक्रिया जारी रही। उस समय वह क्रिया अकबर काल की तरह इच्छापूर्वक या यत्नपूर्वक नहीं चल रही थी। जैसे घड़ी का पैन्डुलम एक बार हिलाया जाकर स्वाभाविक गति से तब तक चलता रहता हैं, जब तक उसे हाथ से न रोक दिया जाय, था स्प्रिंग को दी गई शक्ति न नष्ट हो जाय, उसी प्रकार समाज में सांस्कृतिक शिक्षण की जो प्रवृत्ति उत्पन्न हुई, वह जहांगीर और उसके पुत्र शाहजहां के समय में भी पूर्व प्रदत्त शक्ति के प्रभाव से अनायास चलती रही। शाहजहां में जहांगीर की अपेक्षा कट्टरपन अधिक था। उसने कई अवसरों पर हिन्दुओं के मन्दिरों और मूर्तियों को तुड़वाया। बनारस के जिले में उसकी

आज्ञा से ७६ मन्दिर नष्ट किये गये। ओरछा का विशाल मन्दिर भी उसके आदेश से ही तोड़ा गया। उसने यह आदेश भी प्रचारित किया था कि कोई हिन्दू मुसलमान स्त्री से विवाह न कर सके, यदि कोई हिन्दू मुसलमान स्त्री को अपने पास रखना चाहे तो उसे मुसलमान हो जाना चाहिए, अथवा स्त्री छीन ली जायगी। यह कुछ होते हुए भी, शाहजहां ने अपने राज्य-काल में सामान्य रूप से हिन्दुओं पर अत्याचार नहीं किये। इसके दोनों कारण हो सकते हैं। संभव है, उसका हृदय अत्यधिक संकीर्ण न हो, अथवा विलासिता की ओर झुका रहने के कारण वह योजनापूर्वक भारी दमन करने का सामर्थ्य ही न रखता हो। कुछ भी हो, उसके समय में भी हिन्दुओं और मुसलमानों के सामीप्य की प्रवृत्ति जारी रही, उसमें कोई विशेष रुकावट नहीं आई।

औरङ्गजेब १६५८ ई. में दिल्ली के तख्त पर बैठा। वह सब भाइयों को समाप्त करके, पिता को कैद कर चुका था। वह समय मुगल साम्राज्य के जीवन में पूरे यौवन का था, देश में बहुत कुछ शान्ति थी और समृद्धि थी। राजकोष भरा हुआ था और प्रजा भी बहुत कुछ निर्भयता से अपने कारोबार में लगी हुई थी। यों राजधर्म तो इस्लाम ही था, परन्तु सल्तनत के हिन्दू निवासियों पर समूह रूप से अत्याचार नहीं होते थे। फलतः हिन्दू संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति के मिश्रण से धीरे धीरे एक मिश्रित संस्कृति जिसे हम हिन्दुस्तानी संस्कृति या उर्दू संस्कृति कह सकते हैं घड़ी जा रही थी। मुसलमान हिन्दी पढ़ने और बोलने लगे थे और हिन्दू फारसी का अध्ययन करते थे। भक्तों और औलिया लोगों के चारों ओर हिन्दू भक्त और मुसलमान पैरो इकट्ठे होकर एकसी विचार-धाराओं में स्नान करते थे। सरकारी नौकरियों में और सेनाओं में दोनों धर्मों के अनुयायी मिलते जुलते और एक दूसरे से प्रभावित होते थे। इस प्रकार अकबर की उदार नीति के फलस्वरूप एक मिश्रित संस्कृति का आविर्भाव हो रहा था।

यहां एक बात पर ध्यान देना आवश्यक है। जब और जहां विजेता जाति अपने उदार व्यवहार द्वारा विजित जाति के दिल से अपने प्रति घृणा या द्वेष के भावों को दूर कर देती है या शिथिल कर देती है, तब और वहां राज-नीतिक दासता की कटुता नष्ट होने लगती है और विजित जाति भेदभाव को भुलाकर शासकों को अपनाने लगती है। अकबर और उसके दो उत्तराधिकारियों के समय में यही हुआ। सांस्कृतिक संघर्ष के कम हो जाने से राजनीतिक संघर्ष भी हलके हो गये। फलतः इन तीन मुगल बादशाहों के राज्यकाल को भारत पर मुस्लिम प्रभुत्व का मध्याह्न काल कह सकते हैं।

औरङ्गजेब के राज्यारोहण के साथ परि-स्थिति में परिवर्तन होना आरम्भ हुआ। औरङ्गजेब का बड़ा भाई दाराशिकोह धार्मिक विचारों की दृष्टि से अकबर का उत्तराधिकारी बनने के योग्य था। अकबर ने अथर्ववेद, महा-भारत के कुछ भाग और लीलावती का अनुवाद फारसी में करवाया था। दाराशिकोह का

संस्कृत भाषा और हिन्दू तत्वज्ञान से प्रेम और भी अधिक गहरा था। उसने उपनिषद्, भगवद्गीता और योगवासिष्ठ का अनुवाद करवाया और हिन्दू धर्म के ग्रन्थों के सम्बन्ध में स्वयं भी एक ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया। यदि शाहजहां के पश्चात् दाराशिकोह राजगद्दी पर बैठता तो भारत के इतिहास का रूप दूसरा ही होता, परन्तु दारा शिकोह अकबर की तरह उदार हृदय रखता हुआ भी उसकी तरह दूरदर्शी और वीर नहीं था। समय आने पर भी वह औरंगजेब की रोकथाम न कर सका। दारा शिकोह के पराजय, और औरंगजेब की सफलता ने भारत के भावी इतिहास की धारा को ही बदल दिया।

औरंगज़ेब बचपन से ही अनुदार और कट्टर व्यक्ति था। संकीर्ण हृदय मुल्लाओं के संग ने उस पर और भी गहरा रंग चढ़ा दिया। जब शाहजहां की निर्बलता के कारण उसके पुत्रों में गद्दी के लिए संघर्ष आरम्भ हुआ, तो राजनीतिक आवश्यकता ने औरंगजेब के कट्टरपन को मतान्धता के रूप में परिणत कर दिया, क्योंकि दारा शिकोह के विरुद्ध उसके पास सबसे प्रबल युक्ति यही थी कि वह काफ़िरों का पक्षपाती है। दारा का संस्कृत प्रेम, मुसलमान मौलवियों और उनके अनुयायियों की दृष्टि से घोर अपराध बन गया, जिससे प्रभावित होकर अधिकांश मुसलमान सिपाही और उनके मुखिया, औरंगजेब के समर्थक बन गये। इस प्रकार राजनीतिक परिस्थितियों ने औरंगजेब के कट्टरपन को दस गुना करके भयंकर मतान्धता के रूप में परिणत कर दिया।

औरंगजेब ने अपने लम्बे शासनकाल में जिस हिन्दू विरोधिनी नीति से कार्य किया, उसका मुग़लवंश के भविष्य पर तो गहरा असर पड़ा ही, भारत के इतिहास की धारा की दिशा परिवर्तन में भी पर्याप्त सहायता मिली। औरंगजेब ने हिन्दुओं के दलन की दृष्टि से जो जो कार्य किये, उन सबका विस्तृत वर्णन करने के लिये न इस लेखमाला में स्थान है और न आवश्यकता है। संक्षेप में इतना ही लिखना पर्याप्त है कि राज्य के प्रारम्भकाल से ही उसने अकबर की धार्मिक उदारता की नीति को परित्याग करके हिन्दुओं का दमन आरम्भ कर दिया था। उसका सबसे अधिक अदूरदर्शिता पूर्ण कार्य जजिया कर का फिर से विनियोग था। अकबर ने जजिया कर को हटा कर देश में की बहुसंख्यक प्रजा के हृदयों को जीत लिया था। औरंगजेब ने उसे फिर से लगा कर प्रजा को बेचैन और असन्तुष्ट कर दिया। जब राजधानी के बहुत से हिन्दू इकट्ठे होकर बादशाह के सामने अपनी फ़र्याद करने के लिये एकत्र हुए, तब बादशाह ने अपने महावत को हुक्म दिया कि उनके शिरों पर से हाथी को गुज़ार दे। इस प्रकार हिन्दुओं के हृदयों का दमन करके औरंगजेब ने अपनी सल्तनत को दृढ़ करने की चेष्टा की। परिणाम उल्टा ही निकला, ऐसे दमन से शासन की दृढ़ता तो क्या होनी थी, मुग़ल साम्राज्य के सबसे दृढ़ स्तम्भ राजपूत अत्यन्त रुष्ट हो गये। और साम्राज्य के अन्य भागों में भी विद्रोह की भावना जागृत हो गई।

औरंगज़ेब के हिन्दू विरोधी कारनामों की सूची बहुत लम्बी है। मंदिर तोड़े गये, हिन्दुओं को जबर्दस्ती डरा धमका कर मुसलमान बनाया गया, और बड़े विश्वास सम्पन्न राजपूत राजाओं को अपमानित किया गया। ये तो उस नीति के दृश्यमान फल थे, जिसका व्यापक रूप औरंगजेब के शासन का कट्टर सुन्नीपन था। वह सुन्नीपन केवल हिन्दुओं तक ही परिमित नहीं रहा। उसका हिन्दुओं के दायरे से बाहर भी प्रभाव पड़ता रहा। शिया मुसलमान औरंगजेब के राज्य में तिरस्कार के योग्य समझे जाते थे। बादशाह का इस्लामी जोश यहां तक बढ़ा कि उसने राजधानी में संगीत की भी मनाही कर दी।

जो शासक केवल दमन द्वारा प्रजा के असन्तोष को दूर करने का यत्न करता है, वह बड़े संकट में पड़ जाता है। यदि दमन के शिकंजे को कम करता है तो असन्तोष के बढ़ने की आशंका हो जाती है, और यदि दमन को जारी रखता है तो विद्रोह का खड़ा होना अवश्यंभावी हो जाता है। फलतः दमनकारी शासक मानो भाग्य की रस्सी से बंधा हुआ नाश की खाई की ओर खिंचा चला जाता है। वह जितना ही अधिक दमन करता है, असन्तोष उतना ही उग्र रूप धारण करता है जिसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि उसके राज्य की जड़ें हिल जाती हैं।

औरंगजेब की संकीर्ण नीति ने अकबर के लिखे हुए उज्वल अक्षरों पर मानो हड़ताल फेर दी। उसके शासन के लगभग ५० वर्षों में भारतीय संस्कृति का वह मिश्रित रूप, जो अकबर की उदार नीति के प्रभाव से जन्म ले रहा था, बहुत कुछ लुप्त हो गया। हर दिशा में विक्षोभ और उससे उत्पन्न होने वाली तबाही के दृश्य दिखाई देने लगे। हिन्दी साहित्य की प्रगति तो रुक ही गई, फ़ारसी का साहित्य निर्माण भी अवरुद्ध हो गया। जो थोड़ी बहुत बड़ी इमारतें बनीं, उनमें से हिन्दूपन के चिन्ह यत्नपूर्वक निकाल दिये गये। संगीत का गला तो घोंट ही दिया गया। हम यह कहें तो अनुचित न होगा कि औरंगजेब के राज्यकाल में न केवल हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के मिश्रण का कार्य बन्द हो गया, सामान्य रूप से संस्कृति का प्रवाह ही रुक गया। औरंगजेब ने अपनी संकीर्ण धर्मनीति की बलिवेदी पर दोनों संस्कृतियों को बलिदान कर दिया।

आत्मशुद्धि

सर्वव्यापक सत्यनारायण के दर्शन के लिये जीव मात्र के प्रति प्रेम की परम आवश्यकता है। बिना आत्मशुद्धि के जीव मात्र के साथ ऐक्य बन ही नहीं सकता। आत्मशुद्धि के बिना अहिंसा धर्म का पालन सर्वथा असम्भव है। अशुद्ध आत्मा परमात्मा का दर्शन करने में असमर्थ हैं। —महात्मा गान्धी

दयानन्दपंचकम्

श्रीमान् पं० इन्द्रो विद्यावाचस्पतिः

(१)

परित्यज्यामोदान्, विषयरसजानन्नविषयान्
ऋतावाप्त्यै गङ्गागिरिवनमठेषु प्रतिचरन् ।
दयाम्भोधिर्धीमान्, भगवदमरानन्दनिरतो
दयानन्दः स्वामी, निगमपथगामी विजयते ॥

(२)

वयोविद्यावृद्धैर्वरतरजनैः पूजितपदः
कुलीने राजन्ये, कुलगुरुपद योऽधिगतवान् ।
व दान्यैर्वित्ताढ्यैः, शिरसि विहितं यस्य वचनं
दयानन्दो नेता, स खलदलजेता विजयते ॥

(३)

विभेत्ता वज्राभः, कुटिलधिषणाशैल शिरसाम्
मदोन्मत्तान् नागानिव कुविदुषो यो व्यशमयत् ।
स शत्रुर्घोराणां भ्रमभरकृतां रूढिरजसां
दयानन्दो वीरो जलधिजलधीरो विजयते ॥

(४)

रिपुर्दुर्धर्षाणां, जनमतिहराबोधतमसां
सुधीनां सन्मित्रं, परमशमदः शान्तमनसाम् ।
विकासं यश्चक्रे, सुकृतिकमलानामविकलम्
दयानन्दादित्यः समधिगतसत्यो विजयते ॥

(५)

सुधासारस्निग्धं, सखिरिपुजनेभ्योऽक्षियुगलं
ललाटं यस्यासीदतुलधिषणाभासिततमम् ।
दृढ़ः सौम्यो देहो यमनियमयोगैर्नियमितो
दयानन्दो दान्तः, सकलगुणकान्तो विजयते ॥

निर्भीक साहसी स्वामी श्रद्धानन्द जी

स्वामी श्रद्धानन्द जी में निर्भीकतापूर्ण साहस आश्चर्यजनक मात्रा में विद्यमान् था। वृद्धावस्था में भी उनकी उन्नत सीधी आकृति तथा संन्यासी वेश में उच्च भव्यमूर्ति, लम्बा कद, शाहानी शकल, चमकती हुई अन्तर्भेदिनी आंखें और कभी कभी दूसरों की निर्बलताओं पर मुख पर आ जाने वाली झुंझलाहट की झलक, इस सजीव मूर्ति को मैं कैसे भूल सकता हूं ? प्रायः यह तसवीर मेरी आंखों के सामने आ जाती है ।

—श्री जवाहरलाल नेहरू

पिछले अंक का शेष—

समस्त भारत को पश्चिमी बंगाल की चिन्ता करनी चाहिये

(२)

श्री पं० आत्मानन्द जी विद्यालङ्कार, नई देहली

लेख का कलेवर बढ़ जाने के भय से हम स्थान स्थान पर श्रेष्ठ पुरुषों और देवियों का नाम-संकीर्तन नहीं कर रहे। बंगाल के वकील वैद्य, डाक्टर, होमियोपैथ, प्रोफेसर,वाग्मी और रसायन औषधियां-बंगाल की प्रत्यक्षसम्पत्ति हैं। इस दिशा में यदि बंगवासी योजना पूर्वक कार्य करें तो उन्हें समस्त भारतवर्ष में प्रभूत सफलता यश, मान, धन और स्थिरता मिले। पंजाबी सिक्ख, हिन्दू, सिन्धी, मारवाड़ी, अंग्रेज, गुजराती और चीनी अपने गुणों, कार्यों को योजना पूर्वक संघशक्ति से फैलाते हैं और अनेक प्रकार के सुख पाते हैं। बंगाल की शान्त और शुभ सम्पत्ति-रामकृष्ण मिशन भारत और भारत से बाहर सूदूर अमेरिका तक अपने उच्च, पवित्र शान्त, मौन और घने कार्यद्वारा बंगाल और भारत का मुख उज्ज्वल कर रहा है। बंगीय कवि पंडितमण्डली का काव्य,कलालालित्य और दर्शन का पाण्डित्य,भारत भर में प्रसिद्ध है। बंगीय कण्ठ की मधुरता किसे मुग्ध नहीं करती ? चित्रपट और नाटक के क्षेत्र में भी बंगवासी किसी से पीछे नहीं। कलकत्ता-विश्वविद्यालय चिरकाल से उच्चविद्या के लिये प्रसिद्ध रहा है और यह सचाई है कि सर आशुतोष मुखोपाध्याय विद्वानों के संग्रह में बड़े पटु थे। बंगाल के व्यक्तियों ने ही नहीं, अपितु कुलों और सभाओं ने भी नाना विद्याओं, कलाओं, परम्पराओं की निष्ठापूर्वक रक्षा की है। यदि ब्रिटिश, मारवाड़ी, गुजराती, पंजाबी, सिक्ख, चीनी, पूर्विया, बिहारी, सैकडों हजारों मीलों से आकर कलकत्ता में बस सकते हैं, समृद्ध हो सकते हैं, संघटन बना सकते हैं, अपने विद्यालय और धर्म स्थान बना सकते हैं, करोडों रुपया अपने सुदूरस्थित घरों में भेज सकते हैं, जीवन संघर्ष में सफल हो सकते हैं और उनका नारी वर्ग निर्भय होकर पर-देश में रह कर घरों में आ जा सकता है, तो बंगवासी भी अपनी अद्भुत गुण राशि के बलपर देशदेशान्तरों में जाकर सब प्रकार के सुखों को पा सकते हैं। उनकी यह सम्पत्ति भी समस्त भारत की सम्पत्ति है। धन्य है बंग जाति, जिसने सदियों की विपत्ति नदी को पार करके भी आज तक अपनी गुणराशि को सुरक्षित रखा है ऐसी वीर जाति की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

अब देखना चाहिये कि ऐसी तेजस्विनी, ओजस्विनी, और बुद्धिमती जाति की गुण वृद्धि और सुखवृद्धि में, और चिन्ताहरण और संकट हरण में केन्द्रीय सरकार और शेष भारतीय जनता क्या करे ?

केन्द्रीय शासन और भारतीय जनता—दोनों को ही इस विषम काल में जागरूक रहकर पश्चिमी बंगाल की चिन्ता करनी है। पश्चिमी बंगाल की समस्याएं दिन प्रतिदिन बढ़ेंगी और पेचीदा होती जाएंगी इसलिये केन्द्रीय सरकार को इसके लिये पृथक् मन्त्री और पृथक् मन्त्रालय बनाना चाहिये। मन्त्री-मण्डल की एक स्थिर उपसमिति इस कार्य में विशेष ध्यान दे। ऐसे समय ढीले ढाले सिविलयन, मन्त्रियों और

गवर्नरों के स्थान पर जनरल करिअप्पा और जनरल राजेन्द्रसिंह जैसे सेनापतियों को यह काम सौंपना चाहिये । इन सेनापतियों का अनुभव,अनुशासन, नियमित जीवन, सन्तुलन, प्रताप और प्रबन्ध कुशलता राष्ट्र के विषम काल में भी यदि काम न आयगी तो उन के गुणों में जंगार लग जायगा । हां, बंगवासियों को स्वयं अनुशासन में रहकर इन से पूरा सहयोग करना होगा । स्कूलों, कालिजों, पाठशालाओं में बच्चों के लिये दूध, फल, व्यायाम, सैनिकशिक्षण, अनिवार्य हो । बंगदेश के बालक और बालिकाओं में उत्तम शरीर, स्वास्थ्य, स्फूर्ति, रूप यौवन, लावण्य, बल, खेलें, सहयोग आदि में स्पर्धा उत्पन्न की जावे । जिससे समूची जाति में एक दम जागृति और उत्साह आ जावे। सहोद्योग की भावना छोटे छोटे बच्चों से लेकर बड़ों तक उत्पन्न की जावे जिससे वे बड़ी बड़ी कम्पनियां, सहयोग समितियाँ बनाकर दूसरे वर्गों के मुकाबले में अपने बैंकों, मिलों, इंश्यूरेंस कम्पनियों, और कारखानों को सफलता पूर्वक चला सकें । इधर प्रदेशों में जहां बंगवासी बसाये जा सकते हैं इनके छोटे छोटे उपनगर बसा दिये जावें जहाँ ये अपनी संस्कृति की रक्षा करते हुए भी उस उपप्रदेश के लोगों में घुलमिल जावें । बंगाली छात्र छात्राएं रियायती टिकट पर भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में भ्रमण करें जिससे वे दूसरे प्रदेशों के गुणों को सीखें और समय आने पर उन उन प्रदेशों में बस भी सकें । प्रति पांचवें वर्ष किसी आयोग (कमीशन) द्वारा जारी स्थिति की पुनः परीक्षा हो जिससे अवस्था आगे आगे सुधरती जावे और बिगड़ने न पावे।

जनता को भी उपकार और सेवा के क्षेत्रों में काम कर रही संस्थाओं–रामकृष्ण मिशन, मारवाड़ी सेवा समिति, ब्रह्म समाज,आर्यसमाज, हिन्दू महासभा, साधु समाज, भारत सेवक समाज, सर्वेन्टस् आफ इण्डिया सोसाइटी, और स्त्री समाजों द्वारा बंगवासिनी जनता के हृदय में घुसकर धैर्य और योजना पूर्वक उनका संकट हरण करना चाहिये । युद्ध काल में जैसे राष्ट्र एक चित्त होकर शत्रु का मुकाबला करते हैं ऐसे ही युद्ध से भी भयङ्कर बंगाल की इस विपत्ति के समय केन्द्रीय सरकार, बंगसरकार और इधर जनता, संकटहरण और दुःखमोचन के लिये कटिबद्ध हो जावें ।

सब देश की आन्तर दशा, पाकिस्तान का ईर्ष्या द्वेष, एशिया की उथल पुथल और भूमण्डल की अन्तर-राष्ट्रीय स्थिति भी हमें जागरूक रहने और इस समस्या को जल्दी दूर करने के लिये बाधित करती है। माना स्वदेश के अन्दर जागृति, उत्साह, प्रगति और पञ्चवर्षीय योजना की सफलता विद्यमान है पर उसके साथ राष्ट्रीय चरित्र का पतन, स्वार्थ, अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, चोर डाकुओं और रसातल जगत् के कुकर्म,अनेक अधिकार च्युत लोगों का असन्तोष भी विद्यमान है। पाकिस्तान के जासूस भी भारत में कलह क्लेश के बढ़ाने में तत्पर रहते हैं। पिछले दस वर्षों में पाकिस्तान खटमलों की तरह न स्वयं सुख की नींद सोया है, न भारत को सुख की नींद सोने देता है । बंगाल का सदियों का

इतिहास, उसकी परम्परा से आये गुण-दोष भारत की आन्तर स्थिति, और अन्तर राष्ट्रीय स्थिति, विभाजन की समस्याएं और ४० लाख लोगों का पूर्वी बंगाल से पश्चिमी बंगाल में आना, बाकी ८० लाख का आने को तैयार रहना—ये सब मिल कर भारतवर्ष को सावधान करते हैं और चेतावनी देते हैं कि समस्त भारतवर्ष बंगाल की विपत्ति को समझे, उसे अपनी विपत्ति समझे और हम विपत्ति के दूर करने में जल्दी से जल्दी प्रयत्न कर। कहीं ऐसा न हो कि बंगाल की यह विपत्ति की आंधी नवभारत की फलती फूलती फुलवाड़ी को तहस नहस कर दे।

अमर ज्योति, महर्षि दयानन्द

अन्धकार में प्रकाश रेखा

श्री बाबूराम जी प्रधान आर्य समाज, लुधियाना

संवत् १८९४ की शिवरात्रि पर टंकारा के कुछ मील दूर एक शिव मन्दिर में भक्त मंडली शिव पूजन के लिए एकत्र हुई, श्री कर्शन जी तिवाडी के साथ मूल जी भी गये आज उनका उपवास दिवस था। रात्रि के पिछले पहर व्रत रखने वाले भक्त निद्रा देवी की लोरियां लेते लेते सो गये, किन्तु दिव्य ज्योति पाए हुए दृढ़संकल्प "मूल" जी को नींद कहां ?

सारा संसारा सोता था मगर संसार को जगाने वाला जागता था—

जासु निशा सोवत संसारी,
तो जागे योगी ब्रह्मचारी ॥१॥
मूलशंकर प्रभु प्रेरित जागा,
इस जाग से जग भ्रम भागा, ॥२॥

तब पथदर्शक की पथदर्शक एक घटना घटी, इसे घटना कहिये या ईश्वरी प्रेरणा, जो कुछ भी हुआ, हुआ एक चमत्कार। मूल जी ने देखा कि कुछ 'गणपति वाहन' शिवपिंडी पर चढ़े उछलते कूदते, नृत्य करते, भक्तों द्वारा चढ़ाए चढ़ावे का भोग लगा रहे हैं, यह दृश्य देखकर मूल जी चौंक पड़े। "हैं बड़े बड़े दैत्यों को मारने वाले त्रिशूलधारी कैलाशपति शिव का यह अपमान ? यह सोचते सोचते मन में विचारों के बीज का वृक्ष बनने लगा, वे उठे और अपने पिता जी को जगाकर शंकाओं का समाधान चाहा। झिड़कियों से समाधान का प्रयत्न किया गया, मगर जगी हुई आत्मा को भय और झिड़कियाँ अब कैसे चुप करा सकती थीं ?

मूल जी को स्वयम् सदा शिव के दर्शन हो चुके थे। यह घटना न होती तो मूल जी दयानन्द बनकर अजर, अमर, अविनाशी के दर्शन न करवा सकते, फिर क्या होता ? न मैं, मैं होता, न आप, आप।

आर्यसमाज का आदर्श संविधान

(सार्वभौम पांच सिद्धान्त)

(दिव्य यहां कार्य है, दिव्य निमित्त हम सब)

(१) हेतु हमारा दिव्य—विश्व को सुखी हमें बनाना है।

(२) लक्ष्य हमारा दिव्य—विश्व को श्रेष्ठ-आर्य हमें बनाना है।

(३) साधन हमारा दिव्य—विश्व-धर्म-संस्कृति का चक्र हमें चलाना है।

विश्व-धर्म हमें अपनाना है।

विश्व-धर्म हमें बनाना है।

विश्व संस्कृति अपनानी है।

विश्व संस्कृति हमें बनानी है।

(४) कार्य हमारा दिव्य-क्षत्र-क्षेत्र के युग-व्यक्ति हमें बनाने हैं।

(काल व्यक्ति=आदर्श व्यक्ति)

क्षेत्र-क्षेत्र को युग क्षेत्र हमें बनाना है।

(काल क्षेत्र=आदर्श क्षेत्र)

पर प्यारे मेरे

(५) शर्त हमारी दिव्य-विश्व संस्थायें सच्ची हमें बनानी है।

मैंने इन पांच सिद्धान्तों को सार्वभौम कहा है क्योंकि ये आर्यसमाज के ही नहीं अपितु इसी तरह के किसी भी सांस्कृतिक, धार्मिक नैतिक, शैक्षणिक, सामाजिक एवं राजनैतिक संगठन के हो सकते हैं जो सारे संसार को या विश्व को या अपने ही को सुखी बनाने का दावा करते हैं या अपना लक्ष्य समझते हैं।

मेरा जन्म आर्य समाजिक परिवार में हुआ उस ही में पला, उस ही की शिक्षा संस्था गुरुकुल कांगड़ी में विद्या-मधु का पान करने का सौभाग्य मुझे मिला। उस बुद्धिवादी सर्व हितैषी संगठन एवं उसके लक्ष्य को सफल बना सकने वाली उसकी शिक्षा संस्थाओं की सर्वविध उन्नति एवं विकास के लिये उस पर विचार करना हमारा पवित्र कर्तव्य है और इसीलिये मौलिक अधिकार है। इसी कारण—

मैं मथुरा में अभी होने वाले आर्य-मित्र के हीरक जयन्ती समारोह के शुभ अवसर पर आर्यसमाज के कर्णधारों को, आर्य जनता को उपर्युक्त संविधान आदर और प्रेम से भेंटकर रहा हूं। विश्वास करता हूं वे स्वीकार करेंगे और समुचित विचार करने का अनुग्रह करेंगे। यह भविष्य के लिये एक प्रकार का क्रियात्मक प्रोग्राम है। धन्यवाद पूर्वक,

सबका विनीत

सत्यव्रत 'कुशल' विद्यालङ्कार, एम० ए०, डी० एन.एस-सी. पुस्तकालयाध्यक्ष बी.एस.ए., डिग्री कालेज मथुरा (उ०प्र०)।
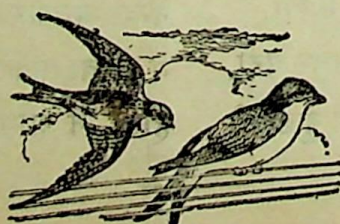
शिक्षा की ऊष्मा बनी रहे

आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री एम. ए., पंचवटी नासिक

शिक्षा का सम्बन्ध आत्मजागृति से है। संस्कृत में 'आत्मा' शब्द साधारणतया मन, शरीर और आत्मा तीनों के लिए प्रयुक्त होता है। यही हाल पुरुष शब्द का भी है। वह जहां आत्मा के लिये प्रयुक्त होता है वहां सप्त धातुओं के लिए भी प्रयुक्त होता है परन्तु आत्मा और पुरुष की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह शरीर की ऊष्मा को कायम रखने का प्रयत्न करता है। आत्मा का नाम आत्मा इस लिए है कि वह निरन्तर गति एवं स्फूर्ति देकर ऊष्मा को जागृत रखता है। पुरुष शब्द इस कारण से आत्मा के लिए प्रयुक्त होता है कि वह आती हुई ऊष्मा की कमी को पूरा रखने एवं मानदण्ड में रखने का प्रयत्न करता है। लोक में लोग कहते हैं कि कलेवर बाकी परन्तु फूक निकल गयी। इस प्रकार जिस भी वस्तु से फूक निकल जावे वह निकम्मी बन जाती है। यहां पर शत पथ ब्राह्मण ८। ७। ११ का निम्न वाक्य विचार करने के योग्य है।

तस्मादयं सर्व एवात्मोष्णस्तद्धैतदेव जीविष्यतश्च मरिष्यतश्च विज्ञानमुष्ण एवं जीविष्यञ्शीतो मरिष्यन्। अर्थात् यह आत्मा ही ऊष्मा का केन्द्र है। जीवित और मृत की पहिचान भी यह ऊष्मा ही है। जीता हुआ व्यक्ति ऊष्मा युक्त होता है और मरते हुये ठण्डा पड़ जाता है। यहां पर ऊष्मा को जीवन और शैत्य को मृत्यु की निशानी बतलाया गया है। आत्मा के शरीर में रहते हुए एक ऊष्मा कार्य करती रहती है जिस पर शरीर और उसके अष्ट अंगों की स्थिति है। यही ऊष्मा वेद में "वैश्वानर" अग्नि कही गयी है। यह समस्त नरों को नयन करती है अतः इसका नाम वैश्वानर है। "नर" और "नार" पद-जलीय एवं शीत संघातों के लिये प्रयुक्त होते है। "आपो नारा इति प्रोक्ताः" यह मनुस्मृति का वचन इसी की सूचना देता है। परन्तु इन ठण्डे प्राकृतिक पदार्थों को अग्नि चलाता है—इस लिए वह वैश्वानर है। यह वैश्वानर अग्नि आत्मा के सहारे से कायाग्नि नाम से नाभि को आश्रय बनाकर शरीर में कार्य करता है। यह शरीर की ऊष्मा है। इसे ही अंग्रेजी में Animal heat कहा जाता है। शब्दों के उच्चारण में भी इसकी महत्ता है। व्याकरण शास्त्र में जिसे प्रयत्न कहा जाता है उसका बहुत सा खेल इस ऊष्मा पर ही निर्भर है। श, ष, स, — वर्णों के उच्चारण में ऊष्मा का अधिक प्रयोग होता है—अतः वे नाम से ही ऊष्मा वर्ग कहलाते हैं। ऐसी ही अवस्था शिक्षा की भी है। शिक्षा में भी एक ऊष्मा है। उसी को शिक्षा का वीर्य भी कहा जाता है। "सह वीर्यं करवावहै" और "तेजस्वि नौ अधीतमस्तु" वाक्य इसी दिशा की ओर संकेत करते हैं। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध इस वीर्य एवं ऊष्मा को सुरक्षित रखने का साधन है। मुख्य साधन तो गुरु एवं आचार्य जन हैं जो इसको अक्षुण्ण रखते हैं। निरुक्त में कहा गया है कि विद्या विद्वान् के पास गयी, और कहा कि मेरी रक्षा

करना—जिससे कि में वीर्यवती बनी रहूं। आचार्य जन इसके निधिप हैं। यह उनकी शेवधि है। पढ़ी पढ़ाई विद्या का जब यह वीर्य निकल जाता है तब वह ऊष्मा रहित हो जाती है। संस्थायें बहुत हैं, पढ़ाई भी कहते हैं बहुत होती है, प्रचार और उत्सव बहुत बड़े तड़क भड़क के होते हैं, परन्तु शिक्षा का स्तर और उसकी उपज शक्ति नष्टप्राय है। पदवियां प्राप्त करने पर भी ज्ञान के स्थान में अन्धकार और कुण्ठता ने आधिपत्य जमाया है। ऋग्वेद ३।५३।२३ मन्त्र में तो लिखा है कि घोड़े के आगे अथवा घोड़े के स्थान में गधे नहीं जोते जाते, परन्तु शिक्षणसंस्थाओं में ऐसे कार्य बहुत होते हैं। जहां योग्य विद्वानों की आवश्यकता होती है वहां पर उनके काम को निकम्मों से भी चला लिया जाता है। इसका कारण सरस्वती और लक्ष्मी का युद्ध तथा शिक्षा में राजनीति का प्रवेश है। शिक्षा संस्थाएं जितने ही योग्य व्यक्तियों के द्वारा शिक्षा का संचालन करेंगी, उतनी ही शिक्षा में प्रगति बढ़ेगी और वह वीर्यवती बनेगी। उसकी ऊष्मा जो कम होती जा रही है—बराबर बढ़ती रहेगी। इस ऊष्मा के बढ़ाने के साधन अध्ययनाध्यापन और अन्वेषण एवं विविध शैक्षणिक प्रगतियां हैं। मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि में उसका क्यों ? कैसे ! और क्या ? बहुत बड़ा खेल खेलते हैं। जहां पर इसका अभाव हो जाता है वहां अनुसंधान की वृत्ति समाप्त हो जाती है। इस वृत्ति की समाप्ति ऊष्मा की भी समाप्ति का कारण बन जाती है। गोपथ ब्राह्मण पूर्वार्ध १।२७ में इसका सुन्दर निदर्शन मिलता है। वहां कहा गया है कि पहले कई गुरुजन संछिन्नाध्यायी हुये जो केवल श्रवण मात्र से सब जानने की कोशिश करते थे, कारण नहीं पूछते थे। जब कारण पूछने वाले हुये तो विद्या का प्रसार बढ़ने लगा। विविध शास्त्रों का जन्म हुआ। इस लिए यह आवश्यक है कि सरस्वती के मन्दिर में शिक्षण क्रम को चलाने के लिए विशेष योग्यता और दक्षता का प्रयोग किया जावे। इससे ही शिक्षण की जीवनमयी ऊष्मा बनी रहेगी। इस की ओर वस्तुतः विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है।

संसार में कौन उत्तम पुरुष है ?

वही उत्तम पुरुष है जो आप्त पुरुषों की सेवा में तत्पर, सम्पूर्ण मनुष्यों को सद्बुद्धि प्रदान करने वाला, गौ के समान सत्योपदेश रूपी दूध का पान कराने वाला, अविद्या आदि पंच क्लेशों से पृथक् रहने वाला है। ऐसे महापुरुष का ही सदा सत्सङ्ग करना चाहिये।

महर्षिदयानन्द—ऋ. ५।४४।३ के भाष्य में

पिछले अंक का शेष—

श्री अरविन्द और आर्य समाज

श्री आचार्य अभयदेव जी विद्यालङ्कार चरथावल उ. प्र.

श्री अरविन्द शुद्धि समाज के सदस्य बने थे

मुझे इस बात का गर्व है कि मैं जन्म का आर्य समाजी हूं—अर्थात् मेरे पूज्य पिता जी, जिन्होंने अभी पांच वर्ष पूर्व १९५३ में, अपनी ९१ वर्ष की आयु में, 'वैदिक विनय' के मन्त्र पढ़ते हुए अपना शरीर छोड़ा है-दृढ़ आर्य समाजी थे। दूसरे शब्दों में मैं कट्टर आर्य समाजी की सन्तान हूं। वे मेरे पूज्य पिता जी एक समय अखिल भारतीय शुद्धि सभा के मन्त्री रहे थे। वे गौरव के साथ सुनाया करते थे कि संवत् १९६१—६२ में (सन् १९०५ में) काशी की कांग्रेस के अवसर पर उन्होंने श्री अरविन्द घोष जी को शुद्धि सभा का सदस्य बनाया था। उनके हस्ताक्षर अपने रजिस्टर में कराये थे। श्यामाचरण आदि छः अन्य बंगाली महानुभावों को भी सदस्य बनाया। कइयों को यह विचित्र लगेगा कि अरविन्द घोष जैसा राष्ट्रीय नेता शुद्धि-सभा का सदस्य बने, पर श्री अरविन्द के लिए कुछ भी विचित्र नहीं था। वे सहर्ष शुद्धि सभा के सदस्य बने थे और इस कार्य द्वारा भी उन्होंने राष्ट्र-सेवा या परमात्म-सेवा की थी।

'आर्य' कौन है ?

श्री. अरविन्द को आर्य शब्द बहुत प्रिय था और उसे वे हमारे साहित्य में बहुत ऊंचे अर्थ का अभिव्यंजक मानते थे। इसीलिये उन्होंने अपने अंग्रेजी पत्र का नाम 'आर्य' रखा था, जिसका कि फ्रेंच संस्करण भी निकला करता था। उन दिनों जब उनसे पूछा गया कि, आपने अपने मासिक पत्र का नाम 'आर्य' क्यों रखा है तो उसके उत्तर में 'आर्य' पत्रिका में ही उन्होंने विस्तार से आर्य शब्द का अर्थ समझाया था। उन सबको यहां उद्धृत करना तो कठिन है, पर उसका कुछ अंश निम्न प्रकार है—

"वेद में जहां आर्य प्रजाओं का उल्लेख आया है, वहां वे वे लोग हैं जिन्होंने संस्कृति की, आत्म साधना की, एक आन्तर और बाह्य अभ्यास की, आदर्श भाव एवम् अभीप्सा की विशिष्ट पद्धति को अपनाया था . . .।

"पीछे जाकर आर्य शब्द एक विशिष्ट प्रकार के नैतिक और सामाजिक आदर्श को—अर्थात् सुनियन्त्रित जीवन, दृढ़ता, शिष्टता, शालीनता, सत्य, व्यवहार, साहस, भद्रता, पवित्रता, कारुणिकता, दुर्बलों की रक्षा, उदारता, सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन, ज्ञान-पिपासा, विद्वानों और ज्ञानियों का आदर,—के आदर्श को अभिव्यक्त करने वाला हो गया था . .। मानवीय भाषा में और कोई दूसरा शब्द ऐसा नहीं है, जिसका इतिहास इससे उत्कृष्टतर या उज्वलतर हो . .।

"वह, जो चुनाव करता है, जो भगवान् के दिव्यता के पर्वत पर एक स्तर से दूसरे स्तर पर आरोहण करता हुआ चढ़ना चाहता है, जो किसी से डरता नहीं, जो किसी विघ्न, बाधा या पराजय से विचलित नहीं होता और साथ ही जो किसी विशालता, उच्चता व महत्ता से झिझकता भी नहीं . . . वह आर्य है, वही दिव्य

योद्धा, विजेता, महान्, अभिजात, उत्तम और गीतोक्त श्रेष्ठ पुरुष है।

"अपने आन्तरिक तथा मूलभूत अर्थ में आर्य शब्द का अभिप्राय है—प्रयास करना, ऊर्ध्वगति करना, विजय लाभ करना। आर्य वह है जो सतत प्रयत्नशील है और जो कुछ भी उसके अन्दर या बाहर ऐसा है जो मानवीय प्रगति में बाधक रूप से आ उपस्थित होता है, उस पर वह अपनी विजय स्थापित करता है। आत्म-विजय ही उसकी प्रकृति का पहला नियम है। वह अपने शरीर पर और इस पृथ्वी पर प्रभुत्व स्थापित करता है और एक साधारण मनुष्य की तरह जड़ता, निष्क्रियता, निर्जीव दैनिक चर्या, तमोग्रस्तता में पड़े रहना स्वीकार नहीं करता। वह जीवन और उसकी शक्तियों पर विजय प्राप्त करता है और प्राणिक लालसाओं व इच्छाओं द्वारा शासित होने और राजसिक आवेगों का दास बने रहने से इन्कार करता है। वह अपने मन और उसके अभ्यासों को अतिक्रान्त कर जाता है। वह अज्ञान, वंशानुगत पूर्वग्रहों, प्रचलित रूढ़ विचारों और रोचक सम्मतियों के कठोर आवरण में आबद्ध नहीं रहता, प्रत्युत वह जानता होता है कि खोज और चुनाव कैसे करना चाहिये, और अपने संकल्प में अडिग और सशक्त रहते हुए भी बुद्धि में विशाल और सुनम्य कैसे रहा जा सकता है। क्योंकि वह प्रत्येक चीज़ में सत्य को ही खोजता है, उस चीज़ को खोजता है जो ठीक और सही है, जो उच्च और निर्बन्ध है।

"आत्म—परिपूर्णता ही उसके आत्म-विजय का उद्देश्य होता है। इसलिये जो कुछ भी वह विजित करता है, उसे वह विनष्ट नहीं करता; बल्कि उसे वह उदात्त रूप देता है और उसे उसकी परिपूर्णता प्रदान करता है।

"आर्य एक कर्मण्य व्यक्ति होता है, एक योद्धा होता है। वह मानसिक और शारीरिक श्रमकरने में कोई कसर नहीं उठा रखता, चाहे वह परम की खोजमें लगा हो, चाहे उसकी सेवा में रत हो। किसी कठिनाई से बच भागना वह पसन्द नहीं करता है। प्रत्युत वह अपने अन्दर और बाहर आत्म-साम्राज्य की स्थापना के लिये संघर्ष करता है . .।"

'वेद रहस्य' के द्वितीय खण्ड में अग्नि देवता का स्वरूप बतलाते हुए ऋक् १.७७.३ का अर्थ स्पष्ट करते हुए उन्होंने बड़ा सुन्दर कहा है— "वह क्या आर्य है जो दिव्य संकल्प से अर्थात् अग्नि से रहित है, उस अग्नि (संकल्प) से जो श्रम को तथा युद्ध को स्वीकार करता है, कार्य करता और जीतता है, कष्ट सहन करता और विजय प्राप्त करता है ?"

गुरुकुल के स्नातक पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति जब दक्षिण भारत में आर्य समाज के प्रचार का कार्य करते थे, तब मुझे स्मरण है कि उन्होंने जनगणना के एक अवसर पर एक पैम्फलेट छपवाया था, जिसमें श्री अरविन्द की की हुई आर्य की यही व्याख्या दी हुई थी और लोगों से अपील की गई थी कि वे जनगणना में अपने आप को हिन्दू लिखाने की जगह 'आर्य' लिखायें।

आध्यात्मिकता

श्री अरविन्द की एक और प्रसिद्ध लेखमाला

जो आर्य में प्रकाशित हुई थी, उसका नाम 'A Defence of Indian Culture' था। इसका भी 'अदिति' में अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। कुछ योरोपियन लोगों ने भारतीय संस्कृति पर जो आक्षेप किये थे, उनके उत्तर में यह लेख-माला लिखी गई है। इसमें भी भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत वेद को माना है। इस लेखमाला के वेदसम्बन्धी वचनों का अनुवाद भो मैंने एक बार अहमदाबाद के गुजराती स्वाध्याय मण्डल के लिये किया था। जैसे श्री अरविन्द भारतीय संस्कृति की मुख्य वस्तु आध्यात्मिकता को मानते हैं (इस लेखमाला को हृदयंगम करने पर यह आप को अच्छी तरह पता लगेगा), वैसे ही वे वेद का असली तात्पर्य भी उसके आध्यात्मिक अर्थ में ही मानते हैं।

वेद में श्री अरविन्द की रुचि कैसे हुई, इसका वर्णन स्वयं उन्होंने 'वेद रहस्य' पुस्तक में किया है। उन्होंने उसके पांचवें अध्याय में जिसका शीर्षक है 'आध्यात्मिक वाद के आधार', लिखा है कि एक बार मैंने ध्यान में तीन देवियां देखीं, उनके नाम इडा, सरस्वती और सरमा आए। तब तक मैंने वेद का स्वाध्याय नहीं किया था। उन देवताओं की पौराणिक विचार के अनुसार मैंने कुछ व्याख्या की। 'सरस्वती' को विद्या की देवी तथा 'इडा' को चन्द्रवंश की माता मान लिया था। पर असल में ये कुछ और थीं। वेद में वर्णित ये तीन देवियां—इडा, सरस्वती तथा सरमा-असल में क्रमशः स्वतः प्रकाश, (Revelation), अन्तः प्रेरणा (Inspiration) तथा अन्तर्ज्ञान (Intuition) की द्योतक हैं, दिव्यदृष्टि, दिव्यश्रुति तथा दिव्य-स्मृति की देवियां हैं। ऐसे ही दृष्टान्तों को देख-कर श्री अरविन्द ने लिखा है कि "मैंने यह देखा है कि वेद मन्त्र, एक स्पष्ट और ठीक प्रकाश के साथ, मेरी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों को प्रकाशित करते हैं।" अर्थात्—श्री अरविन्द को अपनी योग साधना में होने वाली आध्यात्मिक अनुभूतियों की ठीक व्याख्या वेद में मिली। इसके पहले, श्री अरविन्द ने लिखा है, वे भी पढ़े लिखे भारतीयों की तरह पश्चिमी लोगों के विचार के अनुसार ही वेद को बहुत कुछ जंगली-पन की बातों की पुस्तक मानते थे, तथा उप-निषदों को ही भारतीय विचार तथा धर्म का प्राचीन स्रोत, सच्चा वेद, समझते थे। अर्थात्—योगसाधना ने,आध्यात्मिक अनुभूतियों ने उनको वेद का असली स्वरूप दर्शाया।

तो ऋषि दयानन्द और श्री अरविन्द में निम्न ४ बातों में समानता देखी जा सकती है—

१. दोनों ने ही भारतीय संस्कृति का मूल-स्रोत वेद को माना है। वे खोज में वेद तक गये हैं और वेद को पहिचाना है—उपनिषदों पर ही नहीं अटक गये हैं।

२. दोनों ने ही 'योग' का आश्रय लिया।[1]

---

१. श्री अरविन्द ने योग-साधन का प्रारम्भ पहले पहल देश सेवा के लिये शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से ही किया था। दयानन्द ने भी अपने कार्य में सफलता न मिलती देखकर हिमालय में जाकर तप किया था, फिर योग द्वारा नवजीवन प्राप्त करके ही नये उत्साह से उठे थे—पाखण्ड खण्डिनी पताका उठाई थी।

३. दोनों राष्ट्रीयता के उपासक थे, यद्यपि उनकी राष्ट्रीयता संकुचित नहीं थी ।

४. दोनों आध्यात्मिकता को सर्वोपरि मानते थे ।

जब भारतीय संस्कृति की मुख्य वस्तु आध्यात्मिकता है और वेद का भी मुख्य तात्पर्य आध्यात्मिक अर्थ में है, और योग तो आध्यात्मिकता के ही विकास की क्रियात्मक पद्धति का नाम कहा जा सकता है, तथा भारत की राष्ट्रीयता का भी लक्ष्य विश्व में आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है तो ये चारों बातें भी 'आध्यात्मिकता' में समा जाती हैं ।

तो जगत् को आध्यात्मिक सन्देश देना ही आर्य समाज का लक्ष्य हो जाता है—वेद के प्रचारक तथा भारतीय संस्कृति के उद्धारक आर्य समाज का यही लक्ष्य हो जाता है । बहुत से लोग सचाई से मानते हैं कि आर्य समाज का कार्यकाल अब समाप्त हो चुका है । उसने जो करना था कर लिया, अब उसकी आवश्यकता नहीं है । यह ठीक है कि व्यक्तियों की तरह समाजों, संगठनों तथा संस्थाओं की भी एक आयु होती है । पर मैं यह नहीं मानता कि दयानन्द ने जिस उद्देश्य से आर्यसमाज की स्थापना की थी, वह पूरा हो चुका । मेरी समझ में तो भारत के स्वाधीन हो जाने से अभी ही वह समय आया है, जब कि आर्य समाज का कार्य वास्तविक अर्थों में प्रारम्भ हो सकता है । पर यह तभी है जब कि आर्य समाज अपने को मूलतः एक आध्यात्मिक संस्था बना ले । अभी तक आर्य समाज का मुख्य रूप एक समाज-सुधारक संस्था का बना रहा है। पर यह पर्याप्त नहीं है । यदि यही रूप रहना है तो बेशक आर्य समाज की आयु पूर्ण हो रही है । किन्तु यह आवश्यक नहीं है । परन्तु यदि विश्व की, जगत् की किसी सच्ची आवश्यकता को आर्य समाज पूर्ण कर सकता है तो आर्य समाज को अभी बहुत कुछ करना है, उसका कार्य शेष है और उस कार्य के लिये आर्य समाज को अपने पथ-प्रदर्शक के रूप में श्री अरविन्द को अपना लेना बहुत उपयोगी हो सकता है । जो हो, हमारा विश्वास है कि भारत को फिर जगद्गुरु बनना है । भारत में आध्यात्मिकता जागेगी—वह आध्यात्मिकता नहीं जो कि इस शब्द का आम अर्थ माना जाने लगा है, परन्तु जैसा कि श्री अरविन्द की शिक्षाओं में कहा गया है-एक सक्रिय और विकसनशील आध्यात्मिकता । वह आध्यात्मिकता भारत में जागेगी और सब जगत् को प्रभावित करेगी । उसमें भागीदार होने के लिये हमें तैयार हो जाना चाहिये । मेरा यह भी विश्वास है कि यह कश्मीर—भारत का शीर्ष-स्थानीय यह काश्मीर प्रदेश—उस आध्यात्म शक्ति की जागृति का शीघ्र ही लीलाकेन्द्र बनेगा। भारत में युग युग में पुष्ट होती आ रही जिस आध्यात्मिकता को श्री अरविन्द ने वर्तमान काल में एक सजीव रूप दिया है—जिस आध्यात्मिकता की मुख्य वस्तु मानस से ऊपर की एक अतिमानसिक शक्ति—जिसे उपनिषद् में विज्ञान कहा है और जिसे वेद में 'ऋतचित्' कहा है—के द्वारा स्थूल जगत्, जड़ जगत् तक को परिवर्तित करना, रूपान्तरित कर देना है, उस

आध्यात्मिकता की क्रीड़ा काश्मीर में भी होगी। और काश्मीर के शैववाद की प्राचीन परम्परा श्री अरविन्द-प्रतिपादित आध्यात्मिकता के बहुत अनुकूल भी है। इसलिये हमें अन्य सब तुच्छ बातों को छोड़कर इस महान् आध्यात्मिकता के लिये तैयार होना है। आपका यह आर्यसमाज, परमेश्वर करे, उस आध्यात्मिकता का काश्मीर में स्वागत करने वाला बने जिसमें पुनः जागृत होकर इस भारत देश को एक कोने से दूसरे कोने तक हिल जाना है।

शिवरात्रि का सन्देश

शिवरात्रि का शुभ सन्देश, ईश भक्त सब ही बन जाएं ॥ ध्रुव

(१)

शिवशङ्कर परमेश्वर नाम, जो है शाश्वत सुख का धाम।
उस को स्मरण करें शुभ काम, करने वाले सब बन जाएं ॥

(२)

ज्ञान शक्ति के पूर्ण निधान, महादेव का करके ध्यान।
सभी शान्ति पावें विज्ञान, भवसागर तर अन्य तराएं ॥

(३)

शम्भु शान्ति शाश्वत का मूल, इस में नहीं जरा भी भूल।
उसकी आज्ञा के अनुकूल, चल पापों को दूर भगाएं ॥

(४)

सर्व व्यापक वह परमेश, उसका ध्यान हरे सब क्लेश।
तन मन धन उसको निश्शेष, करके अर्पण दुःख नसाएं ॥

(५)

सुना मूल जी ने सन्देश, दिया इसे फिर देश विदेश।
पाया उसने वह देवेश, जिसे ज्ञानिजन दिल में ध्याएं ॥

श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

बालकों के प्रति हमारा कर्त्तव्य

प्रो० रामसिंह जी एम० ए० गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

अवहेलना

भाग्य का चक्र बड़ा विचित्र है। आज कल जहां हम जीवन के हरेक क्षेत्र में विशेषज्ञों की मांग करते हैं, चाहे वह मशीन से संबन्ध रखता हो, चाहे पशुओं और बीजों से, चाहे फलों और फूलों से लेकिन जहां बालक का पालन पोषण और शिक्षण के सम्बन्ध का प्रश्न उठता है वहां पर अनपढ़ों को जाने दीजिये पढ़े-लिखे सम्पन्न माता पिता भी पालन पोषण की कला को सीखने की आवश्यकता नहीं समझते। उनका यह भ्रम है कि वे बच्चे का पालन पोषण करना भली भांति जानते हैं। प्राय: उन्हें उदासीन ही पाया जाता है। इसी अभागी वृत्ति के कारण पशुओं, फल फूलों और पक्षियों के पालन-पोषण की अपेक्षा भी मानव-बालक अत्यन्त उपेक्षित रह गया है और यही कारण है कि मनुष्य जाति दुःख के सागर में बह गई है। मानव समाज का इतिहास पालन पोषण की कठोर टीका टिप्पणी का इतिहास है। यह युद्धों और व्यक्तियों के पारस्परिक वैमनस्य का इतिहास है। यदि मानव समाज ने इसकी ओर ध्यान न दिया तो मनुष्य जाति पूर्णतया नष्ट ही हो जायेगी। मनुष्य जाति का कलंकित इतिहास और बालकों के असामान्य व्यवहार की महामारी को देखकर यह सिद्धान्त निर्विवाद रूप से स्थिर होता है कि बाल-पालन के लिये शिक्षा और शिक्षण विज्ञान की परम आवश्यकता है और सभ्य समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को माता पिता होने का अधिकार न दे जिसने बाल पालन पोषण की शिक्षा प्राप्त न की हो। समाज और साधारण माता पिता में इस विषय के प्रति केवल जागृति का अभाव ही नहीं, विरोध भी है। बाल-पालन पोषण के लिये बालक के मनोविज्ञान और उसके विकास की विधियों में ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है।

बच्चे राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति हैं और उनके कल्याण पर ही देश का भविष्य निर्भर होता है, किन्तु दुःख है कि हमारे देश में उनके हितों की अवहेलना हुई है। मुझे युरोप के कई स्कूलों को देखने का अवसर मिला है। अवसर ही नहीं मिला, बल्कि एक में काम करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वहां मैंने देखा कि बच्चों की देख भाल करने के लिये कितना प्रयत्न किया जाता है। उनकी शिक्षा ही नहीं किन्तु उनके स्वास्थ्य पर भी पूरा ध्यान दिया जाता है। प्रत्येक बालक को एक पौण्ड दूध व्यायाम के पश्चात् बिना किसी भेद भाव के दिया जाता है। गरीब से गरीब विद्यार्थी का भोजन, यदि हमारे यहां के बढ़िया से बढ़िया भोजन से उसकी तुलना की जाये तो वैज्ञानिक दृष्टि से बराबर अथवा अधिक पौष्टिक सिद्ध हो।

शिक्षा की व्यवस्था

ब्रिटेन में बच्चों की देखभाल और कल्याण के लिये प्रशंसनीय कार्य हो रहा है। बाहर

वर्ष तक बालक और बालिकाओं के लिये अनिवार्य शिक्षा है और उनके लिये नर्सरी स्कूल गरीब से गरीब बस्ती में विद्यमान हैं। ग्रामों में भी मैंने देखा कि निःशुल्क शिक्षा-पढ़ाई की अच्छी व्यवस्था है। शहर अथवा गांव दोनों ही इलाकों में शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाता है। सत्य तो यह है कि वे शिक्षा तथ सामाजिक स्वच्छता में हम से बहुत अधिक बढ़े चढ़े हैं।

शिक्षा की परिभाषा

हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने शिक्षा की जो परिभाषा की है। उनकी दृष्टि में शिक्षा वह पद्धति है जो हमारी नैसर्गिक, आन्तरिक एवं अन्तर्हित शक्तियां एवं योग्यताओं को प्रकट करने तथा उनका अधिक से अधिक विकास करने में सहायक होती है। उनको सदा यह स्मरण था कि शिक्षा संस्कृति के अर्थ में भी ज्ञान की देने वाली थी वह सृष्टि करने वाली न होकर अन्तरात्मा में सोई हुई ज्ञान राशियों को प्रबुद्ध करती है और हमें इस योग्य बनाती है कि हम उन्हें देखें, मानें और अपनी आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नति के लिये उनका उपयोग कर सकें, लेकिन आज कल जो शिक्षा मिल रही है क्या यह हमारी आशा को सफल करने में पूरी उतरती है?

रहन-सहन

प्रत्येक मनुष्य अपने घर तथा उसके चारों तरफ इतनी सफाई रखता है कि कोई भी दर्शक यह उंगली नहीं उठा सकता है कि यह स्थान मैला है। प्रत्येक घर के साथ एक छोटा सा बगीचा होता है। चलती फिरती गाड़ियों से बहुत काम लिया जाता है। इन गाड़ियों से जिस प्रकार के काम लेने अनिवार्य होते हैं, ठीक उसे उसी प्रकार से ही फिट कर लेते हैं। उदाहरणार्थ—दाँत चिकित्सा, स्वास्थ्य शिक्षा, सामूहिक रेडिओग्रफी, इनके लिये अलग-अलग मोटरें हैं। प्रत्येक शिक्षा पाने वाले विद्यार्थी की डाक्टरी परीक्षा अनिवार्य है। अस्पताल में प्रसन्नता का जीवन देखने को मिलता है। वहां न केवल रोगी की चिकित्सा ही होती है, बल्कि उनकी देख भाल करने वाली माता के, समान उसका पालन पोषण करती है। खिलौने, रंग बिरंगी पुस्तकें तथा खेल की अन्य सुन्दर वस्तुएं बालकों को प्रसन्न रखने के लिये उपलब्ध की जाती हैं।

शिक्षा की तुलना

कारखानों वालों के लिये आवश्यक है कि वे कर्मचारियों के लिये स्नानागार, स्कूल, पुस्तकालय आदि की व्यवस्था खूब रखें। पंगुओं और अंग हीन बच्चों के लिये अलग-अलग स्कूल हैं। सत्य तो यह है कि बच्चों की अवहेलना किसी भी क्षेत्र में नहीं की जाती है जब कि उसके विपरीत अपने देश के बालकों की दशा देखें तो हमारे लाखों बच्चों के लिये शिक्षा ही नहीं और यदि है भी तो उनकी शिक्षा की व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं। कहीं-कहीं तो शहरों की धर्मशालाओं में शिक्षणालय बना रखे हैं और कहीं कहीं गांव के बाहर जहां गांव का कूड़ा कचरा इकट्ठा किया जाता है वहां बने हुवे हैं। कमरों में रोशन दान नहीं होते और बच्चों के लिये खेल तथा पढ़ाई का समान बहुत

ही न्यून होता है । प्रकाश एवं जीवन हमारे ग्रामों तक अभी पहुंच ही नहीं सका । ग्रामों को जाने दीजिये शहरों में भी ऐसे बहुत से बालक हैं, जिनकी शिक्षा की व्यवस्था ही नहीं है । हमारी शिक्षा का मान तो बहुत ही नीचा है क्योंकि हमारे अध्यापक कम वेतन पाते हैं । बालकों के लिये अलग अस्पताल स्थापित ही नहीं किये गये । शिक्षणालयों में बच्चों के लिये दूध का प्रश्न तो दूर रहा उनके भोजन की भी पूरी व्यवस्था नहीं होती । बाल-बच्चों वाली माताओं की मृत्यु संख्या इस देश में जितनी अधिक है, शायद ही कहीं की हो ।

हमारी अभिलाषा

इस पर भी हम आशा करते हैं कि हमारी यह भावी पीढ़ी भारत को सम्पन्न और बुद्धिमान् बनायेगी । अभी तक तो हमारे पास एक सीधा सा उत्तर था कि हम बेबस हैं, क्या करें, विदेशी राज्य है, जब हमारे हाथ में सत्ता आयेगी तभी देखेंगे । जिन्होंने हम लोगों पर शासन किया था, उन्होंने हमारी दण्डनीय अवहेलना की थी ।

किन्तु अब विलम्ब क्यों ?

अब भारत स्वाधीन है, हमें अपना घर संभालना है । मुझे पूरा विश्वास है कि बच्चों की देखभाल हम, सबका मुख्य कर्तव्य और प्रत्येक का महत्त्वपूर्ण कार्य होना चाहिये । बच्चों की देख भाल का कार्य उनके माता-पिता का है, किन्तु दुःख है कि उनके माता पिता इन स्वास्थ्य तथा स्वच्छता के साधारण नियमों से अनभिज्ञ हैं । हमारा वयस्क समुदाय जिस अनुशासन में लिप्त है, जब तक वह दूर नहीं होता और जब तक हमारी स्त्रियों का विशाल समूह अज्ञानता एवं अन्ध विश्वास से मुक्त नहीं होता, तब तक हमें यह आशा नहीं करनी चाहिये कि हमारे बच्चों का पालन पोषण और देख भाल आदर्श ढंग से हो सकेगा । फिर भी सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिये यह एक भारी क्षेत्र है कि वे इस ओर अपने कार्यक्रम को बढ़ावें ।

सच्चे शिक्षकों की आवश्यकता

यदि वास्तव में विद्यार्थियों की कमियों की जांच की जाये तो मालूम होगा कि इनका सूत्रपात माता पिता से नहीं, बल्कि शिक्षक के व्यक्तित्व से भी आरम्भ हुआ है । सत्य तो यह है कि जीवन संग्राम के कई संघर्षों में उन्हें इतना समय ही नहीं मिलता कि वे अपने आपको सच्चा शिक्षक बना सकें । उनकी आंख घड़ी की सुइयों पर अथवा महीनों की तिथियों पर जभी रहती है । यदि भारत सरकार कभी इस बात की जांच करने पर कमर कसे तो उसे ज्ञान होगा कि दो तिहाई अध्यापकों को विवश होकर यह धन्धा लेना पड़ा है ।

यदि सरकार और समाज देश की उन्नति चाहते है तो उनका यह कर्तव्य है कि वे ऐसे योग्य शिक्षक रक्खें, जो विद्यार्थियों के सामने अच्छा आदर्श रख सकें । इन सब कमियों को दूर करने का एक मात्र उपाय प्राचीन शिक्षा प्रणाली ही है, जिसमें बालकों के मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक विकास का पूरा ध्यान किया जाता है, और उसे सच्चा नागरिक बनाया जाता है ।

प्रचलित शिक्षा प्रणाली का दोष

प्रचलित शिक्षा प्रणाली का सर्वोपरि भयंकर दोष यह है कि उसमें धर्म शिक्षा को कोई भी स्थान नहीं है। जिस शिक्षा में धर्म एवं ईश्वर को स्थान नहीं है, उसके द्वारा वही परिणाम हो सकता है जो आज बालक बालिकाओं में देखने में आरहा है। केवल किसी भाषा का ज्ञान हो जाना, विदेशी इतिहास तथा भूगोल का ज्ञान होजाना एवं फैशन सीख लेना-शिक्षा नहीं कही जा सकती। शिक्षा तो वह है जिससे मनुष्य मनुष्य बन सके और स्त्री सच्ची स्त्री बन सके। जिससे स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन एवं स्वस्थ बुद्धि का निर्माण हो सके। इनमें से किसी आवश्यकता की पूर्ति प्रचलित शिक्षा शैली द्वारा नहीं हो रही है। यह तो अपने प्राचीन इतिहास ज्ञान एवं धर्म शिक्षा द्वारा संभव है अन्यथा नहीं। चाहे कितने ही कालिज एवं युनिवर्सिटियां खुला करें और भले ही करोडों रुपया शिक्षा पर व्यय किया जाये-शिक्षा का यथार्थ लक्ष्य चरित्र निर्माण है, उसकी पूर्ति संभव नहीं। बड़े खेद की बात है कि प्रचलित शिक्षा पद्धति के दोषों को मानते हुवे भी न तो अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो रहा है और न अभिभावकों का ही।

उचित सुझाव

१. अच्छे बड़े-बड़े गावों शहरों से दूर स्कूल बनाये जायें, जहां पर शुद्ध जल तथा वायु प्राप्त हो सके। प्रत्येक स्कूल के साथ सुन्दर क्रीडा क्षेत्रों की व्यवस्था होनी चाहिये।
२. गावों में घूमने फिरने वाली गाड़ियों पर पुस्तकालय होने चाहियें। स्वच्छता और शिक्षा के लिये जितना सरकार इस ओर खर्च करे उतना ही थोड़ा है।
३ स्कूलों में फौजी ड्रिल और कालेजों में सैनिक शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये।
४. स्कूलों में छात्रों के लिये शुद्ध दूध का प्रबन्ध होना आवश्यक है।
५. प्राइमरी शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये। इस के साथ प्रौढ़ शिक्षा का भी ध्यान रखना चाहिये, जिसमें जीवनोपयोगी बातें हों।

नव भारत निर्माता स्वामी श्रद्धानन्द जी

स्वतन्त्रता संग्राम के प्रधान सेना नायकों और नये भारत के निर्माताओं में स्वामी श्रद्धानन्द जी का स्थान ऊंचा है। उनकी स्मृति को सदा उज्ज्वल बनाये रखना चाहिये और उससे स्वार्थ त्याग' परहित एवं देशहित चिन्तन और निर्भय धर्मयुक्त जीवन की शिक्षा लेनी चाहिये। —डा० भगवान्दास जी

शान्ति

पण्डित प्रवीण कर्णवीर जी वेट पाल्यम्, आन्ध्र प्रदेश

पात्र सूची

रामनाथ, सोमनाथ—भारत देश में एक सामान्य ग्राम के नागरिक।

देश-भक्त—देश-सेवा के लिए अपना सर्व-स्व समर्पित कर महात्मा जी से 'देश–भक्त उपाधि प्राप्त श्रीराम'।

"शान्तिदूत"—बाल्य से ही ब्रह्मचर्य के साथ अखण्ड तप करके देशोन्नति के लिए सारी शक्ति लगाया हुआ पुण्य-पुरुष बालयोगी।

प्रधान—संसार के सेवकों में अग्रणी।

भारतमाता—-समूचे विश्व को समान दृष्टि से अवलोकन करने वाली लोक-माता।

स्थान—हिमालय-प्रदेश

प्रथम दृश्य

(मन्दिर का मण्डप। मध्याह्न-समय। लोकाभिरामायण चर्चा।)

रामनाथ—(चुरूट जलाते हुए बीच-बीच में तोंद पर हाथ फेरते-फेरते।) क्या है सोम-नाथ! चार दिन से दर्शन ही नही है! कहां की यात्रा? तुम्हारे न रहने से मुझे कुछ भी नही सूझता। मण्डप तो एक दम पोपला हो गया है।

सोमनाथ—(बीड़ी के धुएं को नाक से छोड़ते-छोड़ते) क्या है रामनाथ! अकाल है। कितना काम करने पर भी पेट को भूखा ही रहना पड़ता है। किसी काम से पेट भरने की इच्छा से परसों सोमवार के दिन 'रामनगर' गया। वहां मेरा भतीजा है।

रामनाथ—वहां कोई उम्मीद है! तुम्हारा भतीजा 'रंग विठल' कुछ सहायता पहुंचाने वाला है?

सोमनाथ—(निराशा पूर्वक) बेचारा! वह क्या कर सकता है! समय ही बदल गया। निजी बात से ही वह कष्ट उठा रहा है। ऊपर तो इस छोटी सी ही उमर में चार बच्चे हैं। 'विठल' की कठिनाइयां भगवान् ही जानता है।

रामनाथ—सोमनाथ! हमें पहले ऐसे कष्ट मालूम होते ही नहीं थे। 'स्वराज्य' 'स्वराज्य' कहते कहां की छलांगें! जैसे बने, वह प्राप्त हो गया। प्राप्ति के बाद सुख सूना है! हमेशा भोजन की गड़बड़ के सिवाय दूसरा कुछ नहीं है।

सोमनाथ—तुम सब कुछ जानते ही हो रामनाथ! धारा-सभा के निर्वाचन तक कहां के व्याख्यान! हमने सोचा कि उद्धार के नेता-गण हैं। वाह वाह! विजय होने के बाद उस 'चंचय्या' ने एक दिन भी यहां आकर हमारी व्यथा सुनी?

राम—(कितने पागल हो तुम सोम-नाथ! संसार का अर्थ अभी ज्ञात नहीं हुआ) विजय के बाद यहां आने में चंचय्या बेवकूफ़ है? उसे सब तरह की युक्तियाँ मालूम हैं। उस दिन तुमने भी मेरी बात सुनी है?

सोम—"इटिकोनि पोरु इंतित गादुरा", 'अर्थात्' घर की लड़ाई इतनी-उतनी नहीं है "वेमन्ना ने यह सूक्ति चुप ही कही है? बड़ा अनुभवी हमारा वेमन्न"। पक्षी एक ओर तथा

लड़के दूसरी तरफ लड़-भिड़ कर मुझे मारा हुआ समाचार तुमको ज्ञात नहीं ? सब की लड़ाई से किया गया काम है किन्तु हृदय से किया गया नहीं ।

राम—मन से किये गये लोग जैसे हैं वैसे ही ये भी हैं । आकाश से पतित महानुभाव नहीं हैं । जब तक स्वार्थ रहता है तब तक ये नेता-गण विनाशक ही हैं ।

सोम—बिना स्वार्थ वाले मुझे कहीं नहीं दिखाई देते । अवश्य होना है किन्तु सीमा कहां ?

राम—इसलिए हमें ये कष्ट हैं । कांग्रेस के नाम से आये हुए महानुभाव भी सामान्य हैं ? नई टोपी लगाके आये हुए हैं न ! इसी लिए जहां तक लगाता है उसे सोचे-विचारे बिना लगाने के सिवाय लौकिक ज्ञान का व्यवहार दिखाई देता ही नहीं है ।

सोम—विचारे ! महात्मा जी ने ऐसे दुष्टों पर विश्वास रख के अपने प्राण बलि के रूप में दे दिये हैं । उनके रहते इनके ऐसे खेल होते ? उनके रहते समय मुंह न खोलने वाले अनेक धूर्त लोग संप्रति हमारे महानायक बन गये हैं ! यह हमारा कर्म है !

राम—सभी व्यवसाय गिरकर राह-वाह न समझ में आकर प्रजा की कटु-परम्पराएं कथन की सुविधा के परे हे । यदि हमें अक्षर-ज्ञान होता तो इन दुष्टों को अपने मनमाने कूदने की सुभीता होती ? हम में भी कई त्रुटियाँ हैं । उनके ठीक किये बिना हमारी उन्नति गड्ढे के फूल के बराबर ही है ।

सोम—हमारी बात देखो रामनाथ ! महात्मा जी मुनादी करते-करते चले गये कि बाबू लोग बीड़ियाँ, सिगरेट, चुरेटें न जला-वें । अब तक तो हमें बुद्धि आई ही नहीं है । अब बाकी लोगों की बात क्या है !

राम—हां, हां ! तुम्हारी बात ठीक है । हमारे गाँव की बात तुम खुद सोच लो! सरकार ने शासन किया कि शराब पीना मना है । लाभ कुछ भी नहीं है । इसके पहले कहीं-कहीं एक दुकान थी ! आज तो घर-घर में दुकान है ।

सोम—जब तक जनता जिम्मेदारी नहीं जानती, तब तक हमारी यह दुर्दशा दूर नहीं हो पाती । ज्ञान के बिना ये बुरी आदतें नहीं ढकतीं । अच्छे कामों में सरकार को हमें भरपूर मदद पहुंचानी ही है । बुरे कामों के लिये कुर्सियों पर से नीचे गिरा देना ही है । खूब विचार लो कि कितने ज्ञान से जनता यह काम कर सकती है !

राम—हां, हां ! सोमनाथ ! तुम्हारा कहना बिलकुल सच है । जनता की शक्ति के बिना सरकार एक पांव भी आगे नहीं रख सकती । जब सरकार अन्धी है तब प्रजा की शक्ति से कुछ रत्न निकले बिना प्रजा–प्रगति पूर्णानुस्वार ही है । हमारी ताकत कितनी है ! समय के लिए हमें प्रतीक्षा करनी है । उस दिन हमारी शक्ति प्रकट होती है ।

सोमनाथ—आज अच्छा भाषण है । इसके पहले हमने इतनी लम्बी चौड़ी चर्चा कभी नहीं की । जब जनता में योग्य शक्ति प्रस्तुत है तभी शान्ति का रहस्य समझ में आ सकता है । अब तो बिदा । (दोनों जाते हैं) —क्रमशः

साहित्य-समीक्षा

(समालोचनार्थ प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां पत्रिका कार्यालय में आनी चाहियें)

विश्वविज्ञान

लेखक—श्री हरिशरणानन्द जी वैद्य आयुर्वेद विज्ञान ग्रन्थमाला कार्यालय अमृतसर पृष्ठ २२० मूल्य ३)

पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है। इस के ७ परिच्छेदों में योग्य लेखक महोदय ने पृथिवी, जल, वायु, विद्युत्, चन्द्रमा, सूर्य, तारा मण्डल इत्यादि ब्रह्माण्ड विषयक अनेक बातों पर वर्तमान विज्ञान की दृष्टि से सरल रूप में प्रकाश डाला है और अन्त में एक पारिभाषिक शब्दावली दे दी है। वर्तमान विज्ञान के पृथिवी, जल, वायु इत्यादि विषयक तत्त्वों को समझने के लिये यह ग्रन्थ विशेष सहायक होगा इसमें सन्देह नहीं, किन्तु भूमिका के पृष्ठ च. छ. पर जो कुछ ऐसे वाक्य लिखे गये हैं जिनसे ईश्वर के इस अद्भुत ब्रह्माण्ड के रचयिता होने के विषय में सन्देह सा उत्पन्न हो जाता है उन्हें हम ठीक नहीं समझते। भूमिका को विषय सूचि में एक उपशीर्षक "ईश्वर रचयिता नहीं" यह दिया गया है। पृष्ठ च में यह जो लिखा है कि 'जब ईश्वर को विश्व का रचयिता कहा जाता है और यह भी मान लिया जाता है कि वह रचयिता सर्व व्यापक प्रभु है, वह विश्व के कण कण मे रम रहा है। जो इस तरह पूर्ण हो, विश्व का रचयिता कहलाता हो उसे विश्व से परे कहना युक्तिसंगत नहीं है। उसकी सत्ता विश्व से भिन्न नहीं मानी जा सकती। जहाँ विश्व नहीं, वहां विश्व का नियन्ता कैसे होगा ?" इत्यादि। यदि तो लेखक महोदय का अभिप्राय इन पंक्तियों से यह है कि परमेश्वर के सर्व व्यापक के कारण उसे विश्व से परे कहना ठीक नहीं तब तो कोई आक्षेप की बात नहीं, किन्तु यदि उसके जगत्कर्ता और जगन्नियन्ता होने का निषेध अभिप्रेत हो जैसे कि विषय सूची में ईश्वर रचयिता नहीं। इस निर्देश से प्रतीत होता है तो हम इसे न केवल तर्क विरुद्ध अपितु गैलीलियो, न्यूटन, लॉर्ड केल्विन, डा० फ्लेमिंग, थौमस ऐडीसन् आदि सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों के भी अभिप्राय से विरुद्ध और अत्यन्त भ्रान्त विचार समझते हैं। आशा है सुयोग्य लेखक का वैसा तात्पर्य न होगा। पर उन्हें यह अधिक स्पष्ट कर देना चाहिये ताकि पाठकों को भ्रम न हो। सम्पूर्णतया हम इस पुस्तक को छात्र जगत् के लिये विशेष उपयोगी समझते हैं, यद्यपि डार्विन के विकासवादादि कुछ विषयों में हमारा घोर मतभेद है।

'अणुव्रत' का संयम अङ्क

सम्पादक—श्री सत्यनारायण जी मिश्र संचालक अ० भा० अणुव्रत समिति कलकत्ता इस विशेषाङ्क का मूल्य १), पृष्ठ ३०० से अधिक।

अ० भा० अणुव्रत समिति द्वारा संचालित 'अणुव्रत' मासिक पत्र के इस संयमाङ्क में संयम के विषय में अनेक उत्तम लेखों, कविताओं और एकाङ्कियों का संग्रह किया गया है। महात्मा गान्धी, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर, योगी श्री अरविन्द, श्री रमण महर्षि आदि दिवंगत महापुरुषों के संयमादि विषयक उत्तम वचनों का

भी स्थान स्थान पर निर्देश किया गया है जिस से यह विशेषाङ्क अत्यन्त लाभ दायक बन गया है। हम इसके लिये सम्पादक महोदय और इस अणुव्रत आन्दोलन के प्रधान संचालक आचार्य तुलसी जी का अभिनन्दन करते हैं तथा चाहते हैं कि नर-नारियों में सच्ची आस्तिक भावना और ईश्वर-भक्ति को जागृत कर के वे इस देश में हितकारी, भ्रष्टाचारादि विरोधी आन्दोलन को वस्तुतः सफल बनाने का प्रयत्न करें।

जीवेम शरदः शतम्

लेखक—श्री पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालङ्कार प्रकाशक-श्री पं० मनोहर जी विद्यालङ्कार, पुस्तक प्राप्ति स्थान—श्री श्यामसुन्दर राधेश्याम सूतवाले ईश्वर भवन, नया बांस देहली।

इस छोटी सी ४० पृष्ठ की पुस्तक में जन्म दिवस पर यज्ञोपयोगी मन्त्रों का संग्रह है और उनकी सरल व्याख्या करते हुए जीवन को दीर्घ और उपयोगी बनाने के वेदोक्त साधनों पर अत्युत्तम प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक जो श्री पं० मनोहर जी विद्यालङ्कार (उप प्रधान पंजाब आर्य प्रतिनिधि) के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में छपवाई गई, दीर्घायु के साधन विषयक वेदोपदेश जानने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। पुस्तक पर मूल्य अङ्कित नहीं। 'सप्रेम भेंट' ऐसा निर्देश है। इसे प्रकाशक महोदय से मंगवा कर धर्म प्रेमियों को लाभ उठाना चाहिये।

योगासन

लेखक—आचार्य भद्रसेन जी संचालक यौगिक व्यायाम संघ अजमेर, प्रकाशक-आदर्श साहित्य निकेतन अजमेर, पृष्ठ ५६, मूल्य नये ६२ पैसे।

प्राणायाम

लेखक और प्रकाशक—उपर्युक्त। पृष्ठ ६२ मूल्य ७५ नये पैसे।

आचार्य भद्रसेन जी जो आर्य जगत् के एक सुयोग्य विद्वान् हैं गत अनेक वर्षों से अजमेर में 'यौगिक व्यायाम सङ्घ' नामक संस्था चला रहे हैं जिसमें योगासनों और प्राणायाम की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती है। शारीरिक आरोग्य और मानसिक तथा आत्मिक शक्ति के विकास के लिये योगासनों तथा प्राणायाम की आवश्यकता को अब देश विदेश के प्रायः सभी नेता मानने लगे हैं यह प्रसन्नता की बात है। हमारे देश के मान्य प्रधान मन्त्री श्री पं० जवाहरलाल जी भी योगासनों को अत्यन्त उपयोगी समझ कर स्वयं शीर्षासनादि प्रतिदिन करते हैं और भारत सेवक समाज द्वारा जिसके वे प्रधान हैं उन्होंने योगासनों को लोक प्रिय बनाने का विशेष प्रयत्न प्रारम्भ कराया है। आचार्य भद्रसेन जी ने अपने तथा अपने शिष्यों के अनुभव के आधार पर उपर्युक्त दोनों पुस्तकों में योगासन और प्राणायाम के विषय में सब जानने योग्य मुख्य बातों का सचित्र सरल निरूपण कर दिया है। विधि के साथ विविध योगासनों के लाभों का भी भलीभांति प्रतिपादन कर दिया है। इस बात को जानते हुए कि अनेक साधक प्राणायाम को विधिपूर्वक न करने से हानि उठा लेते हैं उन्होंने उन सब सावधानियों का उल्लेख पुस्तक में कर दिया है

जिन के विना इस प्रकार की हानि सम्भव है। आचार्य भद्रसेन जी ने जनता के लाभ के लिये इन दोनों पुस्तकों को लिखकर प्रशंसनीय कार्य किया है जिस के लिये हम उनका अभिनन्दन करते हैं और चाहते हैं कि लोग इन दोनो पुस्तकों से अवश्य लाभ उठाएं।

Fountain head of Religion

लेखक—श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम.ए.एम. आर. ए. एस । प्रकाशक आर्य साहित्य मण्डल अजमेर । मूल्य ४.०० ।

'गुरुकुल पत्रिका' के पौष मास के अङ्क में 'आर्यजगत् के दो उज्ज्वल रत्नों का अभिनन्दन' इस शीर्षक की सम्पादकीय टिप्पणी में हमने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के भूतपूर्व प्रधान श्री पं. गङ्गाप्रसाद जी एम.ए कार्यनिवृत्त मुख्य न्यायाधीश टिहरी की जिस धर्म का आदिस्रोत विषयक विद्वत्ता पूर्ण अंग्रेजी ग्रन्थ का निर्देश किया था और जिस की प्रतियां अब चिरकाल से उपलब्ध नहीं हो रही थीं, आर्य साहित्य मण्डल अजमेर ने उसे पुन: अविकल रूप से प्रकाशित करके अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है । इस ग्रन्थ की लोकप्रियता का अनुमान इस से लगाया जा सकता है कि यह षष्ठ संस्करण है जो आर्य साहित्य मण्डल द्वारा प्रकाशित हुआ हैं ।

मद्रास आर्य समाज ने कुछ वर्ष पूर्व इसका एक कुछ संक्षिप्त संस्करण हज़ारों की संख्या में छपवाया और उसका मूल्य प्रचारार्थ १) रखा था । उसमें उन पांच परिशिष्टों को छोड़ दिया गया था जिन में ईसाई, मुसलमान तथा अन्य मतावलम्बियों की पत्रिकाओं में की गई पुस्तक की समालोचना का सुयोग्य लेखक महोदय ने अत्यन्त युक्ति युक्त तथा प्रभावोत्पादक उत्तर परिष्कृत भाषा में दिया था । अब अविकल रूप में यह ग्रन्थ शिक्षितवर्ग के सन्मुखआया है जिसमें प्रबल प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध किया गया है कि इस्लाम का आधार यहूदी मत पर, यहूदी मत का पारसी मत पर और उस का वैदिक धर्म पर है । दूसरी ओर ईसाईमत के सिद्धान्त भाग का आधार यहूदी मत पर और आचार विषयक शिक्षाओं का बौद्ध मत पर है, बौद्ध मत का आधार वैदिक धर्म की पवित्र शिक्षाओं पर है क्यों कि महात्माबुद्ध एक आर्य सुधारक थे न कि किसी नवीन मत के प्रवर्तक । इस विषय को हमने भी अपनी, महात्मा बुद्ध ऐन रिफार्मर नामक गुरुकुल कांगड़ी मुद्रणालय से प्रकाशित अंग्रेजी पुस्तक में सप्रमाण बताया है । इस प्रकार यह एक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ बन गया है जो मतों के तुलनात्मक अनुशीलन के लिये निष्पक्ष विद्वानों द्वारा प्रामाणिक माना जाएगा ऐसा हमारा विश्वास है । हम चाहते हैं कि इस ग्रन्थ की एक प्रति प्रत्येक अंग्रेजी शिक्षित देश विदेश के विद्वान् के हाथ में पहुंचाई जाए । सार्वदेशिक सभा यदि इसकी बहुत सी प्रतियां खरीद कर विदेश के विद्वानों में वितीर्ण कराए तो उससे वैदिक धर्म के प्रचार में अत्यधिक सहायता मिल सकती है । सुयोग्य अनुभवी लेखक पं० गङ्गाप्रसाद जी का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं । (शेष पुस्तकों की आलोचना क्रमश:) —धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

सम्पादकीय

विद्यालयों में धर्म शिक्षा की आवश्यकता

केन्द्रीय परिवहन और संचार मन्त्री श्री एस. के. पाटिल ने गत १८ फरवरी को वनस्थली विद्या पीठ जयपुर के वार्षिक दीक्षान्त समारोह में भाषण देते हुए कहा कि 'स्कूलों के पाठ्यक्रम में धर्म-शिक्षा को भी सम्मिलित किया जाना चाहिये। विद्यार्थियों में अनुशासन हीनता का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि इसका कारण धर्म शिक्षा का अभाव है।' इत्यादि हम श्री पाटिल जी के इस विचार से सर्वथा सहमत हैं और चरित्र निर्माण तथा अनुशासन बद्धता की दृष्टि से धर्म शिक्षा की आवश्यकता पर 'गुरुकुल पत्रिका' के सम्पादकीय स्तम्भों में हम कई वार प्रकाश डाल चुके हैं। गत अङ्क में हमने बड़े दुःख के साथ इस बात को लिखा था कि 'हमें आश्चर्य इस बात पर होता है कि हमारे सब मान्य नेता वर्तमान शिक्षा पद्धति को अत्यन्त त्रुटिपूर्ण और हानिकारिणी मानते हुए भी उसमें उल्लेखनीय सुधार अब तक नहीं कर पाये हैं। चरित्र निर्माण और धर्म-शिक्षा की ओर वर्तमान शिक्षणालयों में कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा।' इत्यादि

माननीय श्री पाटिल जी ने इस विचार को सार्वजनिक रूप में प्रकट करके प्रशंसनीय कार्य किया है किन्तु जब तक इस को क्रियात्मक रूप न दिया जाए तब तक छात्रों में चरित्र की उपेक्षा और अनुशासन हीनता की शिकायत दूर नहीं हो सकती। ५ फरवरी के नवभारत टाइम्स आदि पत्रों में इस समाचार को पढ़कर हमें प्रसन्नता हुई थी कि 'केन्द्रीय सरकार छात्रों को उनके शिक्षा सम्बन्धी जीवन के दौरान में नैतिक शिक्षा देने के तरीकों पर विचार के लिये विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त करने पर विचार कर रही है। यह प्रश्न केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड द्वारा उठाया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा मन्त्रालय इस पर काफी गौर कर रहा है।' हमारा केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय से सानुरोध निवेदन है कि वह धार्मिक शिक्षा के अङ्ग के रूप में कम से कम नैतिक शिक्षण की व्यवस्था सब विद्यालय महाविद्यालयों में कराने का आदेश दे। इस विषय में अविलम्ब कार्यवाही होना नितान्त आवश्यक है।

हरिजन बन्धुओं के साथ घोर अन्याय

यद्यपि भारतीय संविधान में अस्पृश्यता को अपराध घोषित किया जा चुका है और उस के अनुसार विधि (क़ानून) को भी बना दिया गया है यह अत्यन्त दुःख की बात है कि इसका उल्लंघन करते और हरिजनों पर घोर अत्याचार करते हुए भी लोग लज्जित नहीं होते। १३ फरवरी के नवभारत टाइम्स आदि समाचार पत्रों में गढ़वाल में हरिजनों पर अत्याचार का एक अत्यन्त भयङ्कर समाचार प्रकाशित हुआ है। वहां के एक ग्रामठुंग ग्यारह गांवों में एक बरात वाले वधू को लेकर ज्यों ही चलने लगे आस-पास के ग्रामवासियों ने लाठी,हथियार व पत्थर हाथों में लेकर उन्हें घेर लिया और डोला पालकी साथ ले जाने पर जान से मार डालने तक की धमकी दी। बारात २१ दिन

बाद लौटी क्यों कि चलने के क्षण में सवर्ण लोग उन्हें घेर लेते थे। खण्ड मण्डलाधीश कीर्ति नगर तथा आरक्षि विभाग (पोलिस) के अधिकारी भी उनकी सहायता न कर सके। अन्त में ज़बर्दस्ती उन से हस्ताक्षर करा कर कि वे भविष्य में ऐसा दुस्साहस न करेंगे उन्हें विकट जङ्गली मार्ग से लौटाया गया।' इस प्रकार का अन्यायपूर्ण व्यवहार नितान्त निन्दनीय है और जिन्होंने ऐसा किया है उन को कठोर दण्ड मिलना चाहिये ताकि भविष्य में किसी को ऐसा करने का दुस्साहस न हो। ऐसे अन्धविश्वासी, रूढिवादी लोगों के अन्दर विशेष रूप से प्रचार भी आर्य समाज द्वारा किया जाना चाहिये।

क्या यह अवस्था सन्तोषजनक है?

भारत के शिक्षामन्त्री डा० श्रीमाली जी ने १२ फरवरी को लोकसभा में श्री पद्मदेव और श्री सामन्त के प्रश्न के उत्तर में बताया कि सन् १६५८ में देश लिखना पढ़ना जानने वाले पुरुषों की संख्या लगभग ६ करोड़ १५ लाख थी और स्त्रियों की १ करोड़ ८८ लाख थी जब कि सन् १६४७ में कुल ३ करोड़ ८७ लाख पुरुष और १ करोड़ २० लाख स्त्रियाँ साक्षर थीं। भारत की कुल जनसंख्या इस समय ४० करोड़ के करीब है। हिसाब लगाने पर प्रतीत होता है कि सन् १६४७ में साक्षर पुरुषों की संख्या १६.३५ प्रतिशतक थी जब कि सन् १६५८ में वह ३०.७५ प्रतिशतक थी। इन १० वर्षों में पुरुषों की संख्या में ११.४ प्रतिशतक वृद्धि हुई है। १६४७ ई० में साक्षर नारियों की संख्या ६ प्रतिशतक थी जब कि सन् १६५८ में वह ६.४ प्रतिशतक थी। इन १० वर्षों में नारियों की संख्या में ३.४ प्रतिशतक वृद्धि हुई है। इस प्रकार स्वतन्त्रता के १० वर्षों में यद्यपि साक्षरता में थोड़ी सी वृद्धि हुई है किन्तु इसे सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता विशेषतः जिन नारियों की उत्तम शिक्षा पर देश का भविष्य निर्भर करता है उनकी संख्या केवल ६.४ प्रतिशतक होना सर्वथा असन्तोषजनक है। पुरुषों और स्त्रियों दोनों में न केवल साक्षरता प्रत्युत सच्ची शिक्षा के प्रसार की अत्यधिक आवश्यकता है जिस से उन्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान हो। हमारे देश में बेकार, शिक्षितों की संख्या बहुत अधिक है। उन्हें यदि ग्रामों में साक्षरता प्रसार के कार्य में लगाया जाए तो बड़ा लाभ हो सकता है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का प्रतिवेदन

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वितीय प्रतिवेदन में कहा गया है कि—

"आयोग को इस बात का दुःख है कि विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता बढ़ती जा रही है और इस से कई वार काम में बड़ी बाधा पड़ी है। आयोग के विचार में सार्वजनिक जीवन में अनुशासन का अभाव भी छात्रों में फैली हुई उद्दण्डता का कारण है। इसका एक इलाज यह सोचा गया है कि छात्रों को दिन भर व्यस्त रक्खा जाए और खाली समय के लिये उपयुक्त तथा स्वस्थ मनोरञ्जन इत्यादि का प्रबन्ध हो। आयोग ने राष्ट्रीय नेताओं तथा राजनीतिक दलों से भी अनुरोध किया है कि वे

विद्यार्थी वर्ग की इस अवस्था पर गम्भीरता से विचार करें और विद्याध्ययन के अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने में विश्वविद्यालयों के अधिकारियों की सहायता करें। आयोग का विचार है कि देशवासी अभी तक इस बात को अच्छी तरह अनुभव नहीं करते कि राष्ट्र की उन्नति में उच्चशिक्षा का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है।"

हमारे विचार में छात्रों को अधिक व्यस्त रखने आदि से अनुशासन हीनता आदि में कुछ कमी हो सकती है किन्तु सच्चरित्र का निर्माण करने वाली धार्मिक शिक्षा के विना अधिक लाभ नहीं हो सकता अतः इसकी ओर अविलम्ब ध्यान देने की आवश्यकता है। शिक्षा के माध्यम के विषय में आयोग ने कहा है कि 'अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने में जल्दी नहीं की जानी चाहिये।' किसी भी कार्य को अविवेक पूर्वक करना अच्छा नहीं किन्तु प्रतीक्षा की भी कोई सीमा होती है। भारतीय संविधान में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को राज-भाषा का रूप ग्रहण करने के लिये १५ वर्ष का समय नियत किया गया था जो हमारी सम्मति में वस्तुतः बहुत अधिक था। इस पर भी लगभग १० वर्षों में वाञ्छनीय दिशा में प्रगति अत्यन्त मंद हुई है यह दुःख की बात है। इस आयोग के प्रतिवेदन में ही कहा गया है कि अभी तक केवल सागर विश्वविद्यालय ने ही हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाया है यद्यपि आगरा, इलाहाबाद, बनारस, विहार आदि ने भी ऐसा करने का निश्चय किया है। अब इस दिशा में दृढ़ निश्चय के साथ कार्य करने की आवश्यकता है। इस कूर्म गति से तो पचासों वर्ष लग जाएंगे।

नवीन विश्व ऐक्य का प्रशंसनीय आन्दोलन

हमें यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि बंगाल के एक सुप्रसिद्ध युवक आन्दोलन नेता श्री अनिल कुमार मुखर्जी (जो अगस्त १९५७ में मौस्को में आयोजित विश्व युवक सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधि रूप से सम्मिलित हुए थे) तथा श्री अरविन्दाश्रम पाण्डीचेरी के एक पुराने साधक डा० जे. स्मिथ् के विशेष प्रयत्न और अन्य अनेक अध्यात्मवादी सज्जनों और देवियों के सहयोग से विश्वबन्धुत्व विश्वशान्ति तथा विश्वैक्य की भावना के आध्यात्मिक आधार पर प्रसार के लिये नव विश्वैक्य सङ्घ (दी न्यू वर्ल्ड यूनियन) नामक सङ्घ की स्थापना की गई है। इस की शाखाएं संसार के भिन्न भिन्न देशों में स्थापित की जा रही हैं। भारत में इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रतिष्ठित,आध्यात्मिकता प्रेमी ६३ सज्जनों और देवियों की एक परिषत् स्थापित की गई है जिस की १८ सदस्यों की कार्यकारिणी में हमारे अतिरिक्त डा० राधाकमल मुखर्जी सेवा निवृत्त उपकुलपति लखनऊ विश्वविद्यालय डा० इन्द्रसेन जी एम. ए. पी. एच्. डी, श्री नलिनीकान्त गुप्त मन्त्री श्री अरविन्दाश्रम पाण्डोचेरी,बनारस विश्वविद्यालय के महिला विभाग की फिलासफी की प्रोफेसर डा. शोभावसु, पटना विश्वविद्यालय के डा. आशीर्वादम्, बंगाल के श्री सुरेन्द्रमोहन घोष, लोकसभा सदस्य आदि सुप्रसिद्ध विचारक सम्मिलित किये गये हैं। संयोजक सारे भारत की यात्रा के पश्चात् विश्वयात्रा करके आध्या-

तिमकता और मनुष्यमात्र की एकता के आधार पर विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रचार करेंगे तथा अन्य सदस्य भी अपने अपने क्षेत्रों में इन उत्तम भावनाओं के प्रसार का सब समुचित साधनों से प्रयत्न करते रहेंगे। अन्त में जनवरी १९६० में एक विश्वसम्मेलन का आयोजन इस वैदिक पवित्र विश्वैक्य भावना के विशाल प्रसार के लिये किया जा रहा है। हम ने इस आन्दोलन को मनुष्य जाति के कल्याण के लिये अत्यावश्यक समझते हुए इस में सक्रिय सहयोग का संकल्प किया है। अन्य भी सब सज्जनों और देवियों को जिन का विश्वास है कि सब प्राणी एक ही परमेश्वर के पुत्र होने के कारण भाई भाई हैं तथा आत्मा की अद्भुत शक्ति को जागृत करने से विश्व शान्ति की शीघ्र स्थापना हो सकती है इस आन्दोलन को प्रबल बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। आध्यात्मिकता के आधार पर ही विश्वशान्ति को स्थापित किया जा सकता है केवल राजनैतिक वा आर्थिक आधार पर नहीं।　　—धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

ऋषिबोधोत्सव पर विशेष मननीय उपदेश

ईश्वरोपासना विषयक महर्षि दयानन्द जी के वेदानुसार निम्न महत्वपूर्ण वचनों का सब आर्य नर नारियों को विशेष मनन करना और तदनुसार आचरण करना चाहिये।

(१) जब-जब मनुष्य ईश्वर की उपासना करना चाहें, तब-तब अपने अनुकूल एकान्त स्थान में बैठ कर, अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर (एकाग्र) करें तथा सब इन्द्रिय और मन को सच्चिदानन्द, अन्तर्यामी, सर्वव्यापक और न्यायकारी परमात्मा में भली प्रकार लगा कर, सम्यक् चिन्तन करके उसी में अपने आत्मा को नियुक्त अर्थात् लीन कर दें।

—ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका उपासना प्रकरण।

(२) हे मनुष्यो ! हम सबका जगदीश्वर ही एकमात्र उपास्य देव है जिसकी उपासना से पुष्टि, वृद्धि, कीर्ति और मोक्ष प्राप्त होता है और मृत्यु का भय नष्ट हो जाता है। अतः उस प्रभु को छोड़ कर अन्य की उपासना हम कभी न करें। ऋग्वेद ७।५९।१२ का भावार्थ।

(३) उपासना के द्वारा आत्मा में सुख और शान्ति का प्रादुर्भाव होता है। इस उपाय को छोड़ पाप नाश करने का और कोई उपाय नहीं है . . . उपासना के द्वारा विवेक उत्पन्न होता है और विवेकी होने से क्षणिक वस्तुओं में शोक और मोह ये दोनों नहीं होते।

—उपदेश मंजरी

(४) जो मनुष्य सत्य भाव (सच्चे हृदय) से आत्मा और अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ईश्वर की उपासना करते हैं उनका वह कृपालु ईश्वर, विद्या और धर्म के ज्ञान से सब दुःखों से उद्धार कर देता है।

—यजु० ३७।१९ का भावार्थ।

गुरुकुल समाचार

ऋतु रंग

गत वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष शीत का प्रकोप अत्यधिक रहा। वर्षा एवं हिमपात के कारण फरवरी के अन्त तक शीत एवं बर्फीली वायु का प्रभाव पर्याप्त रहा। किन्तु फिर भी अपराह्न की उष्णता और पश्चिम की शुष्क पवनें ग्रीष्म के आगमन की सूचना दे रही हैं। इस मास दर्शकों का आवागमन कम ही रहा। सामान्यतया कुलवासियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

वार्षिक परीक्षाएं

विद्यालय एवं वेद तथा विज्ञान महाविद्यालय की वार्षिक परीक्षाएं १० अप्रैल से प्रारम्भ होकर २८ अप्रैल तक समाप्त हो जाएंगी। आयुर्वेद महाविद्यालय की परीक्षाएं २० अप्रैल से प्रारम्भ होकर २०मई तक समाप्त हो जाएंगी। आजकल प्रायः सभी छात्र अध्ययन एवं पुनरावृत्ति में व्यस्त हैं।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

गुरुकुल पत्रिका विवरण

१.	प्रकाशन का स्थान	गुरुकुल कांगड़ी
२.	प्रकाशन कब कब होता है	मासिक पत्रिका
३.	मुद्रक का नाम	श्री पं. रामेश जी बेदी आयुर्वेदालङ्कार।
	राष्ट्रिकता	भारतीय।
	पता	गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, उ० प्र०।
४.	प्रकाशक का नाम	श्री पं. धर्मपाल जी विद्यालङ्कार।
	राष्ट्रिकता	भारतीय।
	पता	स० मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी।
५.	सम्पादक का नाम	श्री पं. धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड।
	राष्ट्रिकता	भारतीय।
	पता	गुरुकुल कांगड़ी।
६.	स्वामिनी समिति	पंजाब आर्यप्रतिनिधि जालन्धर द्वारा निर्वाचित-आर्य विद्यासभा।
७.	व्यवस्थापक	श्री पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

मैं धर्मपाल विद्यालंकार, घोषित करता हूं कि ऊपर दिया विवरण मेरे ज्ञान और विश्वासानुसार यथार्थ है।

(ह०) धर्मपाल विद्यालङ्कार

ता० १८. २. १९५९

विशेष व्याख्यान

१. तिथि २७।१।५६ को दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी के उपाध्याय श्री डा० विजयेन्द्र जी एम. ए. पी. एच. डी. ने छायावाद पर एवं २८।१।५६ को "आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक आलोचक के रूप में" विषय पर अत्यन्त सारगर्भित एवं विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया।

२. २६।१।५६ को दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष श्री डा० चन्द्रभानु गुप्त एम. ए. पी. एच. डी. का "भारतीय नाट्य विकास की परम्परा" विषय पर सुन्दर व्याख्यान हुआ। उपर्युक्त दोनों शिक्षाप्रद व्याख्यानों के लिए उक्त विद्वान् महानुभावों का गुरुकुल की ओर से हार्दिक धन्यवाद।

३. इसके अतिरिक्त १९।२।५६ को सहारनपुर जिला शिक्षाधिकारी महोदय का "विद्यार्थी कैसे देश सेवा करें" इस विषय पर अत्यन्त शिक्षाप्रद एवं प्रेरणास्पद व्याख्यान हुआ। आप गुरुकुल विज्ञान महाविद्यालय का निरीक्षण करने के लिए पधारे थे। आप यहां की सुव्यवस्था एवं शान्त वातावरण देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए।

आयुर्वेद महाविद्यालय

आयुर्वेद महाविद्यालय के अध्यक्ष श्री वैद्य निरञ्जन देव जी आयुर्वेदालङ्कार विशेष निमन्त्रण पर 'त्रिदोष पर' व्याख्यान देने के लिए १५ जनवरी को अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेद महाविद्यालय बेगूसराय(मुंगेर) गये। आपका भव्य स्वागत करते हुए वहां पर आपको अभिनन्दन पत्र प्रदान किया गया। आपने त्रिदोष विषयक अत्यन्त सारगर्भित एवं विद्वत्तापूर्व तीन व्याख्यान दिए जिन्हें बहुत पसन्द किया गया।

मान्य अतिथि—लुधियाना आर्य कॉलेज के प्रिन्सिपल और गुरुकुल विद्या सभा के सदस्य श्री पं० रामनारायण जी गुरुकुल पधारे। आप यहां की विज्ञान महाविद्यालय प्रबन्ध कर्त्री उपसमिति के सदस्य भी हैं। आपने विज्ञान महाविद्यालय का निरीक्षण करके परितोष प्रकट किया।

दान—गुरुकुल के प्रेमी और दानवीर महानुभाव श्री पं० विश्वनाथ जी जौनपुर निवासी ने गुरुकुल को ७९४२) रुपये का दान प्रदान किया। उक्त सात्विक दान के लिए मान्य दानी महानुभाव का गुरुकुल की ओर से हार्दिक धन्यवाद।

गुरुकुल कांगड़ी में गणतंत्र दिवस

तिथि २६ जनवरी को गुरुकुल नगर में गणतंत्र दिवस बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। प्रातः ५ बजे प्रभात-फेरी की गई। भारतीयता एवं राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण गीतों व जयकारों से कुलभूमि में उत्साह [illegible] उल्लास की लहर सी फैल गई। इसके पश्चात् प्रातः साढ़े आठ बजे उप कुलपति श्री पं इ[illegible] जी विद्यावाचस्पति ने ध्वजारोहण विधि-सम्पन्न की। राष्ट्रगीत के अनन्तर गुरुकुल "राष्ट्रीय छात्र-सेना" (N. C. C.) के सैनिकों ने म[illegible] उप कुलपति जी का अभिवादन किया [illegible] अत्यन्त मनोरञ्जक एवं उत्साहवर्धक सै[illegible] खेलों का प्रदर्शन किया। अन्त में खेल-कूद प्र[illegible] योगिता में विजय पाने वाले छात्र-सैनिकों

उपकुलपति जी के करकमलों से पुरस्कार प्रदान किए गए। इस अवसर पर आपने राष्ट्रीय पर्व का महत्त्व बताते हुए छात्रों को सैनिक शिक्षा में भाग लेने की प्रेरणा की। आपने कहा कि देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए प्रत्येक नवयुवक को सैनिक शिक्षा अनिवार्य रूप से देनी चाहिए।

इस प्रकार (N. C. C.) का उक्त आयोजन वस्तुतः अत्यन्त आकर्षक एवं प्रशंसनीय रहा। इसकी सफलता का श्रेय (N. C. C.) के परिश्रमी अध्यक्ष श्री प्रो० हरगोपालसिंह जी और उत्साही दलनायक ब्र० सत्यपालसिंह १३ वीं को है।

विद्यालय, कृषि विद्यालय एवं प्रशिक्षण केन्द्र के छात्रों ने मध्याह्न काल में श्रम दान किया। छात्रों के साथ गुरुकुल के समस्त अधिकारी तथा उपाध्यायों व अध्यापकों ने भी सहर्ष भाग लिया। उक्त श्रमदान के द्वारा गुरुकुल के छात्रों ने एक फर्लांग लम्बी सड़क का निर्माण किया।

विजयोपहार

१. ९ फरवरी को गवर्मेंट कालेज रोहतक में सम्पन्न संस्कृत वादविवाद प्रतियोगिता में गुरुकुल के १. ब्र० वेदप्रकाश १२ वीं और २. ब्र० सुभाषचन्द्र १२ वीं विजयी रहे और उन्होंने विजयोपहार प्राप्त किया। उक्त प्रतियोगिता में लगभग ३४ छात्रों ने भाग लिया था। उक्त दोनों छात्रों ने गुरुकुल का नाम उज्ज्वल किया है अतः वे साधुवाद के पात्र हैं।

२. १ फरवरी को रामकृष्ण मिशन कनखल में सम्पन्न संस्कृत एवं अंग्रेजी वाद विबाद प्रतियोगिता में गुरुकुल (विद्यालय) के छात्र विजयी रहे।

१. संस्कृत वादविवाद—१. ब्र० प्रह्लाद १० म २. ब्र० धर्मवीर (मेरठ) १० म ३. ब्र० सहदेव ७ म।

२. अंग्रेजी वादविवाद—१ ब्र० चन्द्रगुप्त ९ म।

वसन्तोत्सव

१२ फरवरी को समस्त कुलवासियों ने वसन्त पंचमी का पर्व बड़े उत्साह व उल्लास से मनाया। सब कुलवासी चण्डीपुल समीपस्थ मैदान में समवेत हुए। कुलपताकारोहण एवं ध्वजगीत के पश्चात् आमोदक्रीड़ाएं प्रारम्भ हुईं। जिन में छात्रों की कबड्डी की खेल मनोरञ्जक रही। तत्पश्चात् सब कुलवासियों का सहयोग हुआ। सायं सभी वापिस लौटे।

गुरुकुल कुरुक्षेत्र का वार्षिकोत्सव

गुरुकुल कुरुक्षेत्र का ४७ वाँ वार्षिकोत्सव २०, २१, २२ मार्च ५९ को बड़ी ही धूमधाम से मनाया जाना निश्चित हुआ है। तारीख २२ को वेदारम्भ संस्कार सम्पन्न होगा। जो अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहते हैं, वे नियम, प्रवेश पत्रादि के लिए निम्न पते से पत्र व्यवहार करें।

श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यालङ्कार
आचार्य, गुरुकुल कुरुक्षेत्र, (करनाल)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का स्वर्णजयन्ती महोत्सव

महाविद्यालय ज्वालापुर का स्वर्ण जयन्ती महोत्सव बड़े समारोह के साथ आगामी १ अप्रैल

से १५ अप्रैल तक गुरुकुल की पुण्यभूमि में मनाया जाना निश्चित हुआ है । उत्सव की सफलता के लिए वेद सम्मेलन, गुरुकुल सम्मेलन आदि अनेक सम्मेलनों का आयोजन हो रहा है । १४ अप्रैल को दीक्षान्त समारोह होगा ।

गुरुकुल संग्रहालय में नई वृद्धि,
प्रधान मंत्री जी की बहुमूल्य भेंट ।

जैसे कि पत्रिका के गत अङ्क में पाठकों ने पढ़ा होगा 'गत वर्ष जब १ अगस्त १९५८ को भारत के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू गुरुकुल कांगड़ी में पधारे थे और उन्होंने वेद मन्दिर में संग्रहालय का निरीक्षण किया था तो उस समय उन से यह प्रार्थना की गयी थी कि वे इस संग्रहालय को कुछ ऐसे उपहार प्रदान करें कि जो उन्हें देश विदेश से बड़ी संख्या में प्रतिवर्ष मिलते रहते हैं । उस समय उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली थी और इसके बाद इन उपहारों का चुनाव करके उन्होंने संग्रहालयाध्यक्ष को यह पत्र लिखा था कि ये उपहार उन के निवास स्थान से उपलब्ध किये जा सकते हैं ।

इन उपहारों को गत १४-२-५९ को संग्रहालयाध्यक्ष जी ने नई दिल्ली में प्रधान मंत्री जी के निवास स्थान से प्राप्त कर लिया है । ये १८ उपहार हैं और उनका विवरण निम्न लिखित है ।

१. लकड़ी की चौकी पर एक बुद्ध विहार का पत्थर में बना हुआ नमूना ।
२. लकड़ी में बनी हुई मसजिद ।
३: रूस से प्राप्त एक लकड़ी का खिलौना जिसमें एक रीछ की गाड़ी को तीन घोड़े खींच रहे हैं ।
४. सीलोन (श्री लंका से) समाधि में भगवान् बुद्ध की मूर्ति ।
५. बुद्ध की धातु की मूर्ति । २५-५-५६ को क्वीन्ज वे के शरणार्थी व्यापारी संघ द्वारा प्रदत्त ।
६. अशोक का सिंहशीर्ष-अलिम्यूनियम कारपोरेशन द्वारा २-९-५७ को प्राप्त ।
७. एक लकड़ी के बक्से में काली नक्काशीदार लकड़ी का प्याला ।
८. मध्य-प्रान्त नागपुर से प्राप्त एक गोल लकड़ी का पट्ट ।
९. शीशे के केस में एक वगैर हत्थे का फावड़ा तथा लकड़ी का एक छोटा हल ।
१०. एक फावड़ा ।
११. दो छोटे कुल्हाड़े ।
१२. टीन का बना मूलेखां मिस्त्री का बनाया हुआ हल चलाते व्यक्ति का चित्र ।
१३. चम्बा से प्राप्त पहाड़ी गद्दी जाति के दूल्हा दुलहिन की गुड़ियाएं ।
१४. अमरावती से रूपलाल रामचरणलाल जैशवाल द्वारा बनी हुई एक बूढ़े व्यक्ति की तसवीर ।
१५. एक फ्रेम में दो हाथियों की रूपरेखा हिन्दी चीनी और भारतीय राष्ट्र की पताकाओं सहित ।
१६. नागपुर के ६४ वें कांग्रेस अधिवेशन का लकड़ी में बना चित्र ।
१७. एक शीशे के फ्रेम में चन्दन की लकड़ी की बनी रामलक्ष्मण-सीता की मूर्ति ।
१८. भारत का नया राष्ट्रीय पंचांग ।

२०. २. ५९ ब्र. दिलीप ।

स्वाध्याय के लिये चुनी हुई पुस्तकें

वेद का राष्ट्रीय गीत

श्री पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति

इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने अथर्ववेद के प्रसिद्ध सूक्त की एक एक ऋचा का अन्वय पूर्वक अर्थ किया है। मूल सूक्त की भव्य कविता वाचक को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। इसमें मातृभूमि की गुण गरिमा का गान किया गया है जिसे पढ़ कर मातृभूमि के प्रति श्रद्धा से नत हो जाना पड़ता है। पुस्तक सभी प्रकार से संग्रह करनी चाहिये।

मूल्य केवल पांच रुपये, डाक व्यय अलग।

ईशोपनिषद् भाष्य

श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रस्तुत पुस्तक में लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् लेखक ने 'ईशोपनिषद्' का बहुत सुन्दर हिन्दी भाष्य लिखा है। इसमें आधुनिक युग के अनुसार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है। इस भाष्य का मनन करने से वैयक्तिक, सामाजिक तथा जागतिक तीनों प्रकार की शान्ति सुलभ हो सकती है। ज्ञान पिपासुओं के लिये यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है।

मूल्य केवल दो रुपये, डाक व्यय अलग।

हमारा चुना हुआ साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
ईशोपनिषद् भाष्य	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	२.००
वेद का राष्ट्रीय गीत	श्री प्रियव्रत	५.००
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	,,	५.००
वरुण की नौका, २ भाग	,,	६.००
वैदिक विनय ३ भाग,	श्री अभय हर एक	२.००
वैदिक सूक्तियां	श्री रामनाथ	१.७५
आत्म-समर्पण	श्री भगवद्दत्त	१.५०
वैदिक स्वप्न-विज्ञान	,,	२.००
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	श्री अभय	२.००
ब्राह्मण की गौ	,,	.७५
वेदगीतांजलि	श्री वेदव्रत	२.००
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश, ३ भाग		३.७५
आत्म-मीमांसा	श्री नन्दलाल	२.००
वैदिक पशुयज्ञमीमांसा	श्री विश्वनाथ	१.००
अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या	श्री प्रियरत्न	१.२५
सन्ध्या-रहस्य	श्री विश्वनाथ	२.००
लहसुन : प्याज़	श्री रामेश बेदी	२.५०
शहद (शहद की पूर्ण जानकारी)	,,	३.००
त्रिफला, तीसरा संवर्द्धित संस्करण	,,	३.२५
वेदों का यथार्थ स्वरूप	श्री धर्मदेव वि० मा०	६.५०
वैदिक कर्तव्य शास्त्र	,,	१.५०

पुस्तकों का बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाइये। धार्मिक संस्थाओं के लिये विशेष रियायत का भी नियम है।

पुस्तक भण्डार, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (ज़ि० सहारनपुर)।

मुद्रक : रामेश बेदी, गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक : धर्मपाल विद्यालंकार, स०मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।